जाहिं दोउ भाई॥'''''कहि बातें मृदु मधुर सुहाई। किए बिदा बालक बरिआई॥' (२२५), *'मोर मनोरथ जानहु नीके।''''''सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजिहि मन कामना तुम्हारी'''''॥'* (२३६), *'सुकृत जाइ जौ पन परिहरऊँ। कुअँरि कुआँरि रहउ का करऊँ॥''''''* (२५२), *'''''''सखिन्ह सहित हरषी अति रानी। सूखत धान परा जनु पानी॥ जनक लहेउ सुख सोच बिहाई। पैरत थके थाह जनु पाई॥ सीय सुखहि बरनिय केहि भाँती। जनु चातकी पाइ जलु स्वाती॥''''''* (२६३), *'''''मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहु भाई॥'* (२८६), *'पुरनारि सकल पसारि अंचल बिधिहि बचन सुनावहीं। ब्याहिअहु चारिउ भाइ एहि पुर हम सुमंगल गावहीं॥'* (३११), *'''''''मुदित अवधपति सकल सुत बधुन्ह समेत निहारि। जनु पाए महिपालमनि क्रियन्ह सहित फल चारि॥'* (३२५)—इत्यादि। इसी तरह शबरीजीका प्रसङ्ग (३। ३४। ५) *'सबरी के आश्रम पगु धारा'* से *'जाति हीन अघ जन्म महि मुक्त कीन्हि असि नारि।'* (३६) तक; सुग्रीवजीका प्रसङ्ग किष्किन्धाके प्रारम्भसे *'सोइ सुग्रीव कीन्ह कपिराऊ।'* (४। १२। ४) तक है; दण्डकारण्यके ऋषियोंका प्रसङ्ग अरण्यकाण्डके प्रारम्भ अत्रिऋषिसे, शरभङ्गजी, सुतीक्ष्णजी, अगस्त्यजीतक लगातार है—*'सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह॥'* (३। ९) और विभीषणजीका प्रसङ्ग सुन्दरकाण्ड दोहा (४२। १) से *'सोइ संपदा बिभीषनहिं सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥'* (४९) तक है।

☞ (३ ख) सामान्यतः वैषयिक सुखको और विशेषतः स्त्रीसुखको काम कहते हैं। साधन-सामग्रीके तारतम्यसे कामसुखकी मात्रामें भी तारतम्य होता है। यह सब होते हुए भी काम धर्म और अर्थका विरोधी न हो, नहीं तो उससे लोक-परलोक सभीका नाश होता है। यथा—*'काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।'* वस्तुतः धर्मात्मा इन्द्रियजयी पुरुष ही वैषयिक सुखभोग करनेमें भी समर्थ हो जाता है। यथा—*'श्रुति पथ पालक धरम धुरंधर। गुनातीत अरु भोग पुरंदर॥'* इत्यादि उपदेशों तथा प्रसङ्गोंको 'धर्म' के उदाहरण समझना चाहिये। (वि० त्रि०)

(४) *'कामादिक चारी'* कहकर मोक्षका भी ग्रहण किया। यहाँ कामके साथ मोक्ष कहनेका यह तात्पर्य है कि काम और मोक्ष साध्य हैं और धर्म तथा अर्थ साधन हैं। (वि० त्रि०) मोक्ष=जन्म-मरणसे छुटकारा हो जाना। गृध्रराज जटायु, खरदूषणादि, विराध, शरभङ्गजी, शबरीजी तथा निशाचरोंकी मुक्तिके प्रसङ्ग मानसमें आये हैं। यथा—*'तनु तजि तात जाहु मम धामा।'* (३। ३२), *'''''गीध अधम खग आमिष भोगी। गति दीन्हीं जो जाचत जोगी॥'* (३। ३३। २)। तक, *'राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान।'* (३। २०), *'मिला असुर बिराध मग जाता। आवत ही रघुबीर निपाता॥ तुरतहि रुचिर रूप तेहि पावा। देखि दुखी निज धाम पठावा॥'* (३। ७) *'अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। रामकृपा बैकुंठ सिधारा॥'* (३। ९। १), *'जातिहीन''''मुक्त कीन्हि असि नारि।'* (३। ३६), *'महा महा मुखिया जे पावहिं। ते पद गहि प्रभु पास चलावहिं॥ कहइ बिभीषन तिन्ह के नामा। देहिं राम तिन्हहू निज धामा॥'''''* (६। ४४), *'निसिचर अधम मलाकर ताहि दीन्ह निज धाम।'* (६। ७०), *'राम सरिस को दीन हितकारी। कीन्हे मुकुत निसाचर झारी॥'* (६। ११४) कैवल्य मुक्तिका वर्णन ज्ञान-दीपक-प्रसङ्गमें है। यथा—*'जो निर्बिघ्न पंथ निर्बहई। सो कैवल्य परम पद लहई॥''''राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं॥'* (७। ११९) मोक्षके साधन जहाँ-जहाँ कहे हैं वे भी 'मोक्ष' के उदाहरण हैं।

(५, ६) ज्ञान, विज्ञान। यथा—*'ज्ञान मान जहँ एकउ नाहीं। देख ब्रह्म समान सब माहीं॥'* (३। १५), *'ज्ञान बिराग जोग बिज्ञाना।'* (७। ११५। १५) से ११९ तक। *'भगति ज्ञान बैराग्य जनु सोहत धरें सरीर॥'* (२। ३२) देखिये। 'वन्दे विशुद्ध विज्ञानौ' मं० श्लो० ४ देखिये। तथा *'तब बिज्ञान रूपिनी बुद्धि''''॥ एहि बिधि लेसै दीप तेज रासि बिज्ञान मय।'* (११७), *'''''सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा। दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा॥''''तबहिं दीप बिज्ञान बुझाई।''''।'* (७। ११८) तक इत्यादि। मं० श्लोक ४ 'वन्दे विशुद्ध विज्ञानौ' देखिये। त्रिपाठीजी लिखते हैं कि यहाँ 'ज्ञान' से अपरोक्ष ज्ञान अभिप्रेत है, जिसका साधन दीपकके रूपकमें उत्तरकाण्डमें कहा गया है, और जड-चेतनकी जो ग्रन्थि हृदयमें पड़ी हुई है, उसका छूटना 'विज्ञान' है।

(७) नव रस—देखिये मं० श्लो० १। इसपर शृङ्गाररसमालामें यह श्लोक कहा जाता है। 'शृङ्गारो

जनकालये रघुवराद्धासः कृतो वैवशात्। कारुण्योऽनुजरोदने खरवधे रौद्रोऽद्भुतः काकके॥ वैभत्स्यं हरिबंधने भयकरः सेतौ रणे वीरहा। शान्तः श्रीभुवनेश्वरो भवहराद्रामाद्रसोऽभूत्रव॥'

(क) शृङ्गार—*'नारि बिलोकहिं हरषि हिय निज निज रुचि अनुरूप। जनु सोहत सिंगार धरि मूरति परम अनूप॥'* (१। २४१), *'छबि सिंगारु मनहुँ एक ठोरी।'* (१। २६५। ७), *'जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले बर सुखमा लही।'* (७। ५) भी देखिये। श्रीजनकपुरमें श्रीरामजीके रहनेपर कई प्रसङ्गोंमें इस रसका वर्णन है। शृङ्गार-रस दो प्रकारका होता है—एक वियोग, दूसरा संयोग। *'एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए॥ सीतहि पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुंदर॥'* (३। १) संयोग शृङ्गारका उदाहरण है। वियोग शृङ्गारका उत्तम उदाहरण गोपियोंके प्रेममें देखा जाता है।

(ख) हास्य—*'नाना जिनस देखि सब कीसा। पुनि पुनि हँसत कोसलाधीसा॥'* (६। ११७) पुनः शूर्पणखाका प्रसङ्ग, इत्यादि।

(ग) रौद्र—*'जौं सत संकर करहिं सहाई। तदपि हतौं रघुबीर दोहाई॥'* (७। ७४) खरदूषणका प्रसङ्ग, लक्ष्मणक्रोध इत्यादि इसके उदाहरण हैं।

(घ) वीर—*'उठि कर जोरि रजायसु माँगा। मनहु बीररस सोवत जागा॥ बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा। साजि सरासनु सायकु हाथा॥'* (२। २३०। १-२), *'सुनि सेवक दुख दीनदयाला। फरकि उठीं दोउ भुजा बिसाला॥'* (४। ६)

(ङ) भयानक—*'हाहाकार करत सुर भागे'*, *'बाँधें बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस। सत्य तोय निधि कंपति उदधि पयोधि नदीस॥'* (६। ५), *'डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी। मनहुँ भयानक मूरति भारी॥'* (१। २४१। ६)

(च) बीभत्स—*'ब्यालपास बस भए खरारी।'* (६। ७३) *'बृष्टि होइ रुधिरोपल छारा।'* (६। ४५। ११)

(छ) अद्भुत—*'सती दीख कौतुक मग जाता।'* से *'नयन मूँदि बैठीं.....'* तक (१। ५४। ४-५५। ५), *'जो नहिं देखा नहिं सुना जो मनहूँ न समाइ। सो सब अद्भुत देखेउँ बरनि कवनि बिधि जाइ॥'* (७। ८०) श्रीकौसल्याजी और श्रीभुशुण्डीजीको विराट्दर्शन (१। २०१-२०२, ७। ७९—८१)।

(ज) शान्त—*'कुंद इंदु दर गौर सरीरा। भुज प्रलंब परिधन मुनि चीरा॥'.....'बैठे सोह कामरिपु कैसे। धरें सरीर सांतरस जैसे॥'* (१। १०६। ६-१०७। १) [मा० प्र० का मत है कि जिसमें मोक्षका अधिकार हो वहाँ शान्तरस जानो, रामराज्यमें सब मोक्षके अधिकारी हुए, यथा—*'रामराज नभगेस सुनु सचराचर जग माहिं। काल कर्म सुभाव गुन कृत दुख काहुहि नाहिं॥'* (७। २१) *'राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गतिके अधिकारी॥'* (७। २१। ४) इत्यादि। अतः रामराज्य शान्तरसका उदाहरण है।]

(झ) करुण—*'नगर ब्यापि गइ बात सुतीछी।'.....'जो जहँ सुनइ धुनइ सिरु सोई। बड़ बिषादु नहिं धीरज होई॥ मुख सुखाहिं लोचन स्रवहिं सोकु न हृदय समाइ। मनहु करुनरस कटकई उतरी अवध बजाइ॥'* (२। ४६), *'अवगाहि सोक समुद्र सोचहिं नारि नर ब्याकुल महा।'.....* (२। २७५-२७६) लक्ष्मणजीको शक्ति लगनेपर श्रीरामजीका विलाप, यथा—*'राम उठाइ अनुज उर लायउ॥'* (६। ६०। २) से *'प्रभु प्रलाप सुनि कान बिकल भए बानर निकर। आइ गयउ हनुमान जिमि करुना महँ बीर रस॥'* (६०) तक। इत्यादि।

(८) *'जप'* इति। जप अनेक प्रकारके हैं। यथा—**'मनः संहृत्य विषयान् मन्त्रार्थगतमानसः। जिह्वोष्ठ-चेष्टारहितो मानसो जप उच्यते॥ जिह्वोष्ठौ चालयेत्किञ्चिद्देवतागत मानसः। किञ्चिद् श्रवणयोग्यः स्यादुपांशुः स जपः स्मृतः॥ मंत्रमुच्चारयेद्वाचा स जपो वाचिकः स्मृतः। उपांशुर्वाचिकाच्छ्रेयांस्तस्मादपि च मानसः॥'** (९२—९४) (दुर्गाकल्पद्रुमशास्त्रार्थपरिच्छेदान्तर्गत जपविषयक विचार पृष्ठ २३)। अर्थात् विषयोंसे मनको हटाकर, मन्त्रार्थचिन्तनपूर्वक जिह्वा और ओष्ठके हिले बिना जो जप किया जाता है उसे मानस-जप कहते हैं। जिह्वा और ओष्ठ जिसमें किञ्चित् चले, जिससे किञ्चित् श्रवण हो सके और देवताके ध्यानपूर्वक जो जप हो वह 'उपांशु जप' है। बैखरीसे जिसका स्पष्ट उच्चारण हो वह 'वाचिक-जप' है। वाचिकसे उपांशु

श्रेष्ठ है और उपांशुसे मानस। (९२—९४—१। ८४। ७-८) भी देखिये। (ख) 'जप' के लक्ष्य, यथा—'*अस कहि लगे जपन हरिनामा।*' (१। ५२। ८), '*जपहिं सदा रघुनायक नामा।*' (१। ७५। ८), '*जपहु जाइ संकर सत नामा।*' (१। १३८। ५), '*द्वादस अच्छर मंत्र पुनि जपहिं सहित अनुराग।*' (१। १४३) '*जीह नाम जप लोचन नीरू।*' (२। ३२६। १), '*राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात।*' (७। १), '*जपउँ मंत्र सिव मंदिर जाई।*' (७। १०५। ८) इत्यादि। (मा० प्र०)

(९) '*तप*' इति। तपस्याके अनेकों स्वरूप हैं पर उनमेंसे निराहार रहनेसे बढ़कर कोई 'तप' नहीं है। तपको जगत्‌का मूल कारण भी कहा गया है। विशेष '*तापस सम दम दया निधाना।*' (१। ४४। २) में देखिये। तपके उदाहरण, यथा—'*उर धरि उमा प्रानपति चरना। जाइ बिपिन लागी तपु करना॥ अति सुकुमार न तनु तप जोगू। पतिपद सुमिरि तजेउ सब भोगू॥ नित नव चरन उपज अनुरागा। बिसरी देह तपहिं मनु लागा॥ संबत सहस मूल फल खाए। सागु खाइ सत बरष गवाँए॥ कछु दिन भोजन बारि बतासा। किए कठिन कछु दिन उपवासा॥ बेलपाती महि परइ सुखाई। तीनि सहस संबत सोइ खाई॥ पुनि परिहरेउ सुखानेउ परना। उमहि नामु तब भयउ अपरना॥ देखि उमहि तप खीन सरीरा।*......'(१। ७४) '*पुनि हरि हेतु करन तप लागे। बारि अधार मूल फल त्यागे॥*......*एहि बिधि बीते बरष षट सहस बारि आहार। संबत सप्त सहस्र पुनि रहे समीर अधार॥*' (१। १४४) '*बरस सहस दस त्यागेउ सोऊ। ठाढ़े रहे एक पद दोऊ॥ बिधि-हरि हर तप देखि अपारा। मनु समीप आए बहु बारा॥*......*अस्थिमात्र होइ रहे सरीरा।*' इत्यादि। रावण आदिका तप।

(१०) '*योग*' इति। योग=अष्टाङ्ग योग। योगकी क्रियाओंके आठ भेद ये हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। श्रीशिवजीकी ध्यानसमाधि और श्रीनारदजीकी समाधिकी कथा बालकाण्डमें है।

(११) '*बिराग*' इति। (क) बिराग=बिगत राग। उदाहरण, यथा—'*जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब बिषय बिलास बिरागा॥*' (२। ९३। ४) '*कहिअ तात सो परम बिरागी। तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी॥*' (३। १५। ८) (ख) वैराग्य क्रमसे चार प्रकारका होता है। विषयोंमें प्रवृत्ति न हो इसलिये प्रयत्नका प्रारम्भ करना ''यतमान वैराग्य' है। यथा—'*अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती। सब तजि भजन करौं दिन राती॥*' दूसरे, प्रयत्न प्रारम्भ करनेपर संतुष्ट होकर पके हुए दोषोंको त्याग करनेको 'व्यतिरेक वैराग्य' कहते हैं। यथा—'*बरबस राज सुतहिं तब दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा॥*' दोषोंके परिपक्व होनेसे इन्द्रिय प्रवृत्त होनेमें असमर्थ हैं पर मनमें उत्सुकतामात्र होनेको 'एकेन्द्रिय-संज्ञा वैराग्य' कहते हैं। यथा—'*उर कछु प्रथम बासना रही।*' उत्सुकतामात्रकी भी निवृत्ति हो जानेपर उपर्युक्त तीनों अवस्थाओंसे परे दिव्यादिव्य विषयोंमें उपेक्षा 'बुद्धि-वशीकारसंज्ञा-वैराग्य' है। यथा—'*मन ते सकल बासना भागी।*' ये तीनों 'अपर वैराग्य' कहलाते हैं। अपर वैराग्य पर-वैराग्यका कारण है।—'*कहिअ तात सो परम बिरागी। तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी॥*', '*अर्थ न धर्म न काम रुचि गति न चहौं निरबान।*' (वि० त्रि०)

सुकृती साधु नाम गुन गाना। ते बिचित्र जल-बिहँग समाना॥ ११॥

अर्थ—सुकृती लोगों, साधुओं और रामनामके गुणोंका गान ये विचित्र जल पक्षियोंके समान हैं।* (जो मानसके सीयरामयशजलमें विहार करते हैं) ॥ ११॥

नोट १—यहाँ '*गुनगाना*' सुकृती, साधु और नाम तीनोंके साथ है। पूर्व 'सुकृतपुंज' को भ्रमरकी उपमा दे आये हैं। अब 'सुकृतीके गुण-गान' को जल-पक्षीकी उपमा देते हैं। मानसमें श्रीरामयशके साथ

---

* कोई-कोई महानुभाव यह अर्थ करते हैं कि—(१) सुकृती साधुओंके द्वारा नामका गुण-गान होना रंग-विरंगके जलपक्षी हैं। (२) सुकृती साधु जो नाम-गुण-गान करते हैं वा सुतीक्ष्णादि सुकृती साधुओंके नाम और गुणोंका गान, विचित्र जल-विहंगके समान है। (रा० प्र०, पंजाबी) (३) 'धर्मात्माओं और साधुओंके नाम-गुण-गान......'—[मानस पत्रिका] और पांडेजीका मत है कि 'जो सुकृती कर्मकाण्डी साधु हैं, उनके नाम-गुणका कथन अनेक रंग-बूटोंवाले जलपक्षी हैं'।

सुकृतियोंका भी गुन-गान किया गया है।

पं० रामकुमारजी—१ सुकृतसे साधु मिलते हैं, यथा—*'पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता।'* (७। ४५) इसलिये सुकृतीको प्रथम कहा। साधु बिना नाम-गुण-गान कौन करे? इससे साधुके पश्चात् *'नाम गुन गाना'* कहा। गुणगानके उदाहरण—(क) सुकृती-गुण-गान, यथा—*'मुनि बोले गुर अति सुख पाई। पुन्य पुरुष कहुँ महि सुख छाई॥""तुम्ह गुर बिप्र धेनु सुर सेवी। तसि पुनीत कौसल्या देवी॥ सुकृती तुम्ह समान जग माहीं। भयउ न है कोउ होनेउ नाहीं॥ तुम्ह तें अधिक पुन्य बड़ काकें। राजन राम सरिस सुत जाकें॥""तुम्ह कहँ सर्बकाल कल्याना॥'* (१। २९४), *'रामु सीय सोभा अवधि सुकृत अवधि दोउ राज। जहँ तहँ पुरजन कहहिं अस मिलि नर नारि समाज॥'* (१। ३०९), *'जनक सुकृत मूरति बैदेही। दसरथ सुकृत राम धरें देही॥ इन्ह सम काहुँ न सिव अवराधे। काहुँ न इन्ह समान फल लाधे॥ इन्ह सम कोउ न भयउ जग माहीं। है नहिं कतहूँ होनेउ नाहीं॥ हम सब सकल सुकृत कै रासी। भए जग जनमि जनकपुर बासी॥ जिन्ह जानकी राम छबि देखी। को सुकृती हम सरिस बिसेषी॥'* (१। ३१०), *'जे पुर गाँव बसहिं मग माहीं। तिन्हहि नाग सुर नगर सिहाहीं॥ केहि सुकृती केहि घरी बसाए। धन्य पुन्यमय परम सुहाए॥ पुन्य पुंज मग निकट निवासी। तिन्हहिं सराहहिं सुर पुर बासी॥'* (२। ११३) इत्यादि। (ख) 'साधु-गुण-गान', यथा—*'सुजन समाज सकल गुन खानी। करौं प्रनाम सप्रेम सुबानी॥'* (१। २। ४) से *'अंजलिगत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोइ॥'* (१। ३) तक, *'सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ। जिन्ह ते मैं उन्ह के बस रहऊँ॥'* (३। ४५। ६) से *'मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते। कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते॥'* (४६। ८) तक। *'संतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता।'* (७। ३७। ६) से *'ते सज्जन मम प्रानप्रिय गुनमंदिर सुखपुंज॥'* (७। ३८) तक, तथा—*'संत मिलन सम सुख जग नाहीं॥ संत सहहिं दुख परहित लागी।""भुर्जतरू सम संत कृपाला। पर हित नित सह बिपति बिसाला॥', 'संत उदय संतत सुखकारी। बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी॥'* (७। १२१) इत्यादि। [स्मरण रहे कि गोस्वामीजीने वेषको साधुका लक्षण नहीं माना है, क्योंकि कपटी, पापी, दुष्ट भी साधुवेषका आश्रयण कर लेते हैं और साधु भी पूजासे बचनेके लिये कहीं-कहीं तामसिकोंका वेष धारण किये हुए मिलते हैं। दुष्ट लोग साधुकी सब नकल उतार लेते हैं, पर एक नकल उनकी उतारी नहीं उतरती। वह है—*'मंद करत जो करै भलाई।'* यह लक्षण सिवाय संतके और किसीमें नहीं आ सकता। उपकार ही साधुका अव्यभिचारी लक्षण है। (वि० त्रि०) (ग) नाम-गुन-गान; यथा—*'बंदौं नाम राम रघुबर को।'* (१। १९। १) से *'भाय कुभाय अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥'* (१। २८। १) तक। अयोध्याकाण्डमें जगह-जगहपर नाम-गुण-गान है जैसे कि भरत-निषाद-भेंटपर, वसिष्ठ-निषाद-भेंटपर चित्रकूटमें, इत्यादि। अरण्यकाण्डमें *'जद्यपि प्रभुके नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक ते एका॥ राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका॥ राका रजनी भगति तव राम नाम सोइ सोम। अपर नाम उडगन बिमल बसहु भगत उर ब्योम॥'* (४२)—इसी तरह सभी काण्डोंमें जहाँ-तहाँ है। पूर्व भी कुछ उद्धरण दिये गये हैं।

नोट २—यहाँतक जलमें जलचर, थलचर और नभचर तीनों कहे हैं, यथा—(क) *'पुरइनि सघन चारु चौपाई'*—पुरइन थलचर है, क्योंकि यह बिना थलके नहीं रह सकती। तीन चौपाइयोंमें थलचरकी व्याख्या है। (ख)—*'सुकृतपुंज मंजुल अलिमाला। ग्यान बिराग बिचार मराला॥ सुकृती साधु नाम गुनगाना। ते बिचित्र जल बिहँग समाना॥'* ये नभचर हुए। और (ग)—*'धुनि अबरेब कबित गुन जाती।""'* तीन चौपाइयोंमें जलचर कहे।

त्रिपाठीजी—(क) *'गुनगाना'*—श्रीरामचरितमानसमें राम-गुण-गान है, तथा सुकृती, साधु और नामका गुणगान है। रामगुणगानरूपी जलसे तो रामचरितमानस भरा पड़ा है पर सुकृतीगुणगान, साधु-गुणगान और नाम-गुणगानकी भी मात्रा अल्प नहीं है। (ख) *'ते बिचित्र'*—यहाँ 'विचित्र' शब्द देहली-दीपक न्यायसे *'ते'* के साथ भी अन्वित होगा, और जलबिहंगके साथ भी अन्वित होगा। सुकृती, साधु और नामके गुणगान विचित्र हैं क्योंकि इनका विषय विचित्र है कहीं नरनारीका गुणगान है, तो कहीं बेलि-विटपका

गुणगान है। कहीं देवताका गुणगान है तो कहीं राक्षसका भी गुणगान है। कहीं मुनियोंका गुणगान है तो कहीं कोल-किरातका गुणगान है। कहीं बिहग-मृगका गुणगान है तो कहीं बन्दर-भालुका गुणगान है। इसी भाँति कहीं राम, रघुवीर, हरि, दीनदयालादि नामोंका गुणगान है तो कहीं गई बहोरि, गरीबनेवाज, साहिब आदि नामोंका गुणगान है। (ग) *'जल-बिहँग'* और जलका साथ है, ये जलसे बहुत दूर नहीं रहते। इसी तरह सुकृती साधु-नाम-गुणगानका और रामयशका साथ है। ये गान रामयशसे दूर नहीं जाते, रामयश ही इनका निवासस्थल है।

संतसभा चहुँ दिसि अँबराई। श्रद्धा रितु बसंत सम गाई॥ १२॥

शब्दार्थ—**अँबराई**=आमके बाग। **श्रद्धा**—मं० श्लो० २ देखिये।

अर्थ—सन्तसभा (ही सरके) चारों दिशाओंकी अँवराई है। (सन्तोंकी) श्रद्धा वसन्त-ऋतुके समान कही गयी है॥ १२॥

नोट १—सन्तसभा और अँवराई दोनों ही परोपकारी हैं। यह समता है। जैसे वसन्तसे अँवराईकी शोभा वैसे ही श्रद्धासे सन्तसभाकी। श्रद्धा स्त्रीलिङ्ग है। ग्रन्थकारने 'वसन्तरितु' को भी स्त्रीलिङ्ग माना है, यथा—*'जहँ बसंतरितु रही लुभाई'* इसीसे स्त्रीकी स्त्रीसे उपमा दी। जहाँ-जहाँ ग्रन्थकारने बागका वर्णन किया है वहाँ-वहाँ प्रायः वसन्तका भी वर्णन किया है। जैसे कि जनकपुष्पवाटिका तथा अवधकी वाटिकाओं और उपवनों (उ० २८), इत्यादिमें। अतः अँवराई कहकर वसन्तऋतु कहा।

टिप्पणी—सन्तगुणगानको विहङ्ग कहा, अब सन्तसभाको अँवराई कहते हैं। यहाँ *'चहुँ दिसि'* क्या है? (उत्तर) चारों संवाद चार घाट हैं। चारों संवादोंमें जो सन्तसभा है (जो कथा सुननेके लिये बैठी है) वही चहुँ दिशिकी अँवराई है। अब चारों संवादोंमें जो सन्तसभा है उसको सुनिये—

(१) *'कहउँ कथा सोइ सुखद सुहाई। सादर सुनहु सुजन मन लाई॥'* यह गोस्वामीजी और सुजन-संवादमें सुजनकी सभा है। यह पूर्वदिशामें है।

(२)*'भरद्वाज आश्रम अति पावन। परम रम्य मुनिबर मन भावन॥ तहाँ होइ मुनि रिषय समाजा। जाहिं जे मज्जन तीरथ राजा॥'* (१। ४४। ६-७) यह याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवादमें सन्तसभा है जो दक्षिण दिशामें है।

(३) *'सिद्ध तपोधन जोगिजन सुर किंनर मुनिबृंद। बसहिं तहाँ सुकृती सकल सेवहिं सिव सुखकंद॥'* (१। १०५) शिवकथामें इनकी सभा थी और मुख्य श्रोता तो श्रीपार्वतीजी ही हैं। यह पश्चिम दिशामें है।

(४) *'बृद्ध बृद्ध बिहंग तहँ आए। सुनइ राम के चरित सुहाए॥'* (७। ६३। ४) यह भुशुण्डिजीकी कथामें सभा है जो उत्तर दिशामें है।

नोट—२ *'चहुँ दिसि'* कहकर सूचित किया कि चारों घाटोंकी चार सभाएँ ही चारों दिशाकी अँवराई हैं, जैसे चारों वक्ताओंके पास सन्तसभा, वैसे ही चारों घाटोंके पास अमराई है।

नोट—३ चारों दिशाओंमें इस मानसकी सन्तसभा है। कौन दिशामें कौन सन्त हैं? संत उन्मनी टीकाकारका मत है कि— (क) 'सन्त चार प्रकारके हैं। आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी। इन्हींकी सभा चारों ओर है। (ख) पिपीलिकामार्गके सन्त पश्चिम दिशाकी अमराई हैं क्योंकि मेरुकी ओर होकर रामतत्त्व और चरित्रका अनुभव करते हैं। विहङ्गमार्गवाले सन्त पूर्व-दिशाकी अमराई हैं, क्योंकि **'नासाग्रपूर्वतो दिशि'** उत्तर गीता। सोई आधार अनुभवके प्रारम्भका है। कपिमार्गवाले सन्त दक्षिण दिशाकी अमराई हैं क्योंकि दक्षिण दिशाके नाड़ीके अनुसार प्राणायामका इनके प्रारम्भ है। मीनमार्गवाले सन्त उत्तर अमराई हैं क्योंकि वाम स्वरमें प्रारम्भकी उत्तम रीति है।' मा० मा० कारका मत है कि—उपासना काण्डवाले सन्तोंकी सभा उत्तरघाटमें है, ज्ञानकी पश्चिममें, कर्मकाण्डकी दक्षिणमें और शरणागति भाववाले केवल नामावलम्बियोंकी सभा पूर्वघाटमें है।

नोट—४ मा० प्र० कार कहते हैं कि—'तल्लीन, तद्गत और तदाश्रयमेंसे *'मीन मनोहर ते बहु भाँती'* तक 'तल्लीन' का वर्णन हुआ, फिर *'ते बिचित्र जल बिहग समाना'* तक तद्गतस्वरूपका उल्लेख हुआ, अब यहाँसे 'तदाश्रय' कहते हैं अर्थात् जो सरके बाहर हैं पर उसके आश्रित हैं। 'यहाँसे सरके बाहरका वर्णन

हो रहा, इसीसे इनके उदाहरण ग्रन्थसे नहीं दिये जाते, कहीं-कहीं प्रसङ्ग पाकर प्रमाण देंगे।'

श्रीजानकीशरणजी लिखते हैं कि—'चारों संवादोंके मध्यमें जहाँ-जहाँ संतसभाओंका वर्णन है, उनमें विश्राम करनेसे मानससरमज्जनका आनन्द आता है। अभिप्राय यह है कि श्रोता-वक्ताके सिवा संतसभा जो वर्णित है वही अँवराई है।'

बैजनाथजी लिखते हैं कि 'संतोंकी सभा जहाँ श्रीरामचरितका श्रवण-कीर्तन सदा होता है वही चारों दिशाओंकी अमराई है।'

इस तरह मा० प्र०, वै० और मा० मा० का एक मत है कि यह संतसभा चार संवादवाले वक्ता श्रोता नहीं हैं। किन्तु इनके अतिरिक्त जो संतसभा है वह अमराई है। संवाद तो घाटमें आ गये।

त्रिपाठीजी लिखते हैं कि—(क) सन्तोंकी उपमा वृक्षोंसे दी गयी। इनमें भी आम अत्यन्त सुस्वाद होता है, इसीसे रसाल कहलाता है। जिन सन्तोंका हृदय रामस्नेहसे सरस है वे ही श्रीरामचरितमानसके आश्रित हैं, उन्हींकी सभाको यहाँ अँवराई कहा है, यथा—'*राम सनेह सरस मन जासू। साधु सभा बड़ आदर तासू॥*' दैन्य, ज्ञान, कर्म और उपासनाघाटकी संतसभाके उदाहरण, यथा—'*धेनुरूप धरि हृदय बिचारी। गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी॥*' (१। १८४। ७) से '*बैठे सुर सब करहिं बिचारा॥*' (१८५। १) तक, '*लसत मंजु मुनि मंडली मध्य सीय रघुचंदु। ग्यानसभा जनु तनु धरे भगति सच्चिदानंदु॥*' (२। २३९) '*तहाँ होइ मुनि रिषय समाजा। जाहिं जे मज्जन तीरथराजा॥*''''' *ब्रह्मनिरूपन धर्मबिधि बरनहिं तत्वविभाग।*''''' ' (१। ४४) '*मुनिसमूह महँ बैठे सनमुख सबकी ओर। सरद इंदु तन चितवत मानहु निकर चकोर॥*' (३। १२) (ख) श्रद्धाके बिना कर्म, ज्ञान और उपासना कोई भी सम्भव नहीं। यथा—'*श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई।*', '*सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई। जौं हरि कृपा हृदय बस आई॥*', '*श्रद्धा छमा मयत्री दाया। मुदिता मम पद प्रीति अमाया॥*' यहाँ श्रद्धासे सात्त्विकी श्रद्धा अभिप्रेत है। (ग) '*सम गाई*' इति। ऊपर कह आये हैं '*सुकृती साधु नाम गुन गाना।*' और यहाँ '*श्रद्धा रितु बसंत सम गाई*' कहा। भावार्थ यह कि जिस भाँति सुकृती, साधु तथा नाम-गुण-गान अनेक स्थलोंमें है उसी भाँति वसन्तका भी गुण-गान अनेक स्थलोंमें है; अथवा, जैसे वसन्त आनेपर वनबागकी शोभाका गान होता है, वैसे ही श्रद्धाके उदयसे साधुसभाकी शोभाका गान अभिप्रेत है। [श्रद्धा—मं० श्लोक २ देखिये।]

भगति निरूपन बिबिध बिधाना। छमा दया द्रुम* लता बिताना॥ १३॥

शब्दार्थ—**बिधान**=प्रकारकी, प्रकारसे। **निरूपन**=यथार्थ वर्णन। सर्वाङ्ग वर्णन।

अर्थ—अनेक प्रकारसे एवं अनेक प्रकारकी भक्तियोंका निरूपण (जो सन्तसभामें होता है) वृक्ष हैं और क्षमा, दया, लता और वितान हैं†॥ १३॥

नोट—१ ऊपर वसन्तऋतु कहा था, अब उसका धर्म कहते हैं—लताका फैलना, वृक्षोंका फूलना व फलना। कवि जहाँ वनबागका वर्णन करते हैं वहाँ लता—वितान भी कहते हैं, यह ग्रन्थकारकी शैली है, यथा—'*लागे बिटप मनोहर नाना। बरन बरन बर बेलि बिताना॥*' (१। २२७। ४) '*फूलहिं फरहिं बिटप*

* रा० प, पं०, प्र०, मा० त० वि० में और भी जहाँ-तहाँ इसका पाठान्तर 'दम' मिलता है। इस पाठका अर्थ—'भक्तिके विविध रीतियोंके निरूपण और (तत्सम्बन्धी) क्षमा, दया, दम (गुणोंका वर्णन) लताके वितान हैं। भाव यह कि ये सब सन्तरूपी अमराईपर लपटी हैं—(रा० प्र०)।

दम—१७२१, १७६२, छ०। १६६१ में 'द्रुम' था। '—', का चिह्न अबतक है। हरताल नहीं है। स्याही चाहे उड़ गयी हो, चाहे मिटायी गयी हो। ना० प्र० सभाने भी इसे द्रुम ही पढ़ा और देखा है। १७०४ में भी 'द्रुम' है।

† मा० प०—कार यह अर्थ करते हैं—'लताओंके चँदोये हैं जिनकी शरणमें प्राणी सुखसे विश्राम करते हैं, खलोंके वचन-आतप इनके भीतर नहीं पहुँच सकते।'

बिधि नाना। मंजु बिटप बर बेलि बिताना॥' (२। १३७। ६) ***'बिटप बिसाल लता अरुझानी। बिबिध बितान दिए जनु तानी॥'*** (३। ३८। १) इत्यादि।

नोट—२ वृक्षके आधारपर लताएँ और उनका मण्डप होता है, वैसे ही भक्तिके आश्रित क्षमा, दया हैं। अमराईमें वृक्ष होते हैं जिनपर बेलें लपटी रहती हैं। सन्तसभामें भक्तिका निरूपण वृक्ष है, क्षमा-दया लता-वितान हैं। भाव यह है कि भक्तिहीके कारण क्षमा और दया, गुण इनमें रहते हैं। सामर्थ्य रहते अपराधीको दण्ड न देना 'क्षमा' है, जैसे परशुरामजीके कटु वचनोंपर रामजीने क्षमा की। सुन्दरकाण्डमें लक्ष्मणजीका शुकसारणको छोड़वा देना 'दया' है,—***'दया लागि हँसि दीन्हि छुड़ाई', 'दया लागि कोमल चित संता।'*** इत्यादि। लता-वितानसे वृक्षोंकी शोभा, वैसे ही क्षमा-दयासे भक्तोंकी शोभा।

नोट—३ ***'बिबिध बिधाना'*** इति। श्रीरामचन्द्रजीने नवधा भक्ति श्रीलक्ष्मणजीसे और श्रीमती शबरीजीसे कही है। लक्ष्मणजीने पूछा है कि ***'कहहु ग्यान बिराग अरु माया। कहहु सो भगति करहु जेहि दाया॥'*** (३। १४। ८) भक्तिसम्बन्धी उत्तर—***'जाते बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥'*** (३। १६। २) से ***'तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम।'*** (१६) तक है। इसमें भी श्रीरामजीने श्रीमुखसे कहे हैं। अरण्यकाण्डमें ***'नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं।'*** (३५। ७) से ***'मम भरोस हियँ हरष न दीना।'*** (३६। ५) तक। श्रीरामजीने श्रीमुखसे श्रीशबरीजीसे नवधा भक्ति कही है। वाल्मीकिजीने १४ स्थान ठहरनेके बताये हैं, ये भी भक्तिके मार्ग हैं।—(२।१२८।४) से दोहा १३१ तक देखिये। किष्किन्धाकाण्डमें पुनः लक्ष्मणजीसे भक्ति, वैराग्य, नीति और ज्ञान विविध प्रकारसे कहा है, यथा—***'कहत अनुज सन कथा अनेका। भगति बिरति नय नीति बिबेका॥'*** (दोहा १३। ७ से दोहा १७ तक)। उत्तरकाण्डमें श्रीरामचन्द्रजीने पुरवासियोंसे और भुशुण्डिजीने गरुड़जीसे भक्ति कही है। (देखो ७। ४५-४६ और ७। ११४—१२०) इत्यादि, भक्तिका अनेक प्रकारसे निरूपण है।—(परन्तु इनमेंसे जो-जो प्रसङ्ग संतसभामें आये हैं, प्रायः वे ही यहाँ अभिप्रेत हैं, यथा—***'कहहिं भगति भगवंत कै संजुत ग्यान बिराग।'*** (१। ४४) इत्यादि । मा० मा० कार कहते हैं कि भक्ति-निरूपण 'आम्रवृक्ष है तहाँ रामनाम कल्पवृक्ष है, मानससर देवसर है, मानसके चारों ओर देवबाग हैं, देवबागहीमें कल्पतरु रहता है, अतएव रामनाम कल्पवृक्षका वहाँ रहना उचित है।)

त्रिपाठीजी—१ प्रयोजन तथा अधिकारी भेदसे भक्तिके अनेक विधान हैं। विषाद-नाशके लिये भक्ति-विधान, भगवत्कृपासंपादनके लिये भक्तियोग, जन्मफल-प्राप्तिके लिये भक्तिमार्ग, सर्व-साधारणके लिये नवधा भक्ति; जिज्ञासु, अर्थार्थी और आर्तके लिये गौणी भक्ति, इत्यादि। श्रीलक्ष्मणजीने जो भक्ति निषादराजसे कही वह विषादनाशके लिये थी। यह ***'काहु न कोउ सुख दुख कर दाता।'''''*** (२। ९२। ४) से ***'सखा समुझि अस परिहरि मोहू। सिय रघुबीर चरन रत होहू॥'*** (९४। १) तक है। अरण्यकाण्ड दोहा १६-१७ वाली भक्ति तथा उत्तरकाण्ड दोहा ४५। १ ***'जौं परलोक इहाँ सुख चहहू'*** से दोहा ४६ तक भक्तियोग है। (नवधा भक्ति ऊपर आ चुकी है)। ज्ञानी, जिज्ञासु आदिके लिये भक्तिका विधान नाम-वन्दनाके ***'नाम जीह जपि जागहिं जोगी।'*** इत्यादिमें है।

२—***'लता बिताना'*** इति। गुण गुणीके आश्रयसे रहते हैं। भक्तिके विविध विधान, क्षमा आदि जो लता स्थानीय माने गये हैं, इन्हीं संत-विटपके आश्रयमें हैं, अर्थात् ये गुण संतोंमें इसी प्रकार लिपटे हुए हैं जैसे लताएँ वृक्षोंमें। संतसमाजमें बारबार गुणोंका आदान-प्रदान हुआ करता है, अतः वहाँ ये गुण छाये रहते हैं।

सम* जम नियम फूल फल ग्याना। हरिपद रति† रस बेद बखाना॥ १४॥

*—संयम नियम-को० रा०। संयम, यथा — 'अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयार्जवम्। क्षमा धृतिः मिताहारः शुचिश्च संयमा दश॥'

†—रति रस—१७२१, १७६२, छ०। रस बर-१७०४। १६६१में 'ति र' हाशियेकी लकीरसे मिले हुए बाहर बनाये गये हैं। 'बेद' के नीचे लकीरें हैं, उनपर हरताल है। हाशियेपर 'बन' (बर) बना है। सब पुरानी स्याहीका है। जान

शब्दार्थ—**सम=शम**।=अन्त:करण तथा अन्तर-इन्द्रियोंको वशमें करना। मनोनिग्रह। **जम**=चित्तको धर्ममें स्थिर रखनेवाले कर्मोंका साधन। मनुके अनुसार शरीर-साधनके साथ-साथ इनका पालन नित्यकर्त्तव्य है। मनुने अहिंसा, सत्य वचन, ब्रह्मचर्य, अकल्पता और अस्तेय ये पाँच यम कहे हैं। पर पारस्करगृह्यसूत्रमें तथा और भी दो-एक ग्रन्थोंमें इनकी संख्या दस कही गयी है और नाम इस प्रकार दिये गये हैं। ब्रह्मचर्य, दया, क्षान्ति, ध्यान, सत्य, अकल्पता, अहिंसा, अस्तेय, माधुर्य और यम। यम योगके आठ अङ्गोंमेंसे पहला अङ्ग है। (श० सा०) उत्तरकाण्ड ज्ञानदीपक प्रसंगमें इनका विशेष उल्लेख किया गया है। **नियम**=शौच, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय इत्यादि क्रियाओंका पालन करना और उनको ईश्वरार्पण कर देना। (श० सा०) याज्ञवल्क्यस्मृतिमें यम और नियम दस-दस प्रकारके कहे गये हैं। यथा—'**ब्रह्मचर्यं दया क्षान्तिर्दानं सत्यमकल्पता। अहिंसास्तेयमाधुर्ये दमश्चेति यमाः स्मृताः॥ स्नानं मौनोपवासेज्यास्वाध्यायोपस्थनिग्रहाः नियमा गुरुशुश्रूषा शौचाक्रोधाप्रमादता॥**' (३१२-३१३) और भागवतमें बारह कहे हैं, यथा—'**अहिंसा सत्यमस्तेयमसङ्गो ह्रीरसञ्चयः। आस्तिक्यं ब्रह्मचर्यं च मौनं स्थैर्यं क्षमाभयम्॥ शौचं जपस्तपो होमः श्रद्धाऽऽतिथ्यं मदर्चनम्। तीर्थाटनं परार्थेहा तुष्टिराचार्यसेवनम्॥**'(३३-३४) '**एते यमाः सनियमा उभयोर्द्वादश स्मृताः॥**' (११। १९) गायत्रीभाष्यमें दस नियम इस प्रकार हैं—'**शौचेज्या च तपो दानं स्वाध्यायोपस्थनिग्रहम्। व्रतोपवासमौनानि स्नानं च नियमा दश॥**'

अर्थ—शम, यम, नियम (इस अमराईके) फूल हैं, ज्ञान फल है। हरिपदमें प्रीति होना फलका रस है (ऐसा) वेदोंने कहा है॥ १४॥

☞ भा० दा० ने 'संजम' पाठ दिया है, उसीके अनुसार पं० रामकुमारजीने भाव कहे हैं। सुधाकर द्विवेदीजीने 'सम जम' पाठ दिया है।

नोट—१ (क) अमराई कहकर उसके वृक्ष, लता और वितान कहे। पेड़ों और लताओंमें फूल-फल होते हैं। अब बताते हैं कि रामचरितमानस-सरके संतसभारूपी अमराईमें फूल-फल क्या हैं। (ख) उधर वसन्तमें आममें बौर लगता है और आम फलता है। यहाँ संतोंमें श्रद्धासे संयम (शम, यम), नियम और ज्ञान होते हैं। फलमें रस होता है, यहाँ हरिपदमें प्रीति होना यह ज्ञानका रस है—'***सोह न राम प्रेम बिनु ज्ञानू।***' (२। २७७) (ग)—जैसे फूलसे फल लगे तब फूलकी शोभा है, फल न लगा तो फूल व्यर्थ हुआ, वैसे ही शम, यम, नियम करनेपर यदि ज्ञान न हुआ तो वह यम-नियम आदि व्यर्थ हैं। फूलमें फल भी लगा पर वह परिपक्व न होने पाया, सूख गया, उसमें रस न हुआ, तो वह फल भी व्यर्थ गया। इसी तरह ज्ञान होनेपर श्रीरामपदमें प्रेम न हुआ तो वह ज्ञान भी व्यर्थ है, उस ज्ञानकी शोभा नहीं। (घ) यम, नियम योगके अंग हैं। योगसे ज्ञान होता है, यथा—'***धर्म ते बिरति जोग ते ज्ञाना।***' (३। १६) ज्ञानसे भक्ति होती है, यथा—'***होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा॥***' (२। ९३। ४) इसीसे यम, नियम, ज्ञान और हरिपदरति क्रमसे लिखे गये। (ङ) शम, यम, नियमको फूल इसलिये माना कि इन्हींसे संतसभाकी शोभा है। पुष्पके बिना फल नहीं होता, वैसे ही शम-यमादि-बिना ज्ञान नहीं होता। फलके साधन पुष्प होते हैं और ज्ञानके साधन शम, यम, नियम हैं। रस उस भागका नाम है जिसके द्वारा स्वाद लेनेकी योग्यता होती है। (सू० मिश्र)

नोट—२ ऊपर चौपाई १० '***नव रस जप तप जोग बिरागा। ते सब जलचर चारु तड़ागा॥***' में योगको जलचर कहा और यहाँ योगके अंगको फूल और योगकी सिद्धिको ज्ञान कहते हैं। ज्ञानका रस भक्ति है, इसपर वेदकी साक्षी देते हैं। यहाँ जनाते हैं कि कर्म, ज्ञान और उपासना क्रमसे होते हैं।—यह विशिष्टाद्वैत-सिद्धान्त है।

नोट—३ '***हरिपदरति रस***' कहनेका भाव यह है कि जिस ज्ञानमें हरिभक्ति नहीं, वह ज्ञान व्यर्थ है। वह फल रसरहित सारहीन है। यथा—'***सोह न रामप्रेम बिनु ग्यानू***', '***जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहिं***

पड़ता है कि 'रस बेद' के बीचका 'बर' शब्द छूट गया था वह V चिह्न देकर हाशियेपर बनाया गया था। 'ति र' की स्याही उससे कुछ फीकी है।

राम प्रेम परधानू॥' (२। २९१) ☞ मिलान कीजिये—'**ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति। समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥**' (गीता)

नोट ४—'*बेद बखाना,*' यथा—'**निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्। पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः॥**' (श्रीमद्भागवत १। १। ३) अर्थात् अहो भावुक रसिकगण! वेदरूप कल्पवृक्षका यह अमृतरससे परिपूर्ण भागवतरूप फल शुकके मुखसे पृथ्वीपर गिरा है, इसके भगवत्कथारूप अमृतरसका आपलोग मरणपर्यन्त बार-बार पान करते रहें।

ज्ञानको फल और '*हरिपदरति*' को उसका रस कहा; यह विशिष्टाद्वैत-सिद्धान्त है। अद्वैत-सिद्धान्त भक्तिको ज्ञानका साधन मानता है। गोस्वामीजीका मत विशिष्टाद्वैतके अनुकूल है।

औरौ कथा अनेक प्रसंगा। तेइ सुक पिक बहु बरन बिहंगा॥ १५॥

शब्दार्थ—**प्रसंगा** (प्रसङ्ग)=मेल, सम्बन्ध, सङ्गति। विषय, बातें।

अर्थ—और भी अनेक कथाएँ और अनेक प्रसङ्ग (वा, कथाओंके अनेक प्रसङ्ग जो इस मानसमें आये हैं) ही तोता, कोकिल आदि बहुत रंगके पक्षी हैं॥ १५॥

अर्थान्तर—२ 'प्रसङ्ग पाकर जो कथाएँ कही गयी हैं……'। (पाँ०)

३—'और बीच-बीचमें प्रसंगवश जो कथा, जैसे कि पार्वतीविवाह, भानुप्रतापकथा, नारद-अभिमानभञ्जनके लिये स्वयंवरकी रचना इत्यादि आ गयी हैं वे ही बरन-बरनके शुक, पिक हैं जो ऋतुविशेषमें कभी-कभी देख पड़ते हैं।' (सु० द्विवेदी)

मा० प्र०—मानससरकी अमराईमें बाहरके पक्षी भी आते हैं, जल पीते हैं, अमराईमें कुछ देर ठहरते हैं, फिर उड़कर चले जाते हैं।

टिप्पणी—रामचरितमानसमें अनेक कथाएँ और अनेक प्रसङ्ग हैं; इन्हींको संत विस्तारसे कहते हैं। कथाएँ जैसे कि सती-मोह, शिवविवाह आदि। प्रसङ्ग, यथा—'*तेहि सब आपनि कथा सुनाई। मैं अब जाब जहाँ रघुराई॥*' (४। २५), '*कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। बालि महाबल अति रनधीरा॥ दुंदुभि अस्थि ताल देखराए॥*' (४। ७), '*इहाँ साप बस आवत नाहीं।*' (कि० ६) '*सबरी देखि राम गृह आये। मुनि के बचन समुझि जिय भाये॥*' (३। ३४), '*दंडकबन पुनीत प्रभु करहू। उग्रसाप मुनिबर कर हरहू॥*' (३। १३), '*भा निरास उपजी मन त्रासा। जथा चक्र भए रिषि दुरबासा॥*' (३। २), '*ससि गुरु तिय गामी नहुष चढ़ेउ भूमिसुर जान। लोक बेद ते बिमुख भा अधम न बेन समान॥*', '*सहसबाहु सुरनाथ त्रिसंकू। केहि न राजमद दीन्ह कलंकू॥*' (२। २२८-२२९) '*परसुराम पितु आज्ञा राखी। मारी मातु लोक सब साखी॥ तनय जजातिहि जौबन दयऊ। पितु अज्ञा अघ अजसु न भयऊ॥*' (अ० १७४), '*सिबि दधीचि हरिचंद नरेसा। सहे धरम हित कोटि कलेसा॥ रंतिदेव बलि भूप सुजाना॥*' (२। ९५) इत्यादि प्रसङ्ग हैं जो कथामें उदाहरणरूपसे या प्रसङ्गवश लिख भर दिये गये। इन प्रसङ्गोंकी कथाएँ अन्य ग्रन्थोंसे कही जाती हैं, जहाँकी वे हैं। मानसमें इनकी कथाएँ नहीं हैं।—[दूसरा भाव यह है कि बहुत-सी कथाएँ श्रीमद्भागवतकी हैं, श्रीमद्भागवतको शुकजीने कहा है। अतः उन कथाओंको 'शुक' कहा। कुछ कथाएँ वाल्मीकीयकी हैं, यथा—'*गाधिसूनु सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई॥*', '*तेहि सब आपनि कथा सुनाई। मैं अब जाब जहाँ रघुराई॥*' वाल्मीकिजीको कोकिल कहा ही है, यथा—'**कूजन्तं रामरामेति मधुरं मधुराक्षरम्। आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम्॥**' अतः इनकी कथाको 'पिक' कहा। और कुछ कथाएँ महाभारतादिकी हैं, उन्हें '*बहु बरन बिहंगा*' कहा। (वि० त्रि०)]

नोट—१ मानसपरिचारिकाके मतानुसार '*कथा प्रसंगा*' से उन कथाओंका तात्पर्य है जो रामचरितमानस कहते समय प्रसङ्ग पाकर संत लोग दृष्टान्तके लिये या प्रमाणपुष्टिके लिये देते हैं। ये कथाएँ मानससरके वह पक्षी हैं जो बाहरसे आकर अमराईमें कुछ समय ठहरकर उड़ जाते हैं। वैसे ही कथाका प्रसङ्ग थोड़े समयका होता है। प्रसङ्गकी कथा समाप्त हुई, फिर रामचरितमानसकी कथा होने लगी। प्रसङ्गका

आना और उसकी कथाका समाप्त होना ही पक्षियोंका थोड़े समय विश्राम लेकर उड़ जाना है। उदाहरण वही हैं जो ऊपर 'प्रसङ्ग' के दिये गये हैं।

मा० मा० कार इस मतका विरोध करते हुए लिखते हैं कि 'यह भाव मुझे उत्तम नहीं जँचता, क्योंकि मूलहीमें वर्णन है कि *'औरौ कथा अनेक प्रसंगा। तेइ सुक पिक बहु बरन बिहंगा॥'* अर्थात् रामयश, सुकृती लोगोंका यश और साधुओंके यशके सिवा और भी अनेक कथाका प्रसङ्ग मानसमें वर्णन है, वही अनेक रङ्गके पक्षी हैं, ये संतसभा अमराईके स्थायी पक्षिगण हैं। जैसे प्रथम ज्ञान-विरागादि हंस, सुकृती-साधु-यशगान जलविहंग मानसहीमें दिखाया गया, उसी प्रकार संतसभा अमराईमें अन्य कथा-प्रसङ्गरूपी पक्षियोंको दिखलाना चाहिये। यदि मानसकी कथा नहीं कही जाय, केवल मूलका पाठ किया तब तो अन्य कथा-प्रसङ्ग पक्षीका आगमन नहीं हुआ?'—कथनका तात्पर्य यह कि कथाओंके प्रसङ्ग चहुँ दिशि अमराईके स्थायी पक्षी हैं।

नोट—२ ☞विवेकी पाठक यहाँ विचार कर लें कि इस दोहेमें पक्षी वा विहंगका प्रयोग किन चार स्थितियोंमें किया गया है। चार बार विहंगोंकी उपमा इस दोहेमें दी गयी है, यथा—१ *'सुकृत पुंज मंजुल अलि माला। ज्ञान बिराग बिचार मराला॥'* (१। ३६। ७) २—*'सुकृती साधु नाम गुन गाना। ते बिचित्र जल बिहग समाना॥'* (१। ३६। ११)—*'औरौ कथा अनेक प्रसंगा। तेइ सुक पिक बहु बरन बिहंगा॥'* (१। ३६। १५)—*'पुलक बाटिका बाग बन सुख सुबिहंग बिहारु।'* (दो० ३७)

दोहा—पुलक बाटिका बाग बन सुख सुबिहंग बिहारु।
माली सुमन सनेह जल सींचत लोचन चारु॥ ३७॥

शब्दार्थ—**पुलक**=रोमाञ्च होना, आनन्दमें रोमका खड़ा होना। **सुमन**=सु+मन=सुन्दर मन।

अर्थ—(संतसभामें कथासे) रोमाञ्च (पुलक) होना फुलवारी, बाग और वन है। (जो) सुख (होता है वही) सुन्दर पक्षियोंका विहार है। निर्मल मन माली है जो स्नेहरूपी जलसे सुन्दर नेत्र (रूपी घड़ोंके) द्वारा उनको सींचता है॥ ३७॥

श्रीसुधाकर द्विवेदीजी—कथाओंके सुनने और अनुभव करनेसे जो थोड़ा, कुछ अधिक और अत्यन्त रोमाञ्च हो जाते हैं वे इस मानसके आसपास सन्त-सुखरूप पक्षियोंके विहार करनेके लिये वाटिका, बाग और उपवन हैं तिन्हें संतोंके सुन्दर मनमाली स्नेहजलसे दोनों आँखोंरूप हजारेसे सींचा करते हैं। इस सिञ्चनसे वे वाटिका, बाग और वन सदा प्रफुल्लित रहते हैं।

* 'पुलक बाटिका बाग बन' इति *

१—वाटिकासे बाग बड़ा होता है और बागसे वन। वाटिका, बाग और वन क्रमसे कहे, इससे जान पड़ा कि सरके चारों ओर अमराई है, जिसके चारों ओर वाटिका है, फिर बाग, फिर वन। यही क्रम जनकपुरमें भी दिखाया गया है; यथा—*'सुमन बाटिका बाग बन बिपुल बिहंग निवास। फूलत फलत सुपल्लवत सोहत पुर चहुँ पास॥'* (१। २१२)

२—वनमें कोई माली नहीं रहता, यहाँ वनके लिये भी माली कहा है। मानसतत्त्वविवरणमें इसका समाधान यह किया है कि वृन्दावन, प्रमोदवन इत्यादि विहार स्थलोंमें वृन्दासखी इत्यादि मालिनें हैं, उन्हींकी अपेक्षासे यहाँ भी माली कहा है।

३—पुलकावली जो संत-सभामें होती है उसको यहाँ वाटिका, बाग और वनकी उपमा दी है। इससे यहाँ पाया जाता है कि पुलकावली भी तीन प्रकारकी हैं।

☞ श्रीकरुणासिन्धुजी, सन्त श्रीगुरुसहायलालजी, महाराज श्रीहरिहरप्रसादजी, श्रीबैजनाथजी, श्रीजानकीदासजी इत्यादि प्रसिद्ध टीकाकारोंने अपने-अपने विचार इस विषयमें जो प्रकट किये हैं वह नक़शेमें लिखे जाते हैं—

टीकाकार	वाटिका	बाग	वन
१—बाबा हरिहरप्रसादजी (रा० प्र०)	(क) 'जो प्रथम दिन समाजमें आते हैं उनको थोड़ा रोमाञ्च होता है, जैसे वाटिकामें थोड़े वृक्ष होते हैं जो थोड़ा ही घाम पाकर कुम्हला जाते हैं।' (ख) 'माधुर्य-रसमें जो छके हुए हैं उनकी पुलकावली पुष्पवाटिका है। वाटिका अति रमणीय होती है और उसमें पुष्प नाना भाँतिके होते हैं वैसे ही ये अनेकानन्दयुक्त हैं।'	'जो थोड़े दिनोंसे सभामें आने लगे हैं उनकी पुलकावली बाग है, बागमें वृक्ष वाटिकासे अधिक होते और घाम भी कुछ अधिक सह सकते हैं। ऐश्वर्योपासकोंकी पुलकावली बाग है क्योंकि बाग कम सुन्दर होते हैं।' (रा० प्र०) मा० त० वि०—'बागमें रसाल फल अधिक, उसी तरह ज्ञानीको ब्रह्मानन्दरूप फलकी पुलकावली है सोई बाग है।'	'जो चिरकालसे समाजमें रहते हैं, आनन्दमें भरे हैं, इनकी पुलकावली वन है। वन सदा हरा रहता है।' 'कर्मकाण्डयुक्त उपासकोंकी पुलकावली वन है, क्योंकि वनकी शोभा फुलवारी और बागसे बहुत कम होती है।' (रा० प्र०) संत उन्मनी टीका—'वनमें अनेक प्रकारके फल और कर्मकाण्डमें अनेक कर्मफलके प्राप्तिकी अपेक्षा रहती है।'
२—बाबा हरिदास	(ग) कथन-श्रवणसे जो उत्तम पुलकावली होती है वह वाटिका है।	मध्यम पुलकावली बाग है।	निकृष्ट पुलकावली वन है। वन दैवयोगसे सींचा जाता है इससे निकृष्ट है।
३—श्रीजानकीदासजी (मा० प्र०, रा० प्र०, वि० त्रि०)	'भक्तिकी पुलकावलीमें बार-बार अश्रुपात होते हैं और वाटिकामें सब दिन जलकी नहर लगी रहती है और कभी पुष्पोंका अभाव नहीं होता। जिससे पुलकवाटिका बारह मास फूली रहती है।' यहाँ पुलकावली अश्रुपातादिकी तुलना पुष्पोंसे है। यथा—'*पुलकित गात अत्रि उठि धाए।*.....'(३।३।५-६)	केवल ज्ञानकी पुलकावली बाग है। जैसे बागमें चार-छः महीनेमें जल दिया जाता है वैसे ही ज्ञानकाण्डमें पुलकावली थोड़ी है। ज्ञानी भक्तोंको सदा पुलकावली नहीं होती। यथा—'*जाना राम प्रभाव तब पुलक प्रफुल्लित गात*'	'कर्मकाण्डकी पुलकावली वन है जैसे वनका सींचना दैवाधीन वैसे ही कर्मकाण्डकी पुलकावली दैवाधीन है।' यथा—'*मुनि पुलके लखि सीलु सुभाऊ।*'

टीकाकार	वाटिका	बाग	वन
४—करु०, मा० प्र०, मा० पत्रिका	प्रेमी भक्त पुलकावलीशून्य नहीं। वाटिकामें पुष्प अनेक, यहाँ रोमकूप अनेक। पुष्पमें रस जिसके ग्राही भ्रमरादि जन्तु, पुलकावलीमें ही सीतारामजीके गुणस्वरूप माधुर्यादिक रसस्थानापन्न हैं और उसमें जो स्वभावानुकूल सुख है वही रयमुनिया आदि विहङ्ग हैं जो विहारपूर्वक माधुरीरसको पान करते हैं। प्रेमीमें आर्तभक्तका भी अन्तर्भाव है।	ज्ञानी बाग हैं। इनकी पुलकावली सदा नहीं रहती, क्योंकि कभी-कभी इनकी समाधि बड़ी गहरी लग जाती है। इस बागका फल जीवन्मुक्ति है जिसमें ब्रह्मानन्दरूप रस है। स्वबुद्धि अनुकूल आनन्द शुकादि पक्षी हैं जो ब्रह्मानन्दमें विहार करते हैं।	कर्मपदारूढ़ साधनावस्थाके भक्तोंकी पुलकावली दैवाधीन है कभी हुई तो अच्छा, नहीं तो नहीं है ही। कर्मकाण्डमें अर्थ, धर्म, काम, उत्तम, मध्यम, अधम फल हैं। इसका जो अहङ्कारपूर्वक सुख है वही उत्तम, मध्यम, अधम तीन प्रकारके पक्षी हैं। जो उनके भोगरूप रसको लेते हैं।
५—मा० प०	पुष्पवाटिकामें सुगन्ध बहुत, प्रेमी भक्तका आदर बहुत।	बाग बड़ा और ज्ञानी भक्त भी बड़े गिने जाते हैं।	५ वनका पूरा पता लगाना मनुष्यशक्तिके बाहर, कर्मकाण्डीकी दशा भी वैसी ही है; क्योंकि कर्मकाण्डके सारे प्रकरणोंका पता लगाना और उनपर चलना शक्तिसे बाहर है।
६—संत श्रीगुरुसहाय लालजी	'निष्काम भक्तोंकी पुलकावली वाटिका है, वाटिकामें पुष्पोंकी अधिकता और इनमें आकांक्षाकी व्यवस्था।'	'सकाम भक्तोंकी पुलकावली बाग है, क्योंकि नित्य अपकर्मके समय कर्मनिवेदन भी करते हैं, पर कामनाके लिये प्रार्थना वा सम्पुटादि भगवत्सम्बन्धी भी कर लेते हैं।'	६ 'ज्ञानियोंका रोमाञ्च वन है; क्योंकि इनकी केवल मुक्तिमात्र फलकी अपेक्षा रहती है।'
७—श्रीबैजनाथजी	'मुग्धा भक्तोंमें थोड़ा प्रेम होता है। इसीसे पुलकावली थोड़ी और वाटिका देखनेमें छोटी।'	मध्या भक्तोंका पुलक बाग है जो वाटिकासे बड़ा होता है। मुग्धा भक्तोंसे मध्यमकी पुलकावली बड़ी है।	७ प्रौढ़ भक्तोंका पुलक एकरस सदा वन-समान बड़ा है। वन बागसे भी बड़ा, वैसे ही इनका पुलक सबसे अधिक।
८—पाँडेजी	हर्षसे फूल उठना वाटिका है।	फूलनेसे जो उनका सुनना सुफल हुआ वह बाग है।	आनन्दमें अपनेको भूल जाना वन है।

☞ गोस्वामीजीने मानसके रूपकमें 'कमल, पुरइन, अमराई, वन, बाग' आदिका वर्णन किया है। परन्तु कुछ यात्रियोंका कहना है कि वहाँ कुछ छोटे-छोटे पौधे और कुछ पहाड़ी घासके अतिरिक्त कुछ नहीं होता। विशेष कालतक तो वह बर्फसे ही ढका रहता है। इस प्रकार इस रूपकमें काव्यका 'ख्यातिविरुद्धता दोष' आ जाता है?

इस शंकाका समाधान यह है कि लोकमें अप्रसिद्ध होनेपर भी कवि-समयमें यदि यह बात प्रसिद्ध वा संगृहीत है तो उसका वर्णन-दोष नहीं किन्तु गुण है। यथा—'**कवीनां समये ख्याते गुणः ख्यातिविरुद्धता**' (साहित्यदर्पण ७। २२)। '**समय**' का अर्थ है सम्प्रदाय वा पद्धति। यह तीन प्रकारका है—'**असतोऽपि निबन्धेन सतामप्य निबन्धनात्। नियमस्य पुरस्कारात् सम्प्रदायस्त्रिधा कवेः॥**' (सा० द० टीका) अर्थात्—१ जो बात है ही नहीं उसको कहना। जैसे कि जहाँ भी छोटा-मोटा जलाशय है वहाँ हंस आदिका वर्णन, नदी और आकाश आदिमें कमलका वर्णन, आकाश नदीमें हाथीका वर्णन, कीर्ति और पुण्यको शुक्ल, अकीर्ति और पापको कृष्णवर्ण वर्णन और चकोरका चन्द्रकिरणभक्षण इत्यादि। यथा—'**रत्नानि यत्र तत्रादौ हंसाद्यल्पजलाशये। जलेभाद्यं नभो नद्यामम्भोजाद्यं नदीष्वपि। ……शुक्लत्वं कीर्तिपुण्यादौ कार्ष्ण्यं चाकीर्त्यघादिषु।……ज्योत्स्नापानं चकोराणां शैवालं सर्ववारिषु।**' (सा० द० टीका) २—जो विद्यमान है उसका अभाववर्णन अर्थात् उसको कहना कि नहीं होता। जैसे कि वसन्तमें मालतीपुष्प, चन्दनमें फूल-फल, स्त्रियोंमें श्यामता इत्यादि वे कभी नहीं वर्णन करते। यथा—'**वसन्ते मालती पुष्पं फले पुष्पे च चन्दने……नारीणां श्यामता……**'। ३—कुछ उनके अपने विशेष बँधे हुए नियम। जैसे कि भोजपत्र हिमालयहीपर, चन्दन मलयगिरिहीपर और कमल हेमन्त और शिशिरऋतु छोड़ सब ऋतुओंमें होता है। यथा—'**हिमवत्येव भूर्जत्वक् चन्दनं मलये परम्। हेमन्तशिशिरौ त्यक्त्वा सर्वदा कमलस्थितिः।**' (सा० द० टीका)

उपर्युक्त श्लोक कुछ हेर-फेरसे 'काव्यकल्पलतावृत्ति' के प्रतान १ स्तवक ५ में (श्लोक ९४ से अंततक) हैं और उसीमें 'सरमें कवियोंको क्या-क्या वर्णन करना चाहिये' यह भी लिखा है। यथा—'**सरस्यम्भो लहर्यम्भोगजाद्यम्बुजषट्पदाः। हंसचक्रादयस्तीरोद्यानस्त्रीपान्थकेलयः॥**'(६५) अर्थात् तालाबमें जल, लहर, जलहस्ती, कमल, भ्रमर, हंसादि पक्षी, तीरमें बाग-बगीचा, स्त्रियों और पथिकोंकी जलक्रीड़ा—इनका वर्णन प्रायः होता है।

काव्यके इस नियमके अनुसार सत्कवि जलाशयों, नदी, समुद्र, तालाब आदिमें कमल और हंस आदिका वर्णन किया करते हैं। यथा—'**मालिन्यं व्योम्नि पापे यशसि धवलता वर्ण्यते हास कीर्त्यो रक्तौ च क्रोधरागौ सरिदुदधिगतं पंकजेन्दीवरादि। तोयाधारेऽखिलेऽपि प्रसरति च मरालादिकः पक्षिसंघो ज्योत्स्ना पेया चकोरैर्जलधर समये मानसं यान्ति हंसाः॥**', '**अह्न्यम्भोजं निशायां विकसति कुमुदं चन्द्रिका शुक्लपक्षे मेघध्वानेषु नृत्यं भवति च शिखिनां नाप्यशोके फलं स्यात्। न स्यात् जाती वसन्ते न च कुसुम फले गंधसारद्रुमाणामित्याद्युन्नेयमन्यत् कविसमयगतं सत्कवीनां प्रबन्धैः॥**'(सा० द० ७। २३, २५) अर्थात् आकाश और पापमें मालिन्य यश, हास्य और कीर्तिमें शुक्लता, क्रोध और रागमें रक्तता, नदी और समुद्रमें कमलादि, समस्त जलाशयोंमें हंसादि पक्षी, चकोरका चन्द्रकिरणभक्षण, वर्षासमयमें हंसोंका मानससरको चले जाना, दिनमें कमलका और रात्रिमें कुमुदका खिलना, शुक्लपक्षमें ही चंद्रिका, मयूरका मेघध्वनि होनेपर नृत्य करना, अशोकमें फलका अभाव, वसन्तमें जातीपुष्पका और चन्दनमें फूल-फलका अभाव—इत्यादि कविसम्प्रदायकी बातोंको सत्कवियोंके काव्योंसे निर्णीत कर लेना चाहिये।

सत्कवियोंके इस नियमानुसार मानसकविने यहाँ मानस-सरके रूपकमें कमल, हंस, वन, बाग और पक्षी आदिका वर्णन किया है।

नोट—१ सात्त्विक भाव होनेसे ही पुलक होता है, सात्त्विक भावमें सुख है। अतः 'सुख' को '*सुबिहंग बिहारु*' कहा। भयादिकोंमें भी रोमाञ्च होता है, अतः उसके व्यावर्तनके लिये '*सुबिहंग*' कहा, क्योंकि

यहाँ सुमतिका प्रसङ्ग चल रहा है। कुबिहंग कुमतिके प्रसङ्गमें कहा गया है, यथा—'*कुमति कुबिहँग कुलह जनु खोली।*' (२। २८। ८) जहाँ-जहाँ पुलक है वहाँ आनन्दसे पुलक है। यहाँ सुखरूपी विहंग मानससरके वासी हैं, ये बाहरसे नहीं आये हैं, अत: यहाँ विहार करते हैं। (वि० त्रि०)

पुलकाङ्गकी दशामें जो सुख है वही सुविहंगविहार है। पाँडेजी कहते हैं कि 'इस दशामें जो सुख हुआ वही सुन्दर पक्षी होकर विहार कर रहा है।' वह सुख क्या है? किसका सुख कौन पक्षी है?

उत्तर-१ मानसमयङ्ककार लिखते हैं कि—'उपासना, ज्ञान और कर्मका समाज मानो क्रमसे पुष्प-वाटिका, बाग और वन हैं और तीनों समाजोंको सुखकी प्राप्ति, अर्थात् क्रमसे श्रीरामचन्द्रजीकी प्राप्ति ब्रह्मकी प्राप्ति और शुभ-प्राप्ति, ये तीनों सुख मानो मधुकर, शुक और लावक आदि विहङ्ग-विहार हैं। इन तीनों (वाटिका, बाग और वन) का माली सुष्ठु मन है। यदि मन सुष्ठु रहा तो सब हरा-भरा रहा नहीं तो सब सूख जाते हैं, अतएव मालीकी सुष्ठुता बिना केवल परिश्रम ही है।'—[मा० मा० कार इसीको इस प्रकार लिखते हैं—'भक्तोंको श्रीरामचन्द्रजीके सनातन चतुष्टय (नाम, रूप, लीला, धाम) द्वारा जो सुख होता है वही मधुकर पक्षी होकर वाटिकामें विहार करता है, ज्ञानियोंको ब्रह्मसुख अनुभव होनेपर उस दशाका सुख पक्षी होकर बागमें शुकवत् विहार करता है और कर्मकाण्डियोंको शुभप्राप्तिका सुख लावादिक पक्षी होकर वनमें विहार करता है।]

(२) करुणासिंधुजी तथा श्रीजानकीदासजी लिखते हैं कि 'भक्तिकाण्डमें अपने-अपने भावानुकूल जो सुख होता है वह रयमुनिया आदिक विहङ्ग हैं। ज्ञानकाण्डमें अपनी बुद्धि-अनुकूल जो सुख होता है, वह शुकादि विहङ्ग हैं जो ब्रह्मानन्दमें विहरे हैं। कर्मकाण्डमें अहङ्कारपूर्वक जो सुख होता है वह उत्तम, मध्यम, निकृष्ट तीन भाँतिके विहङ्ग हैं जो अर्थ, धर्म, काम फलोंके भोगरूप रसको ग्रहण करते हैं।'

नोट-२ स्नेहसे आँसू निकलते हैं?, रोमाञ्च होता है, इसीसे उसको जल कहा। नेत्र घड़ा है। घड़ेसे जल सींचा जाता है और यहाँ पुलकमें नेत्रोंसे अश्रुपात होते हैं। मालीको सुमन कहा, क्योंकि मालीसे वाटिका उदास नहीं होने पाती, इसी तरह सुन्दर मनसे पुलकावली नहीं मिटने पाती। पुन: मनके ही द्रवीभूत होनेसे रोमाञ्च होता है, अत: पुलककी स्थिति मनपर ही निर्भर है । पुलकरूपी वाटिका आदिका सिञ्चन नेत्रोंके प्रेमाश्रुद्वारा ही होता है । यथा—'*मम गुन गावत पुलक सरीरा। गद गद गिरा नयन बह नीरा॥*'

जे गावहिं यह चरित सँभारे। तेइ येहि ताल चतुर रखवारे॥ १॥

शब्दार्थ-**सँभारे**=सँभालकर; चौकसीसे; सावधानतापूर्वक। '*सँभारना*' शब्द ग्रन्थमें स्मरण करनेके अर्थमें भी आया है, यथा—'*बार बार रघुबीर सँभारी। तरकेउ पवन तनय बल भारी॥*' (५। १) '*तब मारुतसुत प्रभु सँभारेउ।*' (लं० ९४)

अर्थ—जो लोग रामचरितमानसको सँभालकर (सावधानीसे) गाते (कहते) हैं वे इस सरके चतुर रखवाले हैं॥ १॥

नोट-१ पं० रामकुमारजी—दोहा ३७ तक सरका वर्णन हुआ। अब यहाँसे उसके बाहरका वर्णन है। सर तो अपने स्वरूपहीसे सुन्दर है, वह नहीं बिगड़ता। सरपर जो रक्षक (पहरेवाले) रहते हैं, वे बाहरकी खराबियों और न्यूनताओंसे सरकी रक्षा करते हैं। यहाँ यह बतलाते हैं कि रामचरितमानसमें रखवाले कौन हैं? [मानससरमें देवताओंकी ओरसे प्रवीण रक्षक रहते हैं कि कोई जल न बिगाड़े, उसमें थूके, खखारे नहीं। (मा० प्र०)]

नोट-२'*जे गावहिं*' इति। इसके मुख्य श्रोता सज्जन हैं। गोस्वामीजी तो सज्जनोंहीसे कह रहे हैं सो ये तो घाटहीमें हैं। इनके अतिरिक्त और जो कोई वर्णन करें वे रखवाले हैं।—[गानमें सबका अधिकार बताया। अपने समाजमें सभीको अधिकार है। पक्षिसमाजमें भुशुण्डीजी कहते और गरुड़जी

सुनते हैं। देवसमाजमें शंकरजी, मुनिसमाजमें याज्ञवल्क्यजी और नरसमाजमें गोस्वामीजी वक्ता हैं। यहाँ 'गान' का अर्थ प्रेम और आदरसे बखान करना है। इसी अर्थमें इस शब्दका बारम्बार प्रयोग हुआ है। यथा—*'रिपु कर रूप सकल तैं गावा।'* (लं०), *'हरि चरित्र मानस तुम्ह गावा', 'रघुपति कृपा जथा मति गावा।'* इत्यादि वि० त्रि०]

नोट—३ *'सँभारे', 'चतुर रखवारे'* इति। (क) रखवालोंका काम यह है कि पुरुषके घाटमें स्त्री, स्त्रीके घाटमें पुरुष न जावें, कोई सरमें थूके-खखारे नहीं, कोई निषिद्ध वस्तु इसमें न पड़े, इत्यादि। रामचरितमानसके पढ़नेमें स्त्रीलिङ्गकी जगह पुँल्लिङ्ग और पुँल्लिङ्गकी जगह स्त्रीलिङ्ग शब्द पढ़ना पनघटमें पुरुषका और पुरुषोंके घाटमें स्त्रीका जाना है। पाठका बदलना, क्षेपक मिलाना, अशुद्ध पढ़ना इत्यादि ही थूकना, खखारना, निषिद्ध वस्तुका डाल देना है। (मा० प्र०) (ख) *'सँभारे'* पद देकर सूचित किया कि सँभालकर गाना सबसे नहीं बनता। सँभालकर गाना यह है कि स्मरण और विचारपूर्वक पढ़े, पाठ शुद्ध हो, दोष बचाते हुए, अर्थ समझते हुए औरोंकी अशुद्धियोंको प्रसङ्ग-अनुकूल ठीक करके पढ़ना 'सँभारकर गाना' है। 'चतुर' अर्थात् होशियार, अचूक। (ग) सू० मिश्रका मत है कि *'सँभारे'* का भाव यह है कि जो ग्रन्थकारने कहा है कि '**नानापुराणनिगमागमसम्मतम्**' मं० श्लो० ७, उसीके अनुसार वेदमत-लोकमत और पूर्वापर सम्बन्ध या पूर्वापर विरोध और काव्यदोष, विचारपूर्वक विचार और उसीके अनुकूल अर्थ विचारकर कहना। बिना प्रेमके गाना नहीं हो सकता। जिसका जिसमें प्रेम होता है वही उसकी रक्षा करता है। इस तरह ग्रन्थकारने बताया है कि इस ग्रन्थके प्रेमी ही इसके रक्षक हैं और होंगे।' और पाँडेजी श्रीशिवजी, भुशुण्डीजी, याज्ञवल्क्यजी और गोस्वामीजीके गुरुको रखवाले कहते हैं (पर इस मतसे हम सहमत नहीं हैं)। (घ) *'रखवारे'* का तात्पर्य यह है कि जहाँ जो रस प्रधान हो वहाँ वही कहा जाय और रसाभास न हो। (पाँ०) पुनः, इस मानसके रखवालोंका काम है कि यदि कोई एक चौपाई या दोहा लेकर औरका और अर्थ करे तो वह उसकी वाणीका पूर्वापर प्रसङ्गसे खण्डन कर दें। (मा० प्र०) *'चतुर रखवारे'* कहकर यह भी जनाया कि चरितके गान करनेवाले 'रखवाले' हैं, गान करनेसे मानस बना रहेगा, नहीं तो लुप्त हो जायगा। और सँभालकर गानेवाले 'चतुर रखवाले' हैं।

सदा सुनहिं सादर नर नारी। तेइ सुरबर मानस अधिकारी॥ २॥

अर्थ—जो स्त्री-पुरुष इसे सदा (नियमपूर्वक) आदरसहित सुनते हैं वे ही सुन्दर मानसके उत्तम अधिकारी, श्रेष्ठ देवता हैं॥ २॥

नोट—१ मानस-सरके रक्षक ऋषि एवं देवता हैं और देवता एवं ऋषि ही उसके स्नान-पानके अधिकारी हैं। रामचरितमानसके अधिकारी कौन हैं यह यहाँ बताते हैं। ऊपर चौपाईमें गानेवालों अर्थात् वक्ताओंको बताया, उनके श्रोता होने चाहिये सो यहाँ कहते हैं।

नोट—२ यहाँतक तदाश्रय कहकर अब यहाँसे अधिकारी, अनधिकारी, मार्गकी कठिनाइयाँ और उनका निवारण यह सब कहते हैं—*'सदा सुनहिं सादर', 'नर नारी', 'सुरबर मानस अधिकारी।'* (मा० प्र०)

नोट—३ यहाँ दो बातें अधिकारी होनेके लिये जरूरी बतायीं—सदा सुनना और सादर सुनना। सुनना स्नान है, सदा सुनना सदा स्नान करना है। 'सदा' शब्द देकर जनाया कि इसमें प्रतिपदा, अष्टमी, अमावस्या, चतुर्दशी और पूर्णिमा आदि अनध्यायका नियम नहीं है। यह धारणा न हो कि इसे कई बार सुन चुके हैं। इसका रस नित्य सुननेसे ही मिलेगा। *'रामचरित जे सुनत अघाहीं। रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं॥'* (वि० त्रि०) (ख) *'सादर'*=आदरपूर्वक—अर्थात् मन, चित्त और बुद्धि लगाकर। यथा—*'सुनहु तात मति मन चित लाई।'* (३। १५। १) (ग) ☞गोस्वामीजीने यह शब्द उत्तम श्रोताओंके लिये प्रायः सभी स्थानपर दिया है, यथा—*'सादर सुनि रघुपति गुन पुनि आयेउँ कैलास।'* (उ० ५७), *'सादर सुनु गिरिराज कुमारी।'* (१। ११४। २), *'तात सुनहु सादर मन लाई। कहहुँ राम कै कथा सुहाई॥'* (१। ४७), *'कहाँ रामगुनगाथ*

भरद्वाज सादर सुनहु।' (१। १२४) इत्यादि। सर्वत्र सादर सुननेको कहा गया है। (१। ३५। १३) देखिये। (घ) पं० रामकुमारजी लिखते हैं कि 'मानस' तीर्थ है। यहाँ यह जनाया है कि तीर्थमें स्नान आदरपूर्वक करना चाहिये तभी फल होता है, यथा—*'सादर मज्जन पान किए तें। मिटहिं पाप परिताप हिये तें॥'* (१। ४३। ६), *'सोइ सादर सर मज्जन करई। महाघोर त्रयताप न जरई॥'* (१। ३९। ६) (ङ) *'नर नारी'* पदका भाव यह है कि इसके अधिकारी स्त्री-पुरुष सभी हैं, जाति, वर्ण या स्त्री-पुरुषका कोई भेद वा नियम नहीं है।

नोट—४ (क) *'बर' 'मानस'* और *अधिकारी'* दोनोंके साथ है। क्योंकि इस मानसमें सुन्दर रामयश जल है और इसके अधिकारी देवताओंसे श्रेष्ठ हैं क्योंकि देवता अपने ऐश्वर्यमें भूले रहते हैं। यथा—*'हम देवता परम अधिकारी। स्वारथ रत प्रभु भगति बिसारी॥ भव प्रबाह संतत हम परे॥'* (६। १०९) *अधिकारी*=अधिकार पानेके योग्य, सेवा करनेके लायक। (ख) *'ते सुरबर'* कहकर जनाया कि आसुरी सम्पत्तिवाले इसमें स्नान नहीं कर सकते। सादर श्रवण दैवी सम्पत्तिवालोंके लिये ही सम्भव है। (वि० त्रि०) (ग) यहाँ वक्तासे अधिक महत्त्व श्रोताका कहा। वक्ता तो पहरेदार है, उसका सारा समारम्भ तो श्रोताके लिये ही है। यद्यपि यात्रियोंको पहरेदारका आदेश मानना पड़ता है तो भी प्राधान्य यात्रियोंका ही है। इसीसे श्रोताको *'अधिकारी'* कहा। (वि० त्रि०) (घ) सुधाकर द्विवेदीजीका मत है कि अमृतपानके सुखसे भी बढ़कर इसकी कथाका स्वाद जिनके कर्णमें जान पड़ता है वे ही इसके अधिकारी हैं। जैसे देवता अमृत पीते-पीते उकताकर मानसके जलको अधिक स्वादिष्ट समझ पीते हैं वैसे ही जो अनुरागी नारी-नर सब कथाओंसे बढ़कर इस मानसकथाको समझते हैं वे ही इसके सच्चे अधिकारी देवता हैं।

अति खल जे बिषई बग कागा। एहिं सर निकट न जाहिं अभागा॥ ३॥

अर्थ—जो बहुत ही दुष्ट और विषयी हैं, वे बगुले और कौवे हैं। वे अभागे इस सरके पास नहीं जाते ॥ ३॥

नोट—१ ऊपर मानसके अधिकारी कहे अब उसके अनधिकारी कहते हैं।

नोट—२ *'अति खल जे बिषई बग कागा'* इति। (क) खलोंके लक्षण दोहा ४, ५ में कहे गये हैं। खल और कामी सत्सङ्ग करते हैं और सुधर जाते हैं जैसा वहाँ कह आये हैं, यथा—*'खलउ करहिं भल पाइ सुसंगू।'* (१। ७। ४), *'मज्जन फल पेखिय तत काला। काक होहिं पिक बकउ मराला॥'* (१। ३। १) और पुनः आगे कहा है कि *'बिषइन्ह कहँ पुनि हरि गुन ग्रामा। श्रवन सुखद अरु मन अभिरामा॥'* (७। ५३। ४) इसीसे यहाँ *'अति खल बिषई'* कहा क्योंकि ये सत्सङ्गसे भागते हैं। इसीसे भाग्यहीन भी कहा। ये *'अति खल'* हैं, *'अति बिषई'* हैं। *'बिषई'* का अन्वय कागाके साथ होनेका कारण यह है कि काग मलिन वस्तु (विष्ठा) खाता है और विषयी भी स्त्रीलम्पट आदि कुत्सित-भोगी होता है। *'काक, बक'* के स्वभाव पूर्व दिये जा चुके हैं—*'काक होहिं पिक बकउ मराला।'* (१। ३। १) इत्यादिमें देखिये। पुनः, मा० मा० का मत है कि—'अतिखल बकवत् हैं, क्योंकि परम विश्वासघाती *'खल'* कहाता है—'**खलो विश्वासघातकः**।' काग गवादिकोंपर बैठकर उनके मांसको भक्षण करता है, उसको रंचक दया नहीं लगती। उसी प्रकार विषयी मांस-भक्षक और परदाराओंके धर्मको बिगाड़नेवाला है।' मा० प्र० का मत है कि 'अतिखल' काक हैं और विषयी (जो विषयमें अत्यन्त आसक्त हैं) बक हैं। पाँडेजीका मत है कि वे खल काक हैं जो कथाके समय बकते हैं और विषयी-बगुला वे हैं जिनका मन मछली-मेघामें रहता है पर देखनेमें साधु बने बैठे हैं। पाँडेजीका आशय 'कथाके समय' से यह समझमें आता है कि कथासे दूर अन्यत्र वा उसी समय अन्य विषयवार्ताकी बक लगाये रहते

हैं, कथाके निकट नहीं जाते। बैजनाथजीका मत है कि हरिविमुख जो सत्पदार्थमें भेद लगानेवाले हैं वे ही 'अति खल' काक हैं।

(ख)—आगे चौ० ५ में केवल *'कामी'* शब्द दिया है—*'कामी काक बलाक बिचारे।'* इससे कोई-कोई *'अति खल जे बिषई'* का अर्थ यों भी कर लेते हैं कि 'जो विषयी अत्यन्त दुष्ट हैं'। पर प्रायः सभीने उपर्युक्त ही अर्थ ठीक माना है। समाधान यों हो जाता है कि गोस्वामीजीने *'खल जे बिषई'* में-से अन्तिम पद *'कामी' (विषई)* देकर उसके पहलेका शब्द भी सूचित कर दिया है।

नोट—३ *अभागा*=भाग्यहीन, यथा—*'सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी॥'* (३। ३३। ३), *'अज्ञ अकोबिद अंध अभागी। काई बिषय मुकुर मन लागी॥ लंपट कपटी कुटिल बिसेषी। सपनेहु संतसभा नहिं देखी॥'* (१। ११५) विषय-सेवन करने एवं सत्सङ्गमें न जानेसे *'अभागा'* कहा। पुनः, *'अभागा'* पद देकर न जानेका कारण बताया कि 'उनका भाग्य ही नहीं कि वे यहाँ आवें'। (मा० प०) भाग्यवान् ही श्रीरामयश सुनते हैं, यथा—*'अति हरिकृपा जाहि पर होई। पाँउ देइ एहि मारग सोई॥'* (७। १२९) पुनः, यहाँ *'अभागा'* शब्दमें 'भाग' शब्द श्लिष्ट है। अतः दूसरा अर्थ यह होगा कि उनका 'भाग' अर्थात् विषय-चर्चारूपी संबुक-भेकादि यहाँ नहीं हैं। इस अर्थमें 'निदर्शना अलङ्कार' होता है।

त्रिपाठीजी लिखते हैं कि विषयी, साधक और सिद्ध तीनों प्रकारके जीव रामचरितके ग्राहक हैं। इनमें विषयियोंमें ही खल होते हैं और उन खलोंमें भी अति खल होते हैं। दोनों प्रकारके खलोंकी वन्दना गोस्वामीजीने की है। सामान्य खलोंको *'खलगन'* कहा है और *'अति खल'* को *'खल'* कहकर वन्दना की है। सामान्य खल हरियशके निकट राकेशके लिये राहुकी भाँति कभी-कभी भजनमें भङ्ग करनेके लिये आते हैं पर *'अति खल'* इसलिये भी निकट नहीं आते। अति खल विषयियोंकी उपमा बक और कागसे दी। यद्यपि काग शकुनाधम सब भाँति अपावन, छली, मलिन, अविश्वासी, मूढ़ और मंद-मति है तथापि बककी गणना प्रथम है क्योंकि यह हंस-सा रूप धारण किये हुए ध्यानका नाट्य करता हुआ हिंसामें रत है। *'अभागा'* का भाव कि भाग्यका निर्णय सांसारिक सम्पदासे नहीं होता। जब जीवनका ही कुछ ठिकाना नहीं तो सम्पदा लेकर क्या होगा? इसीलिये कहा है कि यदि सर्वैश्वर्य हुआ और श्रीरामचरणानुराग न हुआ तो वह व्यर्थ है। अतः जो रघुवीरचरणानुरागी हैं, वे ही बड़भागी हैं और जो 'भवभंजन पद विमुख' हैं वही अभागे हैं। इसलिये अतिखल विषयी बक-काग को 'अभागा' कहा।

संबुक भेक सेवार समाना। इहाँ न बिषय-कथा-रस नाना॥ ४॥
तेहि कारन आवत हियँ हारे। कामी काक बलाक बिचारे॥ ५॥

शब्दार्थ—**(संबुक)**=घोंघा। **भेक**=मेंढक, दादुर। **सेवार** (शैवाल)=पानीमें मिट्टीके सङ्गसे जो हरी-हरी काईके समान घास जमती है, जो बालोंके लच्छोंकी तरह पानीमें फैलनेवाली होती है और जिसमें जलके छोटे-छोटे जीव आकर फँस जाते हैं। इससे हलवाई चीनी (शक्कर) साफ करते हैं। काक-बक सेवारके जीवोंको खाते हैं। **बलाक**=बगुला। **आवत**=आनेमें।=आते हुए। आते हैं।

अर्थ—(क्योंकि यहाँ) घोंघा, मेंढक और सेवारके समान अनेक प्रकारकी विषयरसकी कथाएँ नहीं हैं॥ ४॥ इसी कारण वे बेचारे काक-बकरूपी कामी लोग यहाँ आनेमें हृदयसे हार मान लेते हैं [वा, हिम्मत हारे हुए आते हैं। (वि० त्रि०)]॥ ५॥

नोट—१ यहाँ यह बताकर कि *'अति खल बिषई'* किस वस्तुके अधिकारी हैं, उनके यहाँ न आनेका कारण कहते हैं। अभागे विषय-रसकी कथा सुनते हैं और भाग्यवान् रामयश सुनते हैं।

नोट—२ जितने सातिशय सुख हैं उन सबमें तीन प्रकार होते हैं।—उच्च कोटि, मध्यम और सामान्य कोटि। काक-बकके लिये शंबुक उच्चकोटिका भोज्य है, मेंढक मध्यम कोटिका और सेवारगत जन्तु सामान्य कोटिके भोज्य हैं। इसी भाँति रसोत्कर्षवाली विषय कथा अति खल विषयियोंके लिये उच्च कोटिका भोग्य है, उससे कम उत्कर्षवाली मध्यम कोटिका और सामान्य कथा सामान्य कोटिका भोग्य है। (वि० त्रि०)

नोट—३ (क) *'इहाँ न'*—मानस बड़ा निर्मल और गंभीर है, वहाँ शंबुकादि नहीं हैं। ये सामान्य तलैयों या नदीके किनारे जहाँ पानी रुका रहता है, पाये जाते हैं। (ख) *'बिषय कथा'* से लौकिक नायक-नायिकाकी कथा ही अभिप्रेत है। शृङ्गाररसके आलम्बन नायक और नायिका हैं। (ग) *'रस नाना'*—रसके भेद अपार हैं, यथा—*'भाव भेद रस भेद अपारा।'* एक शृङ्गाररसके ही चुम्बन-आलिङ्गनादि अनेक भेद हैं। तत्सम्बन्धी कथाएँ ही नाना रसकी विषय-कथाएँ हैं जिनके सुननेमें विषयी पुरुषोंको बड़ा आनन्द होता है। इन्हीं कथाओंको संबुक, भेक, सेवार कहा है। (वि० त्रि०)

नोट—४ *'बिचारे'* शब्द बड़े चमत्कारका है। साधारण अर्थ इसका 'गरीब, दीन' है। ध्वनि यह है कि ये यहाँ 'बेचारे' हैं; इनका चारा (भक्ष्य) यहाँ नहीं मिलता। शंबुक, सिवार और भेक ही इनका चारा है। इन्हें छोड़ ये और कुछ खाते नहीं, सो भी यहाँ नहीं मिलता, तो फिर यहाँ आकर क्या करें? पुनः, किसीकी दशापर जब तरस आता है तब भी देखने-सुननेवाले *'बिचारे'* शब्दका प्रयोग करते हैं। इससे सङ्कटापन्न मनुष्यके विषयमें उनकी आत्मीयता प्रकट होती है। कामीको ज्ञान-वैराग्यरूपी धनसे रहित और इनकी प्राप्तिके साधनरूप रामचरितमानससे विमुख होनेसे उनके भावी कष्टोंको जानकर कवि दयापूर्वक उनसे अपनी आत्मीयता प्रकट करते हुए *'बिचारे'* शब्दका प्रयोग कर रहे हैं।

नोट—५ *'हियँ हारे'* का भाव यह है कि कथा सुननेको मन नहीं चलता, यथा—*'क्रोधिहि सम कामिहि हरिकथा। ऊसर बीज बएँ फल जथा॥'* (५। ५८। ४) *'हियँ'* हार जानेमें *'बिचारे'* ही हेतु है। हरिकथा उनका 'चारा' नहीं है। यद्यपि इसमें प्रवृत्ति और निवृत्ति, लोक और वेद, दोनों मार्गों और मतोंका वर्णन है, तथापि उनकी प्रवृत्ति तो दोनों मार्गों और मतोंसे बाह्य है, अतः यह कथा उनको क्यों भली लगने लगी ? पुनः, *'हियँ हारे'* से सूचित होता है कि देखा-देखी जानेका यदि कुछ मन हो भी जाता है तो दुर्बुद्धिको जीतने नहीं पाते, इसलिये हारकर बैठ जाते हैं। (पं० रू० ना० मिश्र)

वीरकवि—विषयी प्राणियोंको मानसके समीप न आ सकनेमें हेतुसूचक दिखाकर अर्थ समर्थन करना 'काव्यलिङ्ग अलङ्कार' है। निदर्शना और काव्यलिङ्गकी संसृष्टि है। *'कामी काक……'* में रूपक है।

नोट—६ *'आवत हियँ हारे'* का दूसरा अर्थ लेनेमें भाव यह है कि 'अति खल बिना विषयकथा-श्रवणके रह ही नहीं सकते; अतः कहते हैं—*'तेहि कारन आवत हियँ हारे।'* निष्कारणकी हैरानी किसे नहीं दुःखद होती, अतः हिम्मत छोड़े हुए आते हैं। भाव कि जहाँ रामचरितमानस होता हो, उन्हें वहाँतक जाना कठिन मालूम होता है। जो *'अति खल बिषई बक काक'* हैं वे तो मानसके निकट ही नहीं जाते, परंतु जिनमें खलताकी अतिशयता नहीं है, वे जाते हैं पर हिम्मत हारे हुए जाते हैं, इसलिये उन्हें *'कामी काक बलाक'* ही कहा *'बिचारे'* में भाव यह है कि लाचार (बेबस) होनेपर ही जाते हैं, जैसे स्वामी जाय तो साथ जाना ही पड़ेगा। (वि० त्रि०)

आवत येहिं सर अति कठिनाई। राम-कृपा बिनु आइ न जाई॥ ६॥

अर्थ—इस (रामचरितमानस)सरमें आनेमें बहुत ही कठिनाइयाँ हैं। बिना श्रीरामजीकी कृपाके (यहाँ) आना नहीं हो सकता॥ ६॥

नोट—१ (क) मानससरके जानेमें बहुत कठिनाइयाँ हैं। यह सर तिब्बतराज्यमें ६० मीलकी परिधिमें पहाड़ोंसे घिरा हुआ कैलासके पास है। कठिनाइयोंका वर्णन आगे कवि स्वयं कर रहे हैं। वाचिक, कायिक और मानसिक तीनों प्रकारकी कठिनाइयाँ कवि दिखाते हैं। (ख) *'अति कठिनाई'* एवं *'येहिं सर'* का भाव कि सर तो बहुत हैं पर औरोंमें इतनी कठिनाइयाँ नहीं हैं जितनी यहाँ हैं। यहाँकी यात्रा अत्यन्त विकट है। पुनः भाव कि देव-मानससरमें कठिनाइयाँ हैं और इस (रामचरितमानस) सरमें 'अति कठिनाइयाँ' हैं।

नोट—२ (क) *'राम-कृपा बिनु आइ……'* इति। आनेमें मुख्य रामकृपा है, यथा—*अति हरि कृपा जाहि पर होई। पाँउ देइ एहि मारग सोई॥'* (७। १२९) त्रिपाठीजी लिखते हैं कि 'गुरुकृपा, शास्त्रकृपा और आत्मकृपा होनेपर भी यहाँ काम नहीं चलता। गुरुकृपा और शास्त्रकृपासे माहात्म्य जानकर यात्राकी रुचि

होती है। आत्मकृपासे इतने बड़े आयासको जीव स्वीकार करता है। पर विघ्नोंका नाश परमेश्वरीय कृपासे ही सम्भव है। यथा—*'सकल बिघ्न ब्यापहिं नहिं तेही। राम सुकृपा बिलोकहिं जेही॥'* (३९। ५) *'मूक होइ बाचाल पंगु चढ़ै गिरिवर गहन। जासु कृपा……'* (मं० सो०)। गुरुकी कृपासे भी ये कठिनाइयाँ दूर होती हैं, यदि गुरुमें नररूप हरिका भाव हो। आचार्याभिमानका बड़ा भारी गौरव है। (ख) कृपा क्योंकर हो? कृपाका साधन *'मन क्रम बचन छाँड़ि चतुराई। भजत कृपा करिहहिं रघुराई॥'* (१। २००। ६) में कविने स्वयं बताया है। (घ) यहाँ 'विनोक्ति अलङ्कार' है। (वीर)

नोट—३ इस प्रसंगमें गोस्वामीजीने चार कोटियाँ कहीं। एक सामान्य खल, दूसरे अति खल, एक अधिकारी, दूसरे अति अधिकारी। चारोंके लक्ष्य क्रमशः, यथा—*'जौं करि कष्ट जाइ पुनि कोई।'* (३९। १) *'एहिं सर निकट न जाहिं अभागा।'* (३८। ३), *'सोइ सादर सर मज्जनु करई।'* (३९। ६) और *'ते नर यह सर तजहिं न काऊ।'* (३९। ७)। (खर्रा)

नोट—(४) पूर्व चौपाई (३) में *'अति खल बिषई'* का इस मानसमें जाना कठिन कहा और यहाँ इस मानसमें आना भी कठिन बताया। (करु०) वहाँ जाना और यहाँ आना कहा, यथा—*'येहिं सर निकट न जाहिं अभागा॥', 'आवत येहिं सर अति कठिनाई॥'* यहाँसे पाठक इन शब्दोंपर विचार करते चलें। इसका भाव ३९ (९) में लिखा जायगा।

कठिन कुसंग कुपंथ कराला। तिन्ह के बचन बाघ हरि ब्याला॥ ७॥

अर्थ—घोर कुसंग ही कठिन (भयंकर) बुरे रास्ते हैं। उन कुसंगियोंके वचन बाघ, सिंह और सर्प (एवं दुष्ट हाथी) हैं॥ ७॥

नोट—१ (क) कुसंग कुपंथ हैं तो सुसंग सुपंथ हुए। कठिन कुसंग कराल कुपंथ अर्थात् भय उत्पन्न करनेवाले बुरे रास्ते हैं कि जिनपर तनिक भी पैर नहीं धरा जाता। श्रीरामचरितके सम्बन्धमें कठिन कुपंथ क्या है (यह क० उ० २९-३०) में यों कहे हैं—*'सुत दार अगार सखा परिवार बिलोकु महा कुसमाजहिं रे। सबकी ममता तजि कै, समता सजि, संतसभा न बिराजहि रे॥ जनि डोलहि लोलुप कूकर ज्यों तुलसी भजु कौसलराजहिं रे।'* (३०) *'करु संग सुसील सुसंतन सो तजि कूर कुपंथ कुसाथहि रे॥'* (२९) (ख) पाँडेजी कहते हैं कि 'कठिन कुसंग वह है जो छूटनेयोग्य नहीं है, जैसे कि विद्यागुरु, माता-पिता, भ्राता, स्त्री, पुत्र आदिका होता है। और यही कुसंग अर्थात् परवश होना कठिन कुपंथ है'। स्मरण रहे कि यदि *'सुत दार सखा परिवार'* आदि श्रीरामचरणानुरागी हों, भगवद्भक्त हों, तो वे कुसंगी नहीं हैं; वे तो परम धर्ममें सहायक होते हैं पर जो हरिविमुख हैं वे ही कठिन कुसंगी हैं, ऐसोंहीका त्याग कहा गया है। यथा—*'जाके प्रिय न राम बैदेही। तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही॥ तज्यो पिता प्रहलाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी। हरि हित गुरु बलि, पति ब्रजबनितन्हि सो भये मुदमंगलकारी॥ नाते नेह रामहि के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।'* (विनय० १७४) (ग) *'कुपंथ कराला'* इति। वहाँ मानससरमें भयंकर ऊँचा-नीचा, काँटे-कंकड़युक्त ऊबड़-खाबड़ रास्ता, यहाँ कथामें स्त्री, पुत्र, घर, सखा, परिवारकी ममता (जैसे कि स्त्री घरमें अकेली है, बच्चा मुहँ लगा है जाने नहीं देता, घरमें कोई नहीं है ताला न टूट जाय; मित्र आ गये हैं इनके साथ न बैठें तो नहीं बनता, परिवारमें अमुक भाई दुःखी है—इत्यादि), खल और कामी पुरुषोंके संग जो स्वयं नहीं जाते और दूसरोंको भी नहीं जाने देते। (त्रिपाठीजी लिखते हैं कि) 'मानससरोवरकी यात्रामें एक मार्ग पड़ता है जिसे निरपनियाँ कहते हैं, यह करालकुपंथ है। ऊपर दृष्टि कीजिये तो भयंकर पहाड़ोंकी चट्टानें डराती हैं, नीचे हजारों फीट गहरी खाई है, यात्रीकी दृष्टि पाँव और रास्तेपर ही रहती है। तनिक-सी चूकमें यात्री कालके गालमें जा रहते हैं। *'सुत दार अगार सखा परिवार।'* निरपनियाँकी घाटी है।'

नोट—२ *'तिन्ह के बचन बाघ……'* इति। (क) कठिन कुसंगी तो कठिन कुपंथ हैं और उन कुसंगियोंके वचन 'बाघ हरि ब्याल' हैं। (ख) यहाँ 'वचन'के लिये तीन उपमाएँ बाघ, सिंह और सर्पकी दी हैं। बराबरवालों (जैसे भाई-सखा) के वचन बाघ (व्याघ्र) हैं, पिता-माता और अन्य गुरुजनों—बड़ोंके कुवचन

सिंह हैं, स्त्री, पुत्र और छोटोंके वचन सर्प हैं। (ग) भाई ईर्ष्या करते, सखा कहते कि वहाँ स्त्रियोंको घूरने जाते हैं, वहाँ जानेसे तो पाप लगेगा, अभी तो अनजानमें पाप होता है जो क्षम्य है। इनके वचन श्रद्धाको नष्ट करते हैं। छोटोंके वचन सर्प हैं। ये प्रत्यक्ष कहते नहीं, धीरेसे फुफकार छोड़ते हैं। हरिहरप्रसादजी लिखते हैं कि 'इनका मधुर बोलना डसना है।' बड़ोंके वचनोंको सिंह कहा, क्योंकि इनकी डाँट-फटकार कड़ी दृष्टिमात्र ही हृदयको दहला देते हैं फिर कथामें जानेका साहस नहीं पड़ सकता। जायँ तब तो वे निगल ही जायँ, दण्ड दें, इत्यादि। बैजनाथजी लिखते हैं कि सिंह हाथी छोड़ और जीवोंपर चोट नहीं करता परन्तु उसका भय तो सभीको रहता है। उसी प्रकार गुरु, माता-पिता आदि चाहे स्पष्ट रोकें नहीं परन्तु उनकी दुष्ट प्रकृति विचारकर उनके अन्यथा वचनका भय सभीको रहता है। (घ) '**ब्याल**' का अर्थ 'दुष्ट या पाजी हाथी' भी होता है। त्रिपाठीजी लिखते हैं कि स्त्रीका वचन सर्प है, पुत्रका वचन दुष्ट हाथी है जो व्याघ्रसे भी अधिक घातक है। व्याघ्रसिंह तो कभी बगल भी दे जाते हैं पर दुष्ट हस्ती तो सच्चा वैरी होता है, प्राण लेकर ही मानता है। (ङ) इन्हीं लोगोंके विषयमें कहा है—***'जरउ सो संपति सदन सुखु सुहृद मातु पितु भाइ। सनमुख होत जो राम पद करै न सहस सहाइ॥'*** (२। १८५)

☞यहाँ वाचिक कठिनाइयाँ दिखायीं कि वचनोंकी मारके मारे नहीं जा सकते।

गृहकारज नाना जंजाला। तेइ अति दुर्गम सैल बिसाला॥ ८॥

अर्थ—घरके काम-काज और फँसाववाले अनेक झंझट-बखेड़े ही अति कठिन ऊँचे बड़े-बड़े पर्वत हैं॥ ८॥

नोट-१ (क) पं० रामकुमारजी लिखते हैं कि 'कराल कुपन्थसे भारी पहाड़ अधिक (कठिन), उससे वन, वनसे नदी। इसी तरह कठिन कुसंगसे गृहकार्य, उससे मोह-मद-मान और इनसे कुतर्क अधिक (कठिन) हैं।' इसी क्रमसे यहाँ कहते हैं। (ख) वहाँ रास्तेमें बड़े-बड़े पहाड़ एकके पीछे एक उनका ताँता टूटने ही नहीं पाता, चढ़ाई कठिन, रास्ता समाप्त होनेमें ही नहीं आता। यहाँ घरके कार्य समाप्त नहीं होते, एकसे छुट्टी मिली तो दूसरा माथेपर है। आज मूँडन तो कल उपवीत, फिर वर्षगाँठ, विवाह इत्यादि। पर्वत दुर्गम, विशाल हैं उनका उल्लङ्घन कठिन, यहाँ गृहासक्त दुःखरूपको गृहकार्य जंजालसे अवकाश कहाँ जो कथा पढ़ें-सुनें। (१। ४३। ८) भी देखिये। (ग) मा० प्र० कार *'गृहकारज नाना जंजाला'* का 'नाना गृहकार्यका जंजाल' और मिश्रजी 'गृहके काम जो अनेक जंजाल हैं' ऐसा अर्थ करते हैं। 'गृहकार्यके अनेक जंजाल' ऐसा भी अर्थ कर सकते हैं। 'जंजाल'का अर्थ है प्रपञ्च, झंझट, बखेड़ा, उलझन, फँसाव, बन्धन। ***'गृहकारज जंजाल'*** हीसे ***'गृहासक्त दुखरूप'*** उत्तरकाण्डमें कहा है। (घ) पाँडेजी 'जंजाल' का अर्थ 'जंगम (चलता हुआ) जाल' करते हैं। अर्थात् चाहे जहाँ हो वहींसे ये जाल खींच लाते हैं। मा० पत्रिकामें 'जालसे भरा' अर्थ किया है। हरिहरप्रसादजी गृहकारजका 'शास्त्रोक्त गृहकार्य' (उपवीत,व्याह, श्राद्ध आदि) और बैजनाथजी 'जीविकाके व्यापार' अर्थ करते हैं। और *'नाना जंजाला'* का 'अनेक उपाधियाँ' मनकी चिन्ताएँ जो जीवोंको बन्धनमें डाले रहती हैं, अर्थ किया है। सूर्य प्रसादजी लिखते हैं कि गृहकारजका यह अर्थ ठीक नहीं है क्योंकि शास्त्रोक्त कार्य करनेसे गृहस्थको मुक्ति मिलती है, शास्त्रमर्यादा छोड़कर चलनेवाले नरकगामी होते हैं। (ङ) गृहस्थी चलानेमें अनेक बखेड़ोंका सामना करना पड़ता है। वह एक छोटे राज्यके समान है जो बखेड़े राज्य चलानेमें सामने आते हैं वैसे ही गृहस्थोंमें होते हैं। (वि०त्रि०)

☞यहाँ कायिक कठिनाइयाँ दिखायी। गृहकार्य शरीरसे सम्बन्ध रखते हैं।

बन बहु बिषम मोह मद माना। नदीं कुतर्क भयंकर नाना॥ ९॥

शब्दार्थ-**बिषम**=कठिन, घना कि जिसमें चलना दुर्गम है।=बीहड़। **मोह**=अन्यथाको यथार्थ समझना, जीका उसमें अटकना, ममत्व। **मान**=अभिमान, आत्मगौरव। **मद**=गर्व । अपने समान किसीको न समझना। विद्या, रूप, यौवन, जाति और महत्त्व—ये पाँच प्रकारके मद कहे गये हैं।

अर्थ—मोह, मद, मान ही (इस मानसके) बहुत-से बीहड़ वन हैं और अनेक भयंकर कुतर्क ही अनेक भयङ्कर नदियाँ हैं॥ ९॥

नोट-१ *'बन बहु बिषम……'* इति। (क) अब पहाड़का वन कहते हैं। गृहकारजमें जो मोह-मद-मान हैं वही बहुत-से वन हैं। सामान्य वनमें लोग चले जाते हैं। विषम वनमें नहीं जा सकते, वैसे ही सामान्य मोह-मद-मानवाले लोग तो कथामें चले भी जाते हैं परन्तु विषम मोह-मद-मानवाले नहीं जा सकते, इसलिये *'बिषम'* कहा। पुनः, *'बिषम'* पदसे सूचित किया कि वन दो प्रकारके कहे हैं। *'पुलक बाटिका बाग बन……'* में जो वन कहा वह ललित है। जो मानससरसे पासका वन है और यहाँ जो वन कहा वह रास्तेका है और भयदायक है। यहाँ 'वृत्यनुप्रास अलङ्कार' है। (पं० रा० कु०) (ख) भाव यह है कि गृहकार्य आदिसे चाहे छुटकारा भी मिल जाय पर मोह-मद-मान बड़े ही कठिन हैं। 'मोह' और 'अज्ञान' पर्याय हैं। मोह जैसे कि कथा उन्हींकी तो है जो स्त्रीके लिये विलाप करते थे, उसके सुननेसे क्या परमार्थ लाभ होगा? परिवारकी ममता आदि भी मोह है। उदाहरण चौपाई ७ नोट १ (ग) में देखिये। वक्ता कलका छोकड़ा है; वह क्या कथा कहेगा? उससे अधिक तो हम जानते हैं। वक्ता साधारण आदमी है, वह व्यासासनपर बैठेगा, मैं नीचे कैसे बैठूँगा? इत्यादि मद है। मद पाँच प्रकारका है, यथा-'**जाति विद्या महत्त्वं च रूपयौवनमेव च। यत्नेन वै परित्याज्यं पञ्चैते भक्तिकण्टकाः॥**' अर्थात् हम जातिके बड़े हैं, हम विद्वान् हैं, हमारा बड़ा मान है। रूप और युवा होनेका भी मद होता है। उदाहरण आगे *'कुतर्क'* में देखिये। (ग) '**मीयते अनेन इति मानम्**', जिससे नापा-जोखा जाय उसे मान कहते हैं। अर्थात् विषमता मान है। यह समदृष्टिका विरोधी है। (वि० त्रि०)

त्रिपाठीजी—मोह-मद-मानको विषम वन कहा, क्योंकि इसीके अन्तर्गत कुपंथरूपी कुसंग, 'गृहकार्य नाना जंजाल' रूपी शैल और कुतर्करूपिणी नदियाँ हैं। बीहड़ वन अनेक भय, विषाद और परितापके कारण होते हैं। वनकी विपत्तियोंका वर्णन अयोध्याकाण्ड दोहा ६२,६३में *'कानन कठिन भयंकर भारी'* से *'डरपहिं धीर गहन सुधि आए'* तक देखिये। इसी तरह मोह-मद-मान भी अनेक भय, विषाद और परितापके कारण हैं।

टिप्पणी—*'नदी कुतर्क……'* इति। ग्रन्थकार पर्वतसे नदीका निकलकर चलना कहा करते हैं। यथा—*'भुवन चारिदस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरषहिं सुख बारी॥ रिधि सिधि संपति नदीं सुहाई। उमगि अवध अँबुधि कहुँ आई॥'* (२ । १। २-३) *'अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी। मानहु रोष तरंगिनि बाढ़ी॥ पाप पहार प्रगट भइ सोई। भरी क्रोध जल जाइ न जोई॥'* (२। ३४। १-२) *'बूँद अघात सहहिं गिरि कैंसे। खल के बचन संत सहें जैसे॥ छुद्र नदीं भरि चलीं तोराई।'* (४। १४। ४-५) *'रघुपति कोपि बान झरि लाई। घायल भे निसिचर समुदाई॥……स्रवहिं सैल जनु निर्झर भारी। सोनित सरि कादर भयकारी॥'* (६। ८६। ८—१०) वैसे ही यहाँ *'गृहकारज नाना जंजाला। ते अति दुर्गम सैल बिसाला॥'* से *'नदी कुतर्क भयंकर नाना'* का निकलना कहा। वनमें पर्वतोंसे निकली हुई अनेक तीव्र भयंकर वेगवाली नदियाँ बहती हैं।

नोट—२ (क) कुतर्क—गृहकार्यवाले अपने गृहकार्य सुधारनेके लिये लड़कोंको भय देते हैं कि रामायण सुननेसे दरिद्रता आ जाती है, रामायण साधुओंके लिये है, गृहस्थको पढ़ना-सुनना उचित नहीं, उससे फिर गृहस्थीके कामका नहीं रह जाता, वैराग्य हो जाता है। देखो, अमुकने बाँचा-सुना तो उसका वंश ही नाश हो गया और अमुक दरिद्र हो गया। मूलरहित तर्क कुतर्क है। पुनः, वक्ता तो लोभसे कथा कहते हैं, वहाँ जानेसे किसको लाभ हुआ। शूद्रके मुखसे क्या सुनना? वक्ता अभिमानी है। वहाँ हमारा मान हो या न हो (मा० प्र०) कौन जाने परलोक किसीने देखा है? कथाके श्रोतामेंसे किसीको विमान आते नहीं देखा। परलोकसे किसीका पत्र नहीं आया इत्यादि '**कुतर्क**' हैं। (पं० शुकदेवलालजी) (ख) कुतर्कके प्रमाण, *'मिटि गै सब कुतरक कै रचना।'* (१। ११९। ७) *'दुखद लहरि कुतर्क बहु ब्राता।'* (७। ९३। ६)

सतीजी और गरुड़जीके संशय कुतर्क हैं। (ग) 'बैजनाथजी कुतर्कका रूपक इस प्रकार देते हैं कि वहाँ मार्गमें अनेकों नदियाँ हैं, यहाँ सत् पदार्थमें असत् विचारना इत्यादि कुतर्कणा ही अनेक प्रकारकी भयंकर नदियाँ हैं। पापतर्कणा मगर-घड़ियाल हैं, बुद्धिका भ्रम विषम आवर्त और असत् वासना तीक्ष्णधार है जिसमें उपदेशरूपी नाव नहीं चलती। (घ) कुतर्क मनका विषय है। अतः *'नदी कुतर्क भयंकर नाना'* से मानसिक कठिनाई दिखायी। इस तरह यहाँतक तीन प्रकारकी कठिनाइयोंमेंसे एक वाचिक तो दूसरोंके द्वारा आ पड़ी और दो कायिक और मानसिक अपने ही कारण हुईं।

दोहा—जे श्रद्धा-संबल-रहित नहिं संतन्ह कर साथ।
तिन्ह कहुँ मानस अगम अति जिन्हहिं न प्रिय रघुनाथ॥ ३८॥

शब्दार्थ—**संबल**=राहका खर्च। **श्रद्धा**—मं० श्लोक २ देखिये। **अगम**=कठिन।

अर्थ—जिनके पास श्रद्धारूपी राह-खर्च नहीं है, न संतोंका साथ है और न जिनको श्रीरघुनाथजी प्रिय हैं उनको यह मानस अत्यन्त कठिन है॥ ३८॥

मा० प०—*'अति खल जे बिषई बग कागा'* से दोहेतकका कथाभाग '**प्रभूतवीरुत्तृणगुल्मगह्वरे कठोरदंशैर्मशकैरुपद्रुतः। क्वचित्तु गन्धर्वपुरं प्रपश्यति क्वचित्क्वचिच्चाशुरयोल्मुकग्रहम्॥ निवासतोयद्रविणात्मबुद्धिस्ततस्ततो धावति भो अटव्याम्। क्वचिच्च वात्योत्थितपांसुधूम्रा दिशो न जानाति रजस्वलाक्षः॥ अदृश्यझिल्लीस्वनकर्णशूल उलूकवाग्भिर्व्यथितान्तरात्मा। अपुण्यवृक्षान् श्रयते क्षुधार्दितो मरीचितोयान्यभिधावति क्वचित्॥ क्वचिद्वितोयाः सरितोऽभियाति परस्परं चालषते निरन्धः। आसाद्य दावं क्वचिदग्नितप्तो निर्विद्यते क्व च यक्षैर्हृतासुः॥**'(भा० ५। १३। ३—६) इत्यादिसे मिलता है। वहाँ भी उपसंहारमें भगवत्-कृपा बिना आनन्द न होना कहा है।

नोट—१ यहाँतक मानसका रूपक कहा। अब इसके अधिकारी-अनधिकारीको इसकी प्राप्तिमें जो कठिनाई वा सुगमता है वह आगे कहते हैं। यह रूपकमें नहीं है ऐसा किसीका मत है पर हमारी समझमें रूपक बराबर चला जा रहा है।

नोट—२ यहाँतक बताया है कि मानस सब प्रकार अगम है। पर तीन प्रकारसे सुगम हो जाता है—श्रद्धा हो, संतोंका सङ्ग करे एवं श्रीरामचरणमें प्रेम हो। भाव यह है कि यदि तीर्थमें प्रेम हो, खर्च पास हो या धनीके साथ जाना हो तो भी रास्तेकी कठिनाइयाँ जान नहीं पड़तीं और तीर्थमें मनुष्य पहुँच सकता है। वैसे ही रामचरितमानसतक पहुँचना तभी हो सकता है जब इसके अभिमानी देवता श्रीरघुनाथजीमें प्रेम हो, कथामें श्रद्धा हो एवं संतोंका साथ हो। प्रेममें फिर भूख, प्यास, काँटे, कंकड़, वन कुछ भी नहीं व्यापते। गोस्वामीजी तथा बिल्वमङ्गल, सूरदासजी स्वयं इसके उदाहरण हैं।

पं० रामकुमारजी—*'अति अगम'* कहनेका भाव यह है कि अगम तो और सब बातोंसे है ही। अर्थात् (१) 'कुसंग'से, (२) कुसंगियोंके 'वचन' से, (३) 'गृहकारज' से, (४) 'नाना जंजाल' से, (५) 'मोह, मद, मान' से और (६) 'कुतर्क' से भी मानसके निकट पहुँचना अगम है। परन्तु श्रद्धाहीन, संत-संगरहित और श्रीरघुनाथजीमें स्नेहरहित मनुष्योंको तो 'अति अगम' है। तात्पर्य यह है कि ये विघ्न सबसे अधिक हैं। इसीसे उपक्रममें कहा था कि *'आवत येहिं सर अति कठिनाई। रामकृपा बिनु आइ न जाई॥'* (३८। ६) और यहाँ उपसंहारमें लिखा कि *'तिन्ह कहँ मानस अगम अति'''''।'*

त्रिपाठीजी—श्रद्धा, सत्सङ्ग और श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें प्रेम, ये तीनों आवश्यक हैं। जबतक ऐसी श्रद्धा न होगी कि जो कुछ श्रीरामचरितमानसमें लिखा है वह अक्षर-अक्षर ठीक है, यदि मेरे समझमें नहीं आता तो मेरा अभाग्य है, तबतक उसमें श्रीरामचरितमानसके समझनेकी पात्रता नहीं आती। यदि श्रद्धा बनी रही तो एक-न-एक दिन संदेह दूर हुए बिना नहीं रहता। अतः निश्चय श्रद्धा श्रीरामचरितमानसपथके लिये पाथेय है। संतसङ्ग बिना विषयके पर्यवसानका पता नहीं चलता। इस ग्रन्थमें सब विषयोंका पर्यवसान

भक्तिमें ही हुआ है। ग्रन्थकी बारीकीतक सत्सङ्गीकी ही पहुँच हो सकती है, नहीं तो संदेह होगा कि वाल्मीकि, व्यास, तुलसीदासादि सभीने उर्मिलाके साथ अन्याय किया। सत्सङ्गसे ही यह भावना होती है कि वे महात्मा किसीपर अन्याय करनेवाले नहीं। लक्ष्मणजी बन गये तो सही, पर श्रीरामजीकी सेवाके लिये अपनी इच्छासे गये, उन्हें वनवास मिला नहीं था। यदि उन्हें वनवास मिला होता तो उर्मिलाजी भगवती जनकनन्दिनीकी भाँति किसीके रोके न रुकतीं, दूसरी बात यह कि कविका कहीं चुप रह जाना हजार बोलनेसे बढ़कर काम करता है। कविने यहाँपर चुप रहकर दिखलाया कि उर्मिला भगवतीने पतिके सेवाधर्ममें बाधा पहुँचनेके भयसे श्वासतक न ली। उनका इतना बड़ा त्याग श्रीजनकनन्दिनीके अनुरागसे कम नहीं है। हजार लक्ष्मण-उर्मिला-संवाद लिखनेपर भी इस बूँदसे भेंट नहीं हो सकती। संतसङ्गसे ही मनुष्य गलित-अभिमान होकर ग्रन्थकारकी बारीकीको देख सकता है। अतः श्रीरामचरितमानसका पथप्रदर्शक संतसंग ही है। भगवच्चरणमें प्रेम न रहनेसे इस चरितका आनन्द ही जाता रहता है। उसे पदे-पदे भगवद्-महिमा प्रतिपादन खटकता है, भावना उठती है कि ग्रन्थकारको इस बातकी बड़ी चिन्ता रहती है कि कहीं कोई रामजीको आदमी न समझ ले। ठीक है इसलिये तो यह ग्रन्थ ही बना है, इसकी फिक्र रहना क्या बेजा है? जिस चरित्रसे सतीको मोह हुआ, गरुड़को मोह हुआ, उस मोहसे श्रोताकी रक्षाके लिये ग्रन्थकारकी चिन्ता अत्यन्त उपादेय है।

नोट—३ श्रद्धामें संबलका आरोप है, अतः यह रूपक है। इस दोहेमें एकदेशविवर्ती साङ्गरूपक है, क्योंकि यहाँ श्रद्धा संबलका आरोप शब्दतः है तथा संतोंमें यात्रियों या पर्वतीय साथियोंका और रघुवीरमें गम्यस्थानस्थित प्रिय वस्तुका आरोप आर्थिक है। इस प्रकार अगम्य होनेका हेतुप्रदर्शन होनेसे यहाँ 'काव्यलिङ्ग अलङ्कार' भी है। अतः दोनो अलङ्कारोंकी सृष्टि है। (पं० रू० ना० मि०) वीरकविजीका मत है कि यहाँ दो असम वाक्योंकी समता होनेसे 'प्रथम निदर्शना अलङ्कार' है।

जौं करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहिं नींद जुड़ाई होई॥ १॥

शब्दार्थ—**जुड़ाई**=जूड़ी=जाड़ा देकर ज्वर आना। ठंड, शीतज्वर।

अर्थ—जो कोई मनुष्य फिर भी कष्ट उठाकर वहाँ पहुँच जाय तो उसे नींदरूपी जूड़ी जाते ही आ जाती है॥ १॥

नोट—१ (क) *'जौं'* संदिग्ध पद है, उसके जानेमें संदेह है। (ख) *'करि कष्ट'* इति। अर्थात् जिन कठिनाइयोंको ऊपर कहा है उन्हें झेलकर। (ग) *'पुनि'* का भाव कि प्रथम तो श्रद्धाहीन, संतसङ्गरहित तथा श्रीरामपदप्रेमविहीन मनुष्यका पूर्वकथित प्रतिबन्धकोंके कारण जाना हो ही नहीं सकता, तथापि यदि दैवयोगसे वहाँतक पहुँच भी जाय तो भी स्नान-पान न कर सकेगा, जाना व्यर्थ होगा। अथवा, *'पुनि'* शब्द बिना अर्थका है। बुन्देलखण्डमें 'मैं पुनि', 'तुम्ह पुनि' केवल 'मैं' और 'तुम' की जगह बोले जाते हैं। (घ) *'कोई'*—ऊपर बतलाया है कि श्रद्धा, सत्सङ्ग और हरि-पद-प्रीति हो तो रामचरितमानसतक पहुँच सकता है। यहाँ कष्ट करके जाना उनका कहा है कि जो श्रद्धा-संबल-रहित हैं और जिनकी हरिपदमें प्रीति नहीं है, जो केवल ईर्ष्यासे या किसीके संकोचसे जावें। ईर्ष्या आदिसे जाना ही कष्ट करके जाना है। *'अति खल जे बिषई बक कागा'* तो पास जा ही नहीं सकते, इससे पृथक् जो और कोई जावें उन्हींसे यहाँ तात्पर्य है। (पं० रा० कु०) अश्रद्धालुओंमेंसे कोई ही वहाँ पहुँच पाते हैं पर वहाँ जाकर वे छिपते नहीं, स्पष्ट पहचाने जाते हैं। ग्रन्थकार उनके लक्षण कहते हैं। (वि० त्रि०)

टिप्पणी—१ (क) *'जातहि'* का भाव कि पहुँचनेके कुछ देर पीछे जूड़ी आवे तो स्नान कर ही लेता, वैसे ही कथामें पहुँचनेके कुछ देर पीछे नींद आवे तो रामचरितमानस कुछ-न-कुछ सुन ही ले इसीसे जाते ही नींद आ जाती है कि एक अक्षर भी नहीं सुनने पाता। (ख) यहाँ जाड़ा क्या है? जड़ता ही जाड़ा है; यथा—*'जड़ता जाड़ बिषम उर लागा।'* (ग) *'जुड़ाई होई'* इति। नींदकी उपमा जूड़ीसे देकर यह दिखलाया कि कोई यह नहीं चाहता कि मुझे जूड़ी आवे, पर जूड़ी बलपूर्वक आती है, वैसे ही श्रोतारूपसे उपस्थित

वह अश्रद्धालु पुरुष यह चाह नहीं सकता कि उसे नींद आवे, पर नींद बलात् आती है। (वि० त्रि०) (घ) 'वहाँ सरकी शीतलतासे जूड़ी यहाँ स्थिरतारूप शीतलतासे निद्रारूपी जूड़ी।' (बै०)

जड़ता जाड़ बिषम उर लागा। गएहुँ न मज्जन पाव अभागा॥ २॥

अर्थ—(तीक्ष्ण) जडतारूपी कठिन जाड़ा हृदयमें लगा। (इससे वह) अभागा जानेपर भी स्नान करने न पाया ॥ २॥

नोट—१ जडताको जाड़ा कहा। क्योंकि जूड़ी आनेमें विषम जाड़ा स्वाभाविक है, वैसे ही नींद आनेमें विषम जडता स्वाभाविक है। विषम जाड़ेसे मानसरोवरके अद्भुत सौन्दर्यका दर्शनतक नहीं हो सकता और विषम जडतासे उनीदे श्रोताको रामचरितकी अद्भुत मनोहरताका अनुभव नहीं हो सकता। दोनोंसे इन्द्रियाँ और मन पराभूत हो जाते हैं। वहाँ कम्प होने लगता है, यहाँ श्रोता ऊँघ-ऊँघकर गिरने लगता है। (वि० त्रि०) मूर्खतावश कथापर ध्यान न देना जाड़ा लगना है, ध्यान न देनेसे नींद आ गयी, जैसे वहाँ जूड़ी आ जानेसे स्नान न कर सका। शीतज्वरकी गणना विषमज्वरमें है। इसका जाड़ा हृदयमें समाकर उसे कँपा देता है। अतः यहाँ ***'बिषम'*** पद दिया।

टिप्पणी—१ ***'बिषम उर लागा'*** इति। (क) **बिषम**=कठिन, अर्थात् जो छूटने योग्य न हो, जो किसी उपायसे न छूटे। (ख) ***'उर लागा'*** कहनेका भाव यह है कि जो ऊपरसे जाड़ा लगा होता तो आग तापनेसे दूर हो जाता और इसके हृदयहीमें जाड़ा लगा है तो उसमें ये कोई उपाय काम नहीं देते। पुनः, जडता भी हृदयहीसे होती है, इससे दोनोंकी समता दिखलानेके लिये ***'उर लागा'*** कहा। [रामचरितपक्षमें उनीदे श्रोताको बाँह पकड़कर हिलाना, कड़ी बातें कहना इत्यादि प्रकारसे सावधान करनेकी चेष्टाएँ आग तपाना, रूईभरे वस्त्र लिहाफ और कम्बल आदि उढ़ाना इत्यादि हैं। (ग) ***'गएहुँ'***=जानेपर भी। इस शब्दको देकर जनाया कि दुर्भाग्य तो इसके साथ प्रारम्भसे ही है। पहले तो पास ही न आने देता था और अन्तमें भी उसे परिश्रम और कष्ट ही हाथ लगा। पुनः, भाव कि श्रद्धा और रघुपतिपदप्रेम मनके धर्म हैं। जडता-जाड़ उरमें लगा है, अतः श्रद्धा और श्रीराम-पदप्रेमसे रहित है। रह गया सन्तसङ्गसे, सन्तोंके कहने-सुननेसे अथवा और भी किसी कारणसे कथामें पहुँच भी गये तो श्रद्धा-प्रेमविहीन होनेसे बैठते ही नींद आ गयी। (घ) ***'न मज्जन पाव'***—कथाके सम्बन्धमें सुनकर समझना स्नान है; यथा—***'सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग।'*** (१। २)]

टिप्पणी—२ ***'अभागा'*** इति। ***'अभागा'*** पद दो जगह दिया है, एक तो यहाँ, दूसरे ***'अति खल जे बिषई बग कागा। एहिं सर निकट न जाहिं अभागा॥'*** (१। ३८) में। इससे सूचित किया कि जो सरके निकट न गये और जो निकट गये पर स्नान न कर पाये, उन दोनोंकी एकहीमें गणना है। तात्पर्य यह है कि जो कथामें नहीं जाते, अथवा जो जाकर सो जाते हैं, दोनों अभागे हैं। अबतक नींद न थी, कथामें बैठते ही नींद आ गयी, इसीसे जाना गया कि अभागा है। [प्रयत्न करनेपर जब उसमें फल लगे तो उस फलको भोगनेमें उस समय सामर्थ्याभाव हो जाना पूरा अभाग्य है। यहाँ पूर्व जन्मका दुष्कृत ही बाधक हुआ। इस जन्ममें तो वह प्रयत्न करके फलतक पहुँच चुका था। पर अभाग्यने फलभोगसे वञ्चित कर दिया। अभाग्य प्रारम्भसे ही साथ है। अतः 'अभागा' से उपक्रम कर 'अभागा' से ही उपसंहार किया। भाव कि कथामें जाकर भी जो सो जाय, उसके विषयमें समझ लेना चाहिये कि श्रीरामचरित-श्रवण उसके भाग्यमें नहीं है, इससे बढ़कर अभाग्य क्या होगा? (वि० त्रि०)]

करि न जाइ सर मज्जन पाना। फिरि आवै समेत अभिमाना॥ ३॥

अर्थ—सरमें स्नान-पान तो किया नहीं जाता और अभिमानसहित लौट आता है॥ ३॥

पं० रामकुमारजी—***'करि न जाइ'***=न करते बना। भाव यह है कि सरतक आना तो बिना श्रीरामकृपाके हो ही नहीं सकता; यथा—***'रामकृपा बिनु आइ न जाई।'*** जो आ भी जाय तो मज्जन-पान नहीं करते

बनता। मानस-सरमें जाड़ेके कारण न नहाते ही बना, न जलपान किया, शरीरका मैल और प्यास ज्यों-की-त्यों बनी रही। जलमें स्नान करनेसे बाहरका मैल छूट जाता, पीनेसे अन्तःकरण शुद्ध होता, प्यास बुझती। कथाका सुनना और धारण करना ही स्नान-पान हैं, इनसे अभिमान और आशा दूर होती हैं। अभिमान ही मैल है; यथा—*'आस पियास मनोमलहारी।'* (१। ४३) कथामें स्नान-पान होता तो अभिमान रह ही न जाता। स्नान न होनेसे अभिमान बना रह गया।

त्रिपाठीजी—*'मज्जन पाना'* इति। मज्जनसे पुण्यके अतिरिक्त थकावट मिटती है। जल-पान करनेसे मन प्रसन्न होता है। यथा—*'मज्जन कीन्ह पंथ श्रम गयऊ। सुचि जल पियत मुदित मन भयऊ॥'*

नोट—१ (क) *'मज्जन पाना'* इति। मानससरकी यात्रा मज्जन-पानके लिये ही होती है। जो स्नान नहीं कर पाते, वे आचमन तो अवश्य ही कर लेते हैं। आचमनसे भी पुण्य होता है, यथा—*'मज्जन पान पाप हर एका।'* स्नानसे श्रम दूर होता है, और सुख होता है, जल-पान करनेसे मन प्रसन्न होता है; यथा—*'मज्जन पान समेत हय कीन्ह नृपति हरषाइ।'* (१५८), *'गै श्रम सकल सुखी नृप भएऊ।'*, *'मज्जन कीन्ह परम सुख पावा।'* (३। ४१), *'मज्जन कीन्ह पंथ श्रम गएऊ। सुचि जल पिअत मुदित मन भएऊ॥'* इसी तरह श्रीरामचरितमानस सुननेसे पाप, त्रिताप और अज्ञान नष्ट होते हैं, यथा—*'सादर मज्जन पान किए तें। मिटहिं पाप परिताप हिए तें॥'* (१। ४३), *'सोइ सादर सर मज्जन करई। महा घोर त्रयताप न जरई॥'* (१। ३९), *'कहत सुनत एक हर अबिबेका।'* वह जूड़ीसे आचमन भी नहीं कर पाता और यह निद्रासे ऐसा जडीभूत हो जाता है कि कुछ सुन नहीं पाता, यदि कानमें दो चार शब्द पड़ भी जायँ तो उसे एक अक्षर समझमें नहीं आता। (वि० त्रि०)

(ख)*'समेत अभिमाना'* से जनाया कि उसे पश्चात्ताप नहीं होता कि मेरा भाग्य ऐसा खोटा है कि मैं यात्राके फलसे वञ्चित रहा, इसी तरह उनीदे श्रोताको अपनी निद्रा और जडतापर पश्चात्ताप नहीं होता। (वि० त्रि०) पुनः भाव कि संसारमें कहनेको हो गया कि मानसरोवर हो आये, ऐसे ही कथा सुनी-न-सुनी, कहनेको तो हो गया कि कथामें हो आये। (सू० प्र० मिश्र)

जौं बहोरि कोउ पूछन आवा। सर निंदा करि ताहि बुझावा॥ ४॥

अर्थ—फिर जो कोई पूछने आया तो सरकी निन्दा करके उसे समझा-बुझा दिया॥ ४॥

नोट—१ लोकरीति है कि जब कोई किसी तीर्थसे लौटता है तब उसके भाई-बन्धु, मित्र आदि उससे मिलने आते हैं और तीर्थका हाल पूछते हैं। वैसे ही यहाँ पूछने आये। २ *बहोरि*=बहोर=पुनः फिर दूसरी बार (लौटनेपर)। ३ ☞गोस्वामीजीने 'बुझावा' पद यहाँ कैसा अभिप्रायगर्भित दिया है! भाव यह है कि जैसे अग्निपर जल डालनेसे अग्नि बुझ जाती है, वैसे ही जो इनसे किसीने आकर पूछा कि वहाँका हाल कहो तो इन्होंने उससे कह दिया कि वहाँ क्या जाड़ों मरना है, पुरइन बहुत है, जल जैसे वहाँका वैसे यहाँका इत्यादि। इसी तरह इस मानसमें जानेसे क्या, वहाँ यही चौपाई-दोहे तो हैं सो हम घरहीमें बाँच लेते हैं, इत्यादि रीतिसे कथाकी निन्दा कर दी, जिससे श्रद्धारूपी अग्नि जो उसके हृदयमें उठी थी, उसको भी ठण्डी कर दी। निन्दा करना ही जल डालना है। [३९ (३-४) में अतद्गुण अलङ्कारकी ध्वनि है। (वीर)]

सकल बिघ्न ब्यापहिं नहिं तेही। राम सुकृपा बिलोकहिं जेही॥ ५॥

अर्थ—ये कोई भी विघ्न उसको बाधक नहीं होते जिसे श्रीरामचन्द्रजी अतिशय कृपादृष्टिसे देखते हैं॥ ५॥

नोट—१ (क) ३९ (३) तक यह बताया कि बिना रामकृपाके कैसी स्थिति होती है और अब कहते हैं कि जिनपर रामकृपा है उनका क्या हाल है। जितने विघ्न ऊपर कह आये इनमेंसे कोई भी इसको नहीं होते। अर्थात् हृदयसे हार मानना बड़ी-बड़ी बिभीषिकाएँ, दुर्लङ्घ्य पर्वत, घोर वन, भयंकर नदियाँ, संबलका अभाव, संतसंगका अभाव और जूड़ी ये श्रीरामकृपाश्रितको नहीं होते। (ख) *'ब्यापहिं*

नहिं' का भाव कि ये विघ्न औरोंको व्यापते हैं। विघ्न तो बने ही हैं पर श्रीरामकृपाश्रितको वह व्यापते नहीं। (ग) कथाके सम्बन्धके विघ्न ये हैं—सुननेको जी नहीं चाहता, जाना चाहें तो कठिन कुसंगियोंके कटु वाक्य नहीं जाने देते, गृहकार्य, नाना जंजाल, मोह-मद-मान, कुतर्क, अश्रद्धा, सत्सङ्गका अभाव, निद्रा ये श्रीरामकृपाश्रितके ऊपर अपना प्रभाव जमा नहीं पाते; उपस्थित तो उनके सामने भी होते हैं।

नोट—२ *'राम सुकृपा बिलोकहिं'* इति। *'सुकृपा'* का भाव यह है कि (क) जब कोई पदार्थ देना होता है तो कृपावलोकन होती ही है, परन्तु रामचरितमानससरमें स्नान तभी मिलता है जब सुकृपा करके देखते हैं। साधारण कृपासे इस सरमें जाना नहीं हो सकता; यथा—*'अति हरि कृपा जाहि पर होई। पाँव देइ एहि मारग सोई॥'* (७। १२९) (पं० रामकुमारजी) (ख) श्रीरामजीकी साधारण एक-सी कृपा तो जीवमात्रपर है; यथा—*'सब पर मोहि बराबरि दाया।'* (७। ८७), **'रक्षणे सर्वभूतानामहमेव परो विभुः। इति सामर्थ्यसंधानं कृपा सा पारमेश्वरी॥'** (भ० गु० द०) पर उस कृपासे काम नहीं चलता। (ग) अहैतुकी कृपाकटाक्ष; यथा—'पङ्गुं लङ्घयते गिरिम्।' जिनपर ऐसी कृपा होती है वे ही समस्त विघ्नों और विघ्नकारकोंके सिरपर पाँव धरकर निःशंक चले जाते हैं। (शुकदेवलालजी) (घ) श्रीरामजीकी कृपादृष्टि ही सर्वविघ्नविनाशिनी है, यथा—*'मोरि सुधारिहि सो सब भाँती। जासु कृपा नहिं कृपाँ अघाती॥'* (१। २८। ३), *'अतिसय प्रबल देव तव माया। छूटइ राम करहु जौं दाया॥ बिषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी।'''''' यह गुन साधन ते नहिं होई। तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई॥'* (४। २१। २—६) (अर्थात् मोह, मद, मान आदिका छूटना कृपासाध्य है, क्रियासाध्य नहीं। अतः मनुष्यको चाहिये कि प्रभुकी कृपाकी चाह करता रहे), *'जापर नाथ करहु तुम्ह दाया॥ ताहि सदा सुभ कुसल निरंतर। सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर॥ सोइ बिजई बिनई गुन सागर। तासु सुजस त्रैलोक उजागर॥ प्रभु की कृपा भयउ सब काजू।'* (५। ३०) (सुरसा, सिंहिका, लंकिनी इत्यादि सभी विघ्नोंका नाश हुआ। अग्नि भी शीतल हो गयी), *'देखी राम सकल कपि सैना। चितइ कृपा करि राजिवनैना॥ राम कृपा बल पाइ कपिंदा। भए पच्छजुत मनहु गिरिंदा॥'* (५। ३५), *'राम कृपा करि चितवा सबही। भए बिगत श्रम बानर तबही॥'* (६। ४७), *'अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता॥'* (५। ७), *'राम कृपा करि जुगल निहारे। भए बिगत श्रम परम सुखारे॥'* (६। ४५), *'कृपादृष्टि कपि भालु बिलोके। भए प्रबल रन रहहिं न रोके॥ कृपादृष्टि करि बृष्टि प्रभु अभय किए सुर बृंद।'* (६। १०२)

सोइ सादर सर* मज्जन करई। महा घोर त्रयताप न जरई॥ ६॥

अर्थ—वही इस सरमें आदरपूर्वक स्नान करता है, महाघोर त्रितापसे नहीं जलता॥ ६॥

टिप्पणी—१ (क) *'सोइ'* अर्थात् जिसपर श्रीरामजी अतिशय कृपादृष्टिसे देखते हैं। *'सोइ'* कहकर अन्यका व्यावर्तन किया। (ख) *'सादर'* अर्थात् श्रद्धापूर्वक, मन, बुद्धि, चित्त लगाकर बिना श्रद्धाके धर्म निष्फल जाते हैं, इसी तरह कथामें बैठनेपर मनमें और बातें सोचता रहा तो भी फल नहीं होता। ऐसे लोगोंपर समझना चाहिये कि श्रीरामजीकी सुकृपा-दृष्टि नहीं हुई। (ग) सरमें स्नान करनेका विधान है, उसका जल गरम करके स्नान करनेका नहीं। वैसे ही कथामें जाकर वक्ताकी कही हुई बातोंके सुननेका विधान है, उसका कोई अंश लेकर मनमें तर्क-वितर्क उठा देनेसे कथाका सम्यक् श्रवण नहीं होता, अतः वह कथाके फलसे वञ्चित रह जाता है। यथा—*'बारंबार सकोप मुनि करै निरूपन ग्यान। मैं अपने मन बैठि तब करउँ बिबिध अनुमान॥'* (७। १११), *'''''मुनि उपदेस न सादर सुनऊँ।'* (वि० त्रि०) (घ)—*'त्रयताप'*=तीनों ताप, अर्थात् दैहिक, दैविक, भौतिक। यथा—*'दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहिं काहुहिं ब्यापा॥'* (उ० २१) शरीरमें फोड़ा-फुन्सी-ज्वरादिक रोगोंसे पीड़ा होना दैहिक ताप है। साँप, बिच्छू इत्यादिसे दुःख भौतिक ताप है और ग्रहका अरिष्ट, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, इत्यादिसे दुःख होना दैविक है। (ङ) *'न जरई'*। यथा—**'श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये। ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः॥'** (उ० १३०) के पश्चात्।

* मज्जन सर—१७२१, १७६२, छ०। सरमजन-१६६१, १७०४, को० रा०।

नोट—१ (क) यहाँ सूचित किया कि ताप तब दूर होगा जब सादर मज्जन करेगा; यथा—'*सादर मज्जन पान किए तें। मिटहिं पाप परिताप हिए तें॥*' (१। ४३) रामराज्यमें तीनों तापोंसे लोगोंकी रक्षा थी। (ख) मानस-सरोवरका स्नान रामराज्य-सा सुखकर है, इसी भाँति श्रीरामचरितमानस-श्रवण भी रामराज्यमें प्रवेश है। इसके आधिभौतिक अर्थसे भौतिक ताप, आधिदैविक अर्थसे दैविक और आध्यात्मिक अर्थसे आध्यात्मिक ताप दूर होते हैं। इसीसे महात्मा लोग श्रीरामकथा श्रवणसे अघाते नहीं—'*भरहिं निरंतर होहिं न पूरे।*' (वि० त्रि०) (ग) [मज्जनसे ताप दूर होता है, कथाश्रवणसे त्रिताप। (मा० पी० प्र० सं०)]

ते नर यह सर तजहिं न काऊ। जिन्ह के रामचरन भल भाऊ*॥ ७॥
जो नहाइ† चह एहिं सर भाई। सो सतसंग करौ मन लाई॥ ८॥

शब्दार्थ—**काऊ**=कभी भी। **भाऊ**=प्रीति। **भल**=भलीभाँति, पूर्ण। **लाई**=लगाकर।

अर्थ—जिनका श्रीरामचरणमें पक्का प्रेम है वे इस सरको कभी भी नहीं छोड़ते॥ ७॥ हे भाई! जो इस सरमें स्नान करना चाहे वह मन लगाकर सत्सङ्ग करे॥ ८॥

टिप्पणी—१ '*जे श्रद्धा संबल रहित नहिं संतन्ह कर साथ। तिन्ह कहु मानस अगम अति जिन्हहिं न प्रिय रघुनाथ॥*' इस दोहेमें श्रद्धा-सत्सङ्ग-रामपदप्रेम-रहित जनोंको रामचरितमानस अगम दिखाया। फिर यहाँतक तीन चौपाइयोंमें इन्हीं तीनोंके होनेसे सुगमता दिखाते हैं। (क) जब श्रीरामजीकी कृपादृष्टि होती है तब श्रद्धा उत्पन्न होती है। '*सोइ सादर सर मज्जन करई*' से श्रद्धाको सूचित किया। आदरसे मज्जन करना श्रद्धा है। (ख) '*जो नहाइ चह एहि सर भाई। सो सतसंग करौ मन लाई॥*' में सत्सङ्गसे सुगमता जनाई। (ग) '*ते नर यह सर तजहिं न काऊ। जिन्ह के रामचरन भल भाऊ॥*' से रामपदप्रेमसे भी सुलभ होना दिखाया।

नोट—१ '*जे श्रद्धा संबल रहित*……।' (३८) से यहाँके '*सो सतसंग करौ मन लाई।*' तक अन्वय-व्यतिरेकसे श्रद्धा, भगवत्प्रेम और सत्संग ये तीन मानसकी प्राप्तिके हेतु हैं, यह बताया। '**यत्सत्त्वे यत्सत्त्वम् अन्वयः, यदभावो यदभावः व्यतिरेकः।**' अर्थात् एकके रहनेसे दूसरेका अवश्य होना 'अन्वय' कहलाता है और एकके न रहनेसे दूसरेका न रहना 'व्यतिरेक' है। दोहेमें व्यतिरेकसे बताया कि श्रद्धा आदि जिनमें नहीं हैं उनको मानस अगम्य है और चौपाइयोंमें अन्वयसे बताया कि जिनमें श्रीरामचरणप्रेम, सत्सङ्ग और ('*मन लाई*' अर्थात्) श्रद्धा है उनको मानस प्राप्त है। दूसरे, इसमें यह भी बताया कि श्रीरामपदप्रेम और श्रद्धा मनुष्यके वशकी बात नहीं हैं, अतः उनके लिये वह साधन बताते हैं जो वे कर सकते हैं अर्थात् सत्सङ्ग। (पं० रू० ना० मिश्र)

टिप्पणी—२ '*तजहिं न*' से सूचित किया कि सदा इस सरपर ही रहते हैं, उसको कभी नहीं छोड़ते, लौटना तो कोसों दूर। जिनपर कृपा नहीं है उनका कथासे लौटना कहा था; यथा—'*फिरि आवइ समेत अभिमाना।*' लौटकर वे दूसरोंकी श्रद्धा मिटा देते हैं तो स्वयं मानसके निकट फिर कैसे जा सकते? और जिनपर कृपा है वे कभी नहीं छोड़ते। यथा—'*आसा बसन ब्यसन यह तिन्हहीं। रघुपति चरित होइ तहँ सुनहीं॥*' (श्रीसनकादिकजी) '*फिरि आवइ*' की जोड़में यहाँ '*तजहिं न काऊ*' कहा।

टिप्पणी—३ '*जो नहाइ चह*……।' (क) श्रीमद्गोस्वामीजी श्रीरामचरितमानसमें स्नान करनेका प्रधान साधन यहाँ कहते हैं। अर्थात् सत्सङ्ग करो। ऐसा ही उत्तरकाण्डमें भी कहा है; यथा—'*बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग। मोह गए बिनु रामपद होइ न दृढ़ अनुराग॥*' (७। ६१) [यहाँ प्रथम और चतुर्थ निदर्शना अलङ्कारका सम्मेलन है। (वीरकवि)] (ख) '*भाई*'—सजातियोंसे 'भाई' सम्बोधन किया जाता है। गोस्वामीजीने मानसमें स्नान किया है; यथा—'*भइ कबि बुद्धि बिमल अवगाही।*' (१। ३९) इसीसे अन्य स्नान करनेवालोंको 'भाई' कहते हैं। (खर्रा) और साधारण बोली तो है ही। (ग) त्रिपाठीजी लिखते हैं कि '*भाई*' कहकर श्रीग्रन्थकर्ता मनुष्यमात्रको सम्बोधन करते हैं, पुकारकर कहते हैं कि '*एहिं सर*' जिसकी उपमा मानसरोवरसे दी गयी है, बड़ा उत्तम है। इसका जल मधुर मनोहर मङ्गलकारी है।

* चाऊ—१७२१, १७६२, छ०। भाऊ—१६६१, १७०४, को० रा०। † नहाइ— १६६१।

कमल फूले हैं, भौंरे गुञ्जार कर रहे हैं, इत्यादि—ऐसे सरमें स्नान करनेकी इच्छा न होना ही आश्चर्य है। (वि० त्रि०) 'भाई' के और भाव पूर्व आ चुके हैं। (१। ८। १३ देखिये) *'जो नहाइ चह'* का भाव कि जिनको इच्छा ही नहीं है, उनसे हम नहीं कहते। जिनको इच्छा हो, उनसे कहते हैं कि यद्यपि कथामें जाना और सादर श्रवण करना श्रीरामकृपासाध्य है, पर वह श्रीरामकृपा मनुष्य चाहे तो प्राप्त कर सकता है। उसका साधन हम बताये देते हैं कि सन्त सर्वत्र मिलते हैं, उनका सङ्ग करो।

नोट—२ गोस्वामीजी मन लगाकर सत्सङ्ग करनेको कहते हैं, जिसका भाव यह है कि बिना सत्सङ्गके भ्रम—संशय दूर नहीं होते। यही बात शिवजीने गरुड़जीसे कही है; यथा—*'तबहिं होइ सब संसय भंगा। जब बहु काल करिअ सतसंगा॥'*' (७। ६१। ४) मानसतत्त्वविवरणकार *'सतसंग करौ'* का एक भाव यह भी देते हैं कि 'इसके सत्-तत्त्वका सङ्ग करे अर्थात् सत्-मतकी जिज्ञासा रखे हुए इसके वचनोंमें चित्त दे।' मन लगानेका भाव कि पास बैठकर उनकी बातें सुने और समझे तो उसमें मौलिक परिवर्तन हो सकता है। अनिच्छुक काक, बक भी कोकिल हंस हो जाते हैं। मन न लगानेवालोंका स्वभाव नहीं छूटता।

मानस-सर और रामचरित-मानसका मिलान

मानस-सर	रामचरित-मानस
१—समुद्रसे मेघ सूर्यद्वारा मीठा जल खींचकर पृथ्वीपर बरसते हैं जो सिमिटकर थलमें जमा होता है।	वेद-पुराणसे साधु अपने विवेकद्वारा रामसुयश लेकर सुन्दर बुद्धिवालोंसे कहते हैं जिसे सुनकर ये हृदयमें धारण करते हैं।
२—वर्षाजलसे धान होता है जिससे जीवोंकी रक्षा होती है—*'सो जल सुकृत सालि हित होई।'*	रामसुयशसे सुकृत बढ़ते हैं, जिससे भक्तोंका जीवन है।—*'राम भगत जन जीवन सोई।'*
३—वर्षाजल पृथ्वीपर पड़नेके पूर्व मधुर, मनोहर और गुणकारी होता है।—*'बरषहिं रामसुजस बर बारी। मधुर मनोहर मंगलकारी॥'*	रामसुयशमें प्रेमलक्षणा भक्ति मधुरता और सुशीतलता अर्थात् मङ्गलकारी गुण है और सगुण लीलाका वर्णन करना मनोहरता (स्वच्छता) है। *'लीला सगुन जो कहहिं बखानी। सोइ स्वच्छता करइ मल हानी॥ प्रेमभगति जो बरनि न जाई। सोइ मधुरता सुसीतलताई॥'*
४—वर्षाजल भूमिके योगसे गँदला हो जाता है, शरद्-ऋतुमें थिर होकर पुराना होता है तब उसमें फिर पूर्व गुण आ जाते हैं।—*'भरेउ सुमानस सुथल थिराना।'*	मायिक उपमाओं, दृष्टान्तों इत्यादिका मिलना गँदलापन है। मनन-निदिध्यासन ही शीत पाकर चिराना होना है। वा, शरद्‌में पुराना होकर शीतल रुचिकर और सुखद होना है—*'सुखद सीत रुचि चारु चिराना॥'*
५—यहाँ चार घाट—गऊघाट—पंचायतीघाट, राजघाट और पनघट।—*'ते एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि।'*	यहाँ चार संवाद तुलसी-संत-संवाद, याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवाद, शिव-पार्वती-संवाद, काकभुशुण्डि-गरुड़-संवाद। *'सुठि सुंदर संबाद बर बिरचे बुद्धि बिचारि'* [चार्ट (नकशा) दोहा ३६ में देखिये]
६—सात सीढ़ियाँ घाटोंमें।	सात सोपान वा काण्ड—*'सप्त प्रबंध सुभग सोपाना।'*
७—सरमें जल अथाह है।—*'सोइ बरनब बर बारि अगाधा।'*	यहाँ श्रीरघुनाथजीकी अगुण और बाधारहित महिमा अगाध है। *'रघुपति महिमा अगुन अबाधा।'*
८—जल सुधा-सम।	श्रीसीतारामजीका मिश्रित यश पुष्ट और आह्लादकारी।—*'रामसीय जस सलिल सुधा सम'*।

मानस-सर	रामचरित-मानस
९-लहरोंका विलास।	उपमाएँ—*'उपमा बीचि बिलास मनोरम।'*
१०—पुरइन घनी जलपर फैली हैं।—*'पुरइन ......'*	यहाँ चौपाइयाँ हैं जिनके अभ्यन्तर श्रीरामसुयशजल छिपा है।—*'सघन चारु चौपाई।'*
११—पुरइनके नीचे सरमें सीपियाँ हैं जिनसे उत्तम मणि उत्पन्न होते हैं।	यहाँ रामचरितमानसमें चौपाइयोंके अभ्यन्तर काव्यकी युक्तियाँ हैं जिनमें बड़े मोलकी चमत्कारियाँ हैं।—[देखिये ३७ (४)]—*'जुगुति मंजु मनि सीप सुहाई।'*
१२—यहाँ चार रंगके अनेक कमल—*'सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा।'*	यहाँ सुन्दर छन्द, सोरठे, दोहे-*'छन्द सोरठा सुन्दर दोहा।'*
१३—कमलमें पराग, मकरंद, सुगंध—*'सोइ पराग मकरंद सुबासा।'*	यहाँ छन्दादिमें अनुपम अर्थ, अनेक भाव और सुन्दर सब देशोंकी भाषा *'अर्थ अनूप सुभाव सुभासा।'*
१४—यहाँ सुन्दर भ्रमर और हंस।	यहाँ सुकृती और सुकृत-समूह और ज्ञान-विराग विचार।
१५—मानस-सरके जलके आश्रित तीन प्रकारके जलचर हैं—एककी तल्लीन संज्ञा है जो जलके बाहर जीते-जी जा ही नहीं सकते; दूसरे तद्गत हैं जैसे मगर, घड़ियाल, कछुए आदि जो जलसे बाहर भी कुछ देर रह जाते हैं और तीसरे तदाश्रय जलपक्षी हैं।	यहाँ—*'धुनि अवरेब कबित गुन जाती'* ही *'मीन मनोहर'* बहुत भाँतिकी हैं; *'अर्थ धर्म कामादिक चारी। कहब ग्यान बिग्यान बिचारी॥ नवरस जप तप जोग बिरागा।'* ये तद्गत जलचर हैं; और *'सुकृती साधु नाम गुन गाना'* तदाश्रय हैं। [देखिये (३७। ८—११)]
१६—सरके बाहर चारों ओर आमके बाग।	रामचरितमानसके चारों ओर संतसभा।
१७—वसन्त ऋतु।	श्रद्धा।
१८—बागमें आमके और-और भी जामुन, कटहल इत्यादि वृक्ष हैं जिनपर बेलें छायी हैं।	सन्तसभामें भक्तिका अनेक प्रकारसे निरूपण होता है, जिसके आश्रित क्षमा-दया रहते हैं।
१९—वृक्षोंमें फूल, फल, रस।	यहाँ भक्तिमें शम, यम, नियम फूल हैं। इनसे जो ज्ञान प्राप्त होता है वह फल है, हरिपदमें प्रेम होना रस है।
२०—वृक्षोंकी छायामें या फूल-फल, रसका आनन्द लेने पक्षी आते हैं।	यहाँ रामचरितमानसमें संतसभामें अनेक कथाएँ और कथाओंके प्रसङ्ग आते हैं।
२१—अमराईके बाद चारों ओर क्रमसे फुलवारी, बाग और वन हैं जिनमें पक्षियोंका विहार होता है। माली घड़ेमें जल लेकर सींचता है।	संतसभामें रोमाञ्च है। (देखिये ३७) रोमाञ्चसे सुख प्राप्त होना पक्षियोंका विहार है, सुन्दर मन माली है, स्नेह जल है, नेत्र घट हैं। पुलक कायम रखनेको निर्मल मन चाहिये, प्रेम चाहिये सो यहाँ दिखाये हैं।
२२—सरमें पहरा चतुर रक्षकोंका।	यहाँ रामचरितमानसको सँभालकर गाना।
२३—इसके अधिकारी देवता हैं।	इसके अधिकारी सभी स्त्री-पुरुष हैं जो इसे सादर सुनते हैं।
२४—यहाँ घोंघा, मेढक, सिवार नहीं होते, इसीसे कौए-बगुले नहीं जाते।	विषयकी रसीली कथाएँ इसमें नहीं हैं, इससे अत्यन्त खल और विषयी लोग कथाके पास नहीं फटकते।

सरमें पहुँचनेके लिये मार्गमें अनेक कठिनाइयाँ और विपत्ति हैं। अब उनको बताते हैं।—(३८। ७—१४)

मानस-सर	रामचरित-मानस
२५—(१) कँकरीले, पथरीले, काँटेदार कठिन भयङ्कर मार्गमें बाघ, सिंह, सर्प।	(१) दुष्टोंका सङ्ग, कुसङ्ग और उसमें कुसङ्गियोंके टेढ़े वचन।
(२) बड़े ऊँचे पर्वत।	(२) गृह-कार्य और अनेक झगड़े।
(३) घोर गहन वन और नदियाँ।	(३) मोह, मद, मान और अनेक दुष्ट तर्कें।
२६—जिनके पास राहखर्च नहीं, जिनका मानस-तीर्थमें प्रेम नहीं और जिनको यात्री-संतोंका साथ नहीं प्राप्त है और न मानस-तीर्थ-स्नान-जन्य पुण्यमें प्रीति है, उनको यह अत्यन्त कठिन है।	यहाँ जिनको श्रद्धा नहीं, श्रीरघुनाथजीके चरणोंमें जिनका प्रेम नहीं और न सत्सङ्ग ही जिनको नसीब हुआ उनको यह कथा अत्यन्त कठिन है।
२७—जो कठिनता झेलकर पहुँच भी जायँ तो वहाँ जाड़ा देकर ज्वर आ जाता है। हृदयतक जाड़ेसे काँप उठता है, इससे वह स्नान नहीं कर पाता।	यहाँ जाते ही नींद आ जाती है, क्योंकि इसके हृदयमें तो मूर्खता भरी है, इससे वह रामयश सुनता-समझता ही नहीं। नींद तुरत आनेसे कथा कुछ भी न सुन सका।
२८—तीर्थ-स्नान न होनेसे भीतर-बाहरका मैल बना ही रहा। लौटनेपर जो कोई तीर्थका हाल पूछने आया तो तीर्थकी निन्दा करता है।	कथा सुनता तो अभिमान दूर होता। न सुना इससे अभिमान बना रहा। यहाँ कथा और वक्ताकी निन्दा करके पूछनेवालेकी श्रद्धाको बुझा देता है।

इसमें कौन स्नान करते हैं अब उनका वर्णन करते हैं। (३९। ५—८)

२९—'सकल बिघ्न ब्यापहिं नहिं तेही। राम सुकृपा बिलोकहिं जेही॥'
'सोइ सादर सर मज्जन करई। महा घोर त्रयताप न जरई॥'
३०—'ते नर यह सर तजहिं न काऊ। जिन्ह के रामचरन भल भाऊ॥'
३१—'जो नहाइ चह एहिं सर भाई। सो सतसंग करौ मन लाई॥'
अर्थात् श्रद्धा, श्रीरामपद-प्रेम या सतसङ्ग जिनमें हो।

'मानस-सर' का 'पंपा-सर' से मिलान

मानस-सर	पंपा-सर
रामचरितमानस एहि नामा	१ पंपा नाम सुभग गंभीरा
भरेउ सुमानस सुथल थिराना	२ संत हृदय जस निर्मल बारी
ते एहि पावन सुभग सर घाट मनोहर चारि	३ बाँधे घाट मनोहर चारी
रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा॥	४ अति अगाध जल माहिं
पुरइनि सघन चारु चौपाई	५ पुरइनि सघन ओट जल
ज्ञान नयन निरखत मन माना	६ देखि राम अति रुचिर तलावा।......परम सुख पावा
छंद सोरठा सुंदर दोहा। सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा॥	७ बिकसे सरसिज नाना रंगा
सुकृत पुंज मंजुल अलि माला।	८ मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा

मानस-सर	पंपा-सर
ज्ञान बिराग बिचार मराला॥	९ बोलत जल कुक्कुट कलहंसा
धुनि अवरेब कबित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहु भाँती॥	१० सुखी मीन सब एक रस अति अगाध जल माँहि
सुकृती साधु नाम गुन गाना। ते बिचित्र जल बिहँग समाना॥	११ सुंदर खग गन गिरा सोहाई। जात पथिक ...... ॥
सदा सुनहिं सादर नर नारी। तेइ सुरबर मानस अधिकारी॥	१२ ताल समीप मुनिन्ह गृह छाये—
संत सभा चहुँ दिसि अँबराई।	१३ चंपक बकुल कदंब तमाला। पाटल पनस परास रसाला॥
सम जम नियम फूल फल ग्याना॥	१४ नव पल्लव कुसुमित तरु नाना ...... फल भारन
अउरउ कथा अनेक प्रसंगा। तेइ सुक पिक बहु बरन बिहंगा॥	१५ कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं। सुनि रव ......
पुलक बाटिका बाग बन सुख सुबिहंग	१६ चहुँ दिसि कानन बिटप सुहाये।
कलि खल अघ अवगुन कथन ते जल मल बग काग	१७ चक्र बाक बक खग समुदाई। देखत बनै ......

अस मानस मानस-चख चाही। भइ कबि बुद्धि बिमल अवगाही॥ ९॥

शब्दार्थ—**कबि बुद्धि**=वह बुद्धि जो उस (रामयश) को प्रबन्धरूपमें लानेको उद्यत है। (मा० त० वि०) चाही=देखकर; यथा—*'सीय चकित चित रामहिं चाहा।'* मानस-चख=हृदयके नेत्र=ज्ञानदृष्टि।

अर्थ—ऐसे मानसको हृदयके नेत्रोंसे देखकर कविकी बुद्धि उसमें गोता लगाकर निर्मल हो गयी*॥ ९॥

नोट—१ (क) *'अस मानस'* इति। यहाँ मानसका स्वरूप सम्पुट किया। *'जस मानस जेहि बिधि भयउ'* उपक्रम है और *'अस मानस'* उपसंहार है। *'अस मानस'*=ऐसा मानस अर्थात् जैसा ऊपर *'जस मानस जेहि बिधि भयेउ ......'* । ३५ से ३९ (८), वा *'जे श्रद्धा संबल रहित ......'* (३८) तक [मा० प्र० के मतानुसार *'सुठि सुंदर संबाद ......।'* (३६) से *'जे गावहिं यह चरित सँभारे।' ......* (३८। १) तक] कह आये। यहाँ मानस शब्द दो बार भिन्न-भिन्न अर्थोंमें आया है। यहाँ यमक और अनुप्रास दोनोंकी संसृष्टि है। (ख) जो बुद्धि पहले 'अति नीचि' होनेसे कदराती थी वह शम्भुप्रसादसे 'हुलसी' और सुमति हुई। फिर जब उसने मानसको देखा और उसमें गोता लगाया तब वह निर्मल हो गयी। (मा० प्र०) (ग) श्रीबैजनाथजी लिखते हैं कि जो बुद्धि अब गोता लगाकर निर्मल हुई है वह 'शक्ति-व्युत्पत्ति-अभ्यासमय कविकी बुद्धि है जो काव्यकी कारण है।' ग्रन्थकारने पहले मेधा नाम महिका निरूपण किया, वह बुद्धिस्थ पदार्थको धारण करनेवाली है। पुनः सुमतिमानसके अन्तरकी भूमिका निरूपण किया जो रामतत्त्वका निर्णय निरूपण करनेवाली है। अब वही बुद्धि गोता मारकर विमल हो गयी, वही अब रामगुणगानमें प्रवृत्त हुई है।

त्रिपाठीजी—मनमें ही यह मानसतीर्थ साधुवनकी वर्षासे महात्माओंके कथा-श्रवणसे बना। जिस भाँति मानसरोवरके दृश्योंकी पर्यालोचना स्थूलनेत्रोंसे की जाती है, उसी भाँति इस रामचरितमानसकी पर्यालोचना कविने मानसचक्षुसे की। भावार्थ यह कि पहले भलीभाँति गुरुमुख तथा साधुमुखसे श्रवण किया, तत्पश्चात् आद्योपान्त मनन किया। मनन करनेसे ही यह सर साङ्गोपाङ्ग सुन्दर तथा उपयोगी हो गया। मनन, निदिध्यासन ही नहीं किन्तु विद्याको उपयुक्त करनेके लिये प्रवचन भी किया। तत्पश्चात् कविकी बुद्धिने उस सरमें स्नान भी किया। भाव कि श्रवण-मननके बाद निदिध्यासन भी किया। मनन करते ही बुद्धि समाहित हो गयी। समाधिमें ही डूबाडूबकी अवस्था होती है। उस अवस्थाको यहाँ *'अवगाहि'* कहकर अभिहित किया

* अर्थान्तर—१ 'देखनेसे बुद्धि कवि हो गयी (अर्थात् कविता करनेयोग्य हुई, जो रूप देखा है, उसकी वक्ता हो गयी) और उसमें गोता लगानेसे बुद्धि निर्मल हुई।' (पाँ०, रा० प्र०)

२—सुधाकर द्विवेदीजी 'चष' का अर्थ 'प्याला' करते हैं। वे लिखते हैं कि 'संस्कृतमें चष या चषक प्यालेको कहते हैं जिसमें किसी रसको रखकर पीते हैं। हृदयरूप पात्रहीमें रखनेसे इस मानसका सीयरामयश अमृतरस नहीं बिगड़ता, दूसरे पात्रमें रखनेसे बिगड़ जाता है। ऐसे पात्रमें रखकर रस पीनेसे और रससे अवगाहन अर्थात् स्नान करनेसे कविकी बुद्धि विमल हुई।

है। मनकी धारणासे ही ध्यान और समाधि होती है। जबतक समाहितावस्था न आयी तबतक बुद्धिमें रज और तमका अनुवेध बना ही रहा। सात्त्विकी बुद्धि भी पूर्ण निर्मल समाधिसे ही होती है। कथाके प्रारम्भमें वक्ताके समाहित होनेका विधान है, यथा—*'हर हिय रामचरित सब आए। प्रेम पुलक लोचन जल छाए॥'* जब समाधिमें बुद्धि निर्मल हो जाती है तो देशकालका आवरण दूर हो जाता है और प्रज्ञालोकसे जीते-जागते चरित्रका हृदयमें प्रादुर्भाव होता है।

टिप्पणी—दोहा ३८ में *'जे गावहिं यह चरित सँभारे'* से *'रामकृपा बिनु'*...... तक *'यह'*, *'एहि'*, *'इहाँ'*, *'आवत'* इत्यादि पद दिये। दोहा ३९ में *'जौं करि कष्ट जाइ पुनि कोई'* से *'जौं बहोरि कोउ पूछन आवा'* तक *'जाइ'*, *'जातहि'*, *'गएहुँ'* इत्यादि पद दिये और फिर *'ते नर यह सर तजहिं न काऊ'* से *'यह'*, *'अस'* पद दिये हैं। इसका क्या भाव है?' उत्तर यह है कि—(क) दोहा ३८ (१—६) में तड़ाग और तड़ागके समीपका वर्णन किया है, इसीसे वहाँ समीपवाची शब्द *'यह'* *'एहि'* इत्यादि दिये। दोहा ३९ (१—४) में तड़ागसे दूरका वर्णन किया, इससे वहाँ दूरवाची पद *'जाइ'*, *'गएहुँ'* इत्यादि दिये। अब फिर समीपवाची पद देते हैं। इसके तीन हेतु हैं—रामपदप्रीति, ज्ञाननयन और सत्सङ्ग—इन तीनोंके होनेसे रामचरित समीप हो जाता है; यथा—*'ते नर यह सर तजहिं न काऊ। जिन्ह के रामचरन भल भाऊ॥'*, *'जो नहाइ चह एहि सर भाई। सो सतसंग करउ मन लाई॥'*, *'अस मानस मानस चष चाही।'* अथवा, (ख) दूरका वर्णन करके कविकी बुद्धि पुन: सरके समीप गयी, इससे पुनः समीपवाची शब्द दिये। (ग) [यह मानस श्रीगोस्वामीजीके हृदयमें है, अत: यात्रियोंके लिये *'आवत'* शब्दका प्रयोग करते हैं, *'जात'* नहीं कहते। (वि० त्रि०)]

नोट—२ इस चौपाईसे कवितासरयूका रूपक चला है। रूपकके लिये श्रीसरयूजीके जन्मकी कथा जान लेना आवश्यक है जो इस प्रकार है—

(१) आनन्दरामायणके यात्राकाण्ड सर्ग ४ में श्रीसरयू-अवतारकी कथा इस प्रकार है कि रघुनाथजी मुद्गलऋषिके पुराने आश्रमपर पहुँचे तब मालूम हुआ कि वे इस आश्रमको छोड़कर दूसरे स्थानपर रहते हैं। मुद्गलजीके दर्शन होनेपर श्रीरामजीने इस आश्रमके त्यागका कारण विस्तारसे पूछा—'**त्वयायमाश्रमस्त्यक्तः किमर्थं मुनिसत्तम। तत्त्वं वद महाभाग यथावच्च सविस्तरम्**॥' (६४) उसके उत्तरमें कारण वे बताते हैं कि—'**सान्निध्यं नात्र गङ्गायाः सरय्वा अपि नात्र वै। इति मत्वा मया त्यक्तश्चाश्रमोऽयं महत्तमः॥ अत्र सिद्धिं गताः पूर्वं शतशोऽथ सहस्रशः। मुनीश्वरा मयाप्यत्र तपस्तप्तं कियद्दिनम्**॥' (६८-६९) अर्थात् गङ्गा-सरयूका सङ्ग प्राप्त करनेके लिये इस आश्रमको छोड़कर दूसरी जगह चला गया जहाँ दोनों प्राप्त हैं। फिर रघुनाथजीने पूछा कि यदि दोनों यहाँ प्राप्त हो जायँ तो इस आश्रममें आप निवास करेंगे? उनके इस बातके अङ्गीकार करनेपर रघुनाथजीने और भी प्रश्न किये और यह भी पूछा कि सरयूजी क्यों श्रेष्ठ हैं और क्यों धरातलपर प्राप्त हुईं? '**किमर्थं सरयूः श्रेष्ठा कुतः प्राप्ता धरातलम्**॥' (७४) ऋषिका उत्तर इस प्रकार है कि जब शङ्खासुर वेदोंको चुरा ले गया और आपने मत्स्यरूप धरकर उसे मारकर वेदोंको ला दिया और फिर अपना पूर्वरूप हर्षपूर्वक धारण किया उस समय हर्षके कारण आपके नेत्रमें अश्रुबूँद निकल पड़ा—'**तदा हर्षेण नेत्रान्ते पतिताश्चाश्रुबिन्दवः। हिमालये ततो जाता नदी पुण्या शुभोदका॥ साक्षान्नारायणस्यैव आनन्दाश्रुसमुद्भवा। शनैर्बिन्दुसरः प्राप तस्माच्च मानसं ययौ॥ एतस्मिन्नन्तरे राम पूर्वजस्ते महत्तमः। वैवस्वतो मनुर्यष्टुमुद्युक्तो गुरुमब्रवीत्॥ अनादिसिद्धायोध्येयं विशेषेणापि वै मया। रचिता निजवासार्थमत्र यज्ञं करोम्यहम्**॥' (७९—८२) उन अश्रुओंसे हिमालयमें एक प्रेमनदी उत्पन्न हुई और मानससरोवरमें वे प्रेमबिन्दु प्राप्त हुए। उसी समय वैवस्वत मनुजीने एक यज्ञ करना चाहा और गुरुसे आज्ञा माँगी। गुरुने कहा कि यदि यहाँ यज्ञकी इच्छा है तो परमपावनी सरयूजीको मानससे यहाँ ले आओ। यह सुनकर उन्होंने प्रत्यञ्चा चढ़ा बाण चलाया जो मानस-सरको बेधकर श्रीअयोध्याजीमें ले आया। आगे-आगे बाण पीछे-पीछे सरयूजी आयीं इसीसे शरयू नाम हुआ वा सरोवरसे आयीं इससे सरयू नाम पड़ा।

(२) सत्योपाख्यान पू० अध्याय ३७ में कथा इस प्रकार है कि राजा दशरथजीने सरयू-अष्टक बनाकर

श्रीसरयूजीकी स्तुति की जिसे सुनकर उन्होंने प्रकट होकर श्रीदशरथ महाराजको पुत्रोंसहित दर्शन दिया। फिर श्रीरामचन्द्रजीको गोदमें बिठाकर आशीर्वाद दिया और राजासे बोलीं कि हमारे वचन सुनो। ये बालक ब्रह्माण्डभरके इष्ट और प्रिय मेरे कोखमें सदैव विराजमान रहते हैं—'**इमे च बालका इष्टाः सर्वेषामण्डगोलके॥ वसन्ति मम कुक्षौ हि पश्यतां ज्ञानचक्षुषा।**' (१५-१६) ये ज्ञाननेत्रसे देखे जा सकते हैं, ऐसा कहकर अपनी कुक्षिमें श्रीरामचन्द्रजीको दिखाया। राजा देखकर बड़े आश्चर्यको प्राप्त हुए और प्रणाम करके कहा कि मैं आपके मुखारविन्दसे आपकी उत्पत्ति सुनना चाहता हूँ; (हमें यों मालूम है कि) स्वायम्भुव मनुके समय वसिष्ठजी आपको लाये। उसी समयसे हमारे पुत्रोंको आप उदरमें धारण किये हैं और वासिष्ठी कहलाती हैं।

श्रीसरयूजीने अपनी उत्पत्ति कही जो श्लोक २१ से ४१ तकमें इस प्रकार है—'सृष्टिके आदिमें जब ब्रह्माजी पद्मनाभभगवान्से उत्पन्न हुए, तब उनको तपकी आज्ञा हुई। ब्रह्माजीने दिव्य हजार वर्षतक कुम्भकको चढ़ाकर भगवदाराधन किया। अपनी आज्ञामें वर्तमान देख कमलापतिभगवान् वहाँ आये। इनको भक्तिमें तत्पर देख उनके नेत्रोंसे करुणाजल निकल चला— '**तं तदा तादृशं दृष्ट्वा निजभक्तिपरायणम्। कृपया सम्परीतस्तु नेत्राज्जलं मुमोच ह॥**' (२५) ब्रह्माजीने नेत्र खोल भगवान् लोकनाथ जगत्पतिको देखकर दण्डवत् प्रणाम किया। और उस दिव्य जलको हाथमें ले लिया—'**पतितं विष्णुनेत्राच्च जलं जग्राह पाणिना। कमण्डलौ स्थापयामास प्रेम्णा तत्र पितामहः॥**' फिर बड़े प्रेमसे उसे कमण्डलुमें रख लिया। भगवान्के अन्तर्धान होनेपर ब्रह्माजीने यह विचारकर कि यह ब्रह्मद्रव साक्षात् ब्रह्मरूप अप्राकृत जल है। इसे स्थापित करनेको मनसे एक मानस-सर रचा और उसमें इस ब्रह्मद्रवको स्थापित किया—'**ब्रह्मापि तज्जलं ज्ञात्वा ब्रह्मद्रावमिदं शुभम्॥ मनसा रचयामास मानसं सर एव सः। जले तु सरसस्तस्मिंश्चक्रे न्यासं च पद्मजः॥**' (३०-३१) बहुत काल बीतनेपर तुम्हारे पूर्वज इक्ष्वाकु राजाकी प्रार्थनासे वसिष्ठजी मानस-सरपर गये और मञ्जुकेशि ऋषि (जो इस जलकी रक्षाके लिये नियुक्त किये गये थे) की स्तुति की। ऋषिने प्रसन्न होकर कहा कि वर माँगो। तब उन्होंने नदी माँगी—'**वव्रे मुनिर्नदीं तस्मात्तेन वृत्तं न नेत्रजम्। जलं यन्मानसे न्यस्तं ब्रह्मणा ब्रह्मयोनिना॥**' (३५) ऋषिने ले जानेकी आज्ञा दी, तब उस सरसे हम नदीरूप होकर निकलीं। वसिष्ठजी आगे-आगे अयोध्यामें आकर प्राप्त हुए और हम उनके पीछे-पीछे।—'**नदीरूपेण साहं वै सरसस्तु विनिर्गता। प्रापायोध्यां वसिष्ठस्तु पश्चादहं तु तस्य वै॥**' (३६)

यह उत्पत्तिकी कथा कहकर फिर उन्होंने इसका कारण बताया कि 'श्रीरामचन्द्रजीको क्यों सदैव उदरमें धारण किये रहती हैं।—'**विष्णुनेत्रसमुत्पन्ना विष्णुं कुक्षौ बिभर्म्यहम्। ये ध्यायन्ति सदा रामं मम कुक्षिगतं नराः॥ तेषां भक्तिश्च मुक्तिश्च भविष्यति न संशयः। रामं विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम्॥ भक्तानां रक्षणार्थाय दुष्टानां हि वधाय च। जातस्तव गृहे राजन् तपसा तोषितस्त्वया॥**' (३७—३९) हम इनके नेत्रसे उत्पन्न हुई हैं, इसलिये हम इन्हें अपनी कुक्षिमें धारण किये हैं। जो सदा इन रामजीके ध्यान करनेवाले हैं उनको भक्ति-मुक्ति मिलती है। ये पूर्णब्रह्म सच्चिदानन्द हैं, तुम्हारे तपसे प्रसन्न हो तुम्हारे यहाँ प्रकट हुए हैं।'

प्रायः इस कथाके आधारपर टीकाकारोंने कवितासरयूके रूपकको विस्तृतरूपसे लिखा है।

(क) बैजनाथजी लिखते हैं कि शिवजी ब्रह्मा हैं, हरि-करुणानेत्रसे चरित-जल प्राप्त करके अपने मनमानसमें रखे रहे, कविका मन इक्ष्वाकु है, मनोरथ वसिष्ठ हैं, जो काव्यरूप सरयूको सन्तसमाजरूपी अयोध्याको लाये। मानससे सरयूजी नदीरूप होकर निकलीं, इसी तरह हृदय-मानसमें जो रामयश-जल भरा था वह कवितारूपी नदी होकर निकला जिसका नाम 'कीर्ति-सरयू' हुआ।

(ख) सन्त श्रीगुरुसहायलालजी लिखते हैं कि 'शिवजीकी कृपादृष्टिसे पतन होकर, मेरे (गोस्वामीजीके) प्रबन्धारम्भसंकल्परूप कमण्डलुमें सम्प्राप्त हैं। कवि-बुद्धि जो रामयशजलको प्रबन्धकी रीतिमें लानेको उद्यत है वही ब्रह्मा है। बुद्धि-ब्रह्माने मानसमें प्रथम स्नान किया—'**ब्रह्मापि तज्जलं स्नात्वा ब्रह्मद्रावमिदं शुभम्।**' मनन-

निदिध्यासन कवि-बुद्धिका स्नान करना है, गोता लगाना चित्तकी समस्त वृत्तियोंका उसमें लय होना है, जिसमें केवल मानस-रामायणके तत्त्वकथनमात्र संस्कारका ग्रहण शेष रह जाता है।'

(ग) मयङ्ककार कहते हैं कि 'जिस प्रकार मानससरमें वसिष्ठजीने स्नान किया और निकलकर चले तब उनके पीछे सरयू नदी चली, वैसे ही गोस्वामीजीकी बुद्धि मानसको बारम्बार थाह करके अर्थात् विचार तथा मनन करके निकली और चली, उसके पीछे यह रामकथास्रोतरूपी सरयू उक्त मानससरसे प्रकट होकर चली।'

(घ) श्रीजानकीशरणजी लिखते हैं कि 'मानससरके अधिष्ठाता शिवजीने वसिष्ठजीसे कहा कि आप प्रथम मानससरमें स्नान करें। फिर जिस घाटसे निकलियेगा उसी ओरसे श्रीसरयूनाम्नी नदी चलेगी। वैसे ही हुआ। वसिष्ठजी स्नान करके दक्षिण घाटसे निकले तब मानससरसे उनके पीछे लगी हुई सरयू चलीं जो अयोध्या होते हुए छपराके पूरब गङ्गामें मिली हैं।'—(यह कथा किस ग्रन्थमें है यह उन्होंने नहीं लिखा। सत्योपाख्यान अ० ३७ में तो ऐसा है नहीं और इसी ग्रन्थका उन्होंने नाम दिया है।) इसीके आधारपर यह भाव कहते हैं कि 'गोस्वामीजीके मनमें जो गुरुद्वारा प्राप्त शङ्कररचित मानस था उस मनरूपी मानसमें बुद्धिरूपी वसिष्ठने अवगाहन किया तब पवित्र होकर निकली! उसके पीछे-पीछे काव्यरूपी सरयू प्रकट हुई और भक्तिरूपी गङ्गामें शोभित हुई।'

भयउ हृदय आनंद उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू॥ १०॥
चली सुभग कबिता सरिता सो*। रामबिमल जस जल भरिता सो*॥ ११॥

अर्थ—हृदयमें आनन्द और उत्साह भर गया, (जिससे) प्रेम और आह्लादका प्रवाह उमड़ आया॥ १०॥ और कवितारूपी सुन्दर नदी हो बह निकली कि जिसमें (वही) निर्मल रामयश जल भरा हुआ है॥ ११॥†

नोट—१ (क) *'भइ कबि बुद्धि बिमल अवगाही।'* (३९। ८) में और यहाँ *'भयउ हृदयँ आनंद उछाहू'* में स्नानके गुण दिखाये कि बुद्धि निर्मल हुई और हृदयमें आनन्द और उत्साह हुआ। (ख) जैसे यहाँ कविके हृदयमें 'प्रेम-प्रमोद' उमगा और प्रवाह चला वैसे ही श्रीशिवजी और श्रीभुशुण्डिजीके प्रसङ्गोंमें भी प्रेम-प्रमोद और प्रवाहका वर्णन है। यथा—*'हर हिय रामचरित सब आए। प्रेम पुलक लोचन जल छाए॥ श्रीरघुनाथरूप उर आवा। परमानंद अमित सुख पावा॥ मगन ध्यानरस दंड जुग——'* (१११) यह प्रेम-प्रमोद हुआ। *'रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनै लीन्ह।'* (१११) यह प्रवाह है। इसी तरह *'भयउ तासु मन परम उछाहा'* यह प्रेम-प्रमोद है और *'लाग कहै रघुपति गुन गाहा।'* (७। ६४) यह प्रवाह है। इसी प्रकार याज्ञवल्क्यजीके प्रसङ्गमें—*'सुनु मुनि आज समागम तोरें। कहि न जाइ जस सुख मन मोरें।'* (१। १०५। २) यह प्रेम-प्रमोद है और *'राम चरित अति अमित मुनीसा।'* से *'बरनउँ बिसद तासु गुन गाथा॥'* तक प्रवाह है। (ग) ☞ यहाँसे सरयू और कविता वा कीर्ति-सरयूका अभेद-रूपकालङ्कारमें वर्णन है। (घ) यहाँ गोघाट पशु-पङ्गु-अन्धादिके सुविधाके लिये ढालुआ बना है, अतः इधरसे ही सीयरामयशरूपी जल उमगकर बाहर चला। (वि० त्रि०)

नोट—२ *'जस मानस जेहि बिधि भयउ जग प्रचार जेहि हेतु'* में जगत्‌में प्रचारका हेतु जो बतानेको कहा था वह यहाँ बताया कि उत्साह-आनन्द इतना बढ़ा कि प्रवाहरूप हो निकल पड़ा अर्थात् यह कविता

---

* नागरीप्रचारिणी सभाकी प्रतिका पाठ 'सी' है। काशिराज, पं० रामकुमारजी, मा० त० वि०, व्यासजी, और १६६१ की पोथीका पाठ 'सो' है। दोनों पाठोंका अर्थ एक ही है। सो=वह। सो=समान। सी=समान। १७२१, १७६२, छ०, १७०४ में भी 'सो' है। को० रा० में 'सी' है।

†(१) श्रीसुधाकर द्विवेदीजी इस प्रकार अर्थ लिखते हैं—'हृदयमें आनन्द-उत्साहके साथ वह (सीयरामयशसुधा) रस बढ़ा, फिर भगवत्प्रेमके संयोगसे ऐसा बढ़ गया कि वहाँसे उमगकर एक प्रमोदकी धारा निकली जिससे कवितारूपी नदी उत्पन्न हुई।' (२) श्रीनंगे परमहंसजी यह अर्थ करते हैं—'सुन्दर कविता सरिता ऐसी रामजीके विमल यशरूप जल तिससे भरिके चली।'

आपके प्रेम-प्रमोदहीकी मूर्ति है। मिलान कीजिये—'**यत्र सा सरयूर्नित्या प्रेमवारिप्रवाहिनी। यस्या अंशेन सम्भूता विरजाद्या सरिद्वराः॥**' (वसिष्ठसं०) अर्थात् जहाँपर वह प्रेमरूपी जल बहनेवाली नित्या सरयू हैं कि जिनके अंशसे विरजा आदि श्रेष्ठ नदियाँ उत्पन्न हुई हैं।

सूर्यप्रसाद मिश्रजी—स्नान करनेसे आलस्य छूट जाता है और उत्साह आ ही जाता है; इसीलिये ग्रन्थकारने लिखा '***भयउ हृदयँ आनंद उछाहू।***' यहाँ उछाहका अर्थ 'काव्य करनेकी शक्ति' समझना चाहिये। अब पाठकोंको ध्यान देकर सोचना चाहिये कि अन्तःकरणसे आनन्दकी धारा, बुद्धिसे उत्साहकी धारा और मनसे प्रेमकी धारा तीनों ओरसे धारा, उमगकर मानसकी ओर चली पर वह मानसमें समा न सकी। तब बृहद्रूपसे उमड़ती हुई अन्तःकरणका जो चतुर्थ भाग काव्य करनेवाली शक्ति है उसीपर होकर बहने लगी। यह अर्थ '***प्रेम प्रमोद प्रबाहू***' से व्यञ्जित होता है।

टिप्पणी—१ '***भयउ हृदय आनंद उछाहू***......' '***चली सुभग कबिता सरिता सो।***' में रामचरितमानस-सरयूकी उत्पत्ति कही। जन्मस्थान बताकर '***सरयू नाम***......' में नामकरण सूचित किया। सरजू=सरसे जो उत्पन्न हुई। सरयू मानस-सर (=मानसरोवर) से निकलीं, कविता हृदयसे निकली, हृदय और मानस (=मन) एक ही हैं। दोनों ही 'सुमानस-नन्दिनी' हैं।

टिप्पणी—२ 'जो नदियाँ मानससे उत्पन्न हैं, पहाड़को उनका मूल कहनेका कोई प्रयोजन नहीं, इसलिये यहाँ पहाड़को नहीं कहा। करुणानदी मानस (मन) से उत्पन्न होती है। जैसे करुणानदीके प्रसङ्गमें कविने पहाड़का वर्णन नहीं किया है, यथा—'***सेन मनहुँ करुना सरित लिएँ जाहिं रघुनाथ।***' (अ० २७५) वैसे ही यहाँ भी नहीं कहा।

वि० त्रि०—'***चली सुभग कबिता सरिता***' इति। प्रेम-प्रमोदका प्रवाह ही कवितारूप हो गया, अतः '***सुभग***' कहा। '***सुभग***' से '***सरल***' अभिप्रेत है जिसे सुनकर वैरी भी वैर भुलाकर सराहने लगते हैं। '***सरिता चली***' कहनेका भाव कि जैसे नदी आप-से-आप बह चलती है, वैसे ही कविताका प्रवाह चला, लिखना कठिन हो गया, यह मधुमती भूमिकाका वर्णन हो रहा है, जहाँ पहुँचनेपर भारतादि काव्योंकी रचना सरल-सी बात हो जाती है। उसे फिर गणेशजी-से लेखककी आवश्यकता आ पड़ती है, जो बोलनेके साथ ही लिखता चला जाय। यह सोचनेकी आवश्यकता नहीं कि कहाँ ध्वनि रखना चाहिये, कहाँ अलङ्कार रखना चाहिये। नदी जान-बूझकर लहर, भँवर आदि नहीं उठाती, वे आप ही उठते रहते हैं।

प्रश्न—वह कविता किस रामसुयश की है—जो गुरुसे सुना था या जो साधुओंने बरसाया था?

उत्तर—मानसमें वर्षा होनेके पहले भी जल भरा था। जब वर्षाका जल उसमें आ मिला तब जो जल पहलेसे उसमें था वह भी उमड़कर बह निकला। उसी तरह यहाँ हृदयमें श्रीगुरुमहाराजसे जो रामचरितमानस पूर्व सुना था सो भरा हुआ था, फिर और सन्तोंसे जो सुना वह भी हृदयमें पहुँचा।

प्रश्न—वर्षा-जलसे जलमें मलिनता आ जाती है; वह मलिनता यहाँ क्या है?

उत्तर—गुरुसे सुने हुए और सन्तोंसे सुने हुएमें जहाँ-तहाँ व्यतिक्रम वा भेद जो जान पड़ा, उससे मानस मलिन हुआ। यह भेद ही मलिनता है। जब उसमें डुब्बी लगायी अर्थात् दोनोंको मनन किया तो मानसका यथार्थ स्वरूप वही देख पड़ा जो गुरुसे सुना था, बुद्धि निर्मल हो गयी, आनन्द-उत्साह इतना बढ़ा कि वही रामयश कवितारूपमें निकला। और भी ३६ (९) में देखिये। (मा० प्र०, पं०)

वि० टी०—गुरुसे सुनी हुई कथासे गोस्वामीजीका मानस कुछ भर गया था। सन्तोंसे जो कई प्रकारसे सुना वही मानो वर्षाका बहुत-सा नवीन जल आकर भर गया और जब उन्होंने इसपर विशेष विचार किया तब उनका हृदय इस रामकथा-जलसे इतना परिपूर्ण हो गया कि वह रामायणरूपी कविता-नदीद्वारा बह निकला। उत्तररामचरितमें लिखा है कि '**पूरोत्पीडे तडागस्य परिवाहः प्रतिक्रियाः**' अर्थात् जलस्थान यदि पानीसे विशेष भर जाय तो उसे बहा देना ही उत्तम उपाय है। सारांश यह है कि शिक्षा और सन्तकथनको सुनकर विचारपूर्वक गोस्वामीजीने रामायणग्रन्थका निर्माण किया।

मा० त० वि०—*'राम बिमल जस जल भरिता सो'* इति। (क) नदीको रामयशजलसे भरा हुआ कहा। कारण यह है कि सत्योपाख्यान अध्याय ३७ में वर्णन है कि सरयूजीने अपने उदरमें श्रीरामचन्द्रजीको विराजमान दिखलाया था।— वैसे ही रामयशरूप सच्चिदानन्दविग्रह इस कवितारूपिणी नदीमें प्राप्त है। अर्थात् शब्द-चित्र, अर्थ-चित्र, शब्दार्थ-चित्र जैसा कि भक्तमालके पाद-टिप्पणीमें *'रची कबिताई.........'* इस पदके स्पष्ट अर्थ करनेमें लिखा। [*'रची कबिताई'* यह नाभाजीकृत भक्तमालका, प्रियदासजीकृत भक्तिरसबोधिनीटीकाका कवित्त है।]

वि० त्रि०—*'राम बिमल जस जल भरिता सो'* कहकर इसे महाकाव्य कहा। महाकाव्यके विषयमें साहित्य-दर्पणकार लिखते हैं, कि—(१) महाकाव्यका नायक कोई देवता या सत्कुलोत्पन्न धीरोदात्त-गुणयुक्त क्षत्रिय होना चाहिये* या बहुत-से सत्कुलप्रसूत राजा भी हो सकते हैं। (२) शृङ्गार, वीर और शान्त रसोंमेंसे एक अङ्गी और सब रसोंको अङ्गभूत होकर रहना चाहिये और नाटककी सब सन्धियाँ रहनी चाहिये। (३) इतिहासकी कोई कथा या किसी सज्जनका वृत्त होना चाहिये। (४) उसमें अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारों हों, पर फल सबका एक ही हो। (५) आरम्भमें उसके वन्दना, आशीर्वाद या वस्तुनिर्देश रहे। (६) कहीं-कहीं खलोंकी निन्दा और सज्जनोंका गुणकीर्तन रहे। (७) उसमें ८ से अधिक सर्ग रहें जो न बहुत छोटे हों न बहुत बड़े और प्रत्येक सर्गमें एक वृत्तमय पद्य हो तथा समाप्ति उनकी अन्य वृत्तसे हो और सर्गान्तमें भावी सर्गकी कथाकी सूचना रहे। (८) उसमें संध्या, सूर्य, चन्द्र, प्रदोष, अँधेरा, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, मृगया, शैल, ऋतु, वन, सागर, सम्भोग, विप्रलम्भ, रण, प्रयाण, उपयम, मन्त्र, पुत्र और उदयका साङ्गोपाङ्ग यथायोग्य वर्णन हो और (९) सर्गका नाम, कविके वृत्त, नायकके वृत्त या सर्गके उपादेय कथाका सम्बन्धी होना चाहिये। साङ्गोपाङ्गसे जलकेलि मधुपानादिका ग्रहण है। ये सब लक्षण श्रीरामचरितमानसमें घटते हैं।†

वीरकवि—यहाँ कविताप्रवाहपर सरयूका आरोपकर उसकी परिपूर्णताके लिये रामयशमें जलका आरोपण करना 'परम्परितरूपक' है। उपमान सरयूका सर्वाङ्ग उपमेय कविता नदीपर आगे क्रमशः आरोप करनेमें 'साङ्गरूपकालङ्कार' है।

सरजू नाम सुमंगल मूला। लोक-बेद-मत मंजुल कूला॥ १२॥

अर्थ—(इस कवितारूपिणी नदीका) नाम सरयू है जो (समस्त) सुन्दर मङ्गलोंकी जड़ है। लोकमत और वेदमत इसके दोनों सुन्दर तट वा किनारे हैं॥ १२॥

पं० रामकुमारजी—१ (क) *सुमंगल मूला'* यथा—*'सरजू सरि कलि कलुष नसावनि।'* (१। १६), *'जा मजन ते बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं बासा॥'* (७। ४) कलिके पापोंका नाश करने और श्रीरामसामीप्य प्राप्त कर देनेवाली होनेसे *'सुमंगल मूला'* कहा। (ख) लोकमत वह है जहाँ लोकरीतिका वर्णन है; यथा—*'लोक रीति जननी करहिं बर दुलहिनि सकुचाहिं।'* (१। ३५०) *'प्रात काल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुर नावहिं माथा। आयसु माँगि करहिं पुरकाजा। देखि चरित हरषइ मन राजा॥'* (१। २०५), *'बंदि बिप्र सुर गुर पितु माता। पाइ असीस मुदित सब भ्राता॥'* (१। ३५८) इत्यादि। वेदमत वह है जहाँ

* श्रीरामचन्द्रजी देवाधिदेव भी हैं और भौतिक दृष्टिसे सत्कुलोत्पन्न क्षत्रिय भी हैं। ये धीरोदात्त नायक हैं। जो अविकत्थन, क्षमावान्, अति गम्भीर, महासत्त्व-निगूढ़मान और दृढ़व्रत हो उसे धीरोदात्त कहते हैं।

†(२) रघुवीरचरित होनेसे इसमें वीररस प्रधान है, शेष अङ्गभूत होकर आये हैं। नाटकमें पाँच सन्धियाँ होती हैं—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निबर्हण। (३) महाभारत और वाल्मीकीय इतिहासोंमें श्रीरामकथा है ही। (४) 'सब कर फल हरि भगति भवानी' कहा ही है। (७) रामायणपरम्पराका अनुसरण करते हुए कविने इसमें सात ही काण्ड माने हैं। यह चौपाई-छन्दोंमें कहा गया है। पर काण्डकी समाप्ति छन्द, सोरठा, दोहा या श्लोकसे की गयी है। काण्डके अन्तमें भावी काण्डका सूत्रपात भी है। (९) नायकके वृत्तके अनुसार बाल और उत्तरकाण्ड नाम रखे गये। शेष काण्डोंके नाम कथावृत्तके अनुसार हैं।

प्रभुका ऐश्वर्य, परब्रह्म होना, ज्ञान, उपासना इत्यादि परमार्थकी बातें वर्णित हैं; यथा—'*एक अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद परधामा॥ ब्यापक बिस्वरूप भगवाना॥*' (१। १३), '*जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ज्ञान-गुन-धामू॥ ......*' (१। ११७) इत्यादि। गोस्वामीजीका काव्य लोक-वेदमय है। यथा—'*करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि।*' (२। २५८), '*लोक बेद बुध संमत दोऊ।*' (२। २०७। १), '*लोकहु बेद बिदित कबि कहहीं।*' (२। २५२। ७), '*लोकहु बेद सुसाहिब रीती । बिनय सुनत पहिचानत प्रीती॥*' (१। २८। ५), '*करि लोक-बेद बिधानु कन्या दान नृप भूषन किये। ......*' (१। ३२४), '*करि कुल रीति बेद बिधि राऊ।*' (१। ३०२),'*निगम नीति कुल रीति करि अरघ पाँवड़े देत। ......*' (१। ३४९) इत्यादि।

२ लोकमत और वेदमत दोनोंको कविता-सरयूके सुन्दर किनारे कहे; इन दोनोंके भीतर यह नदी बहती है। अर्थात् रामचरितमानसमें दोनों मतोंका प्रतिपादन है, लौकिक और परमार्थिक दोनों व्यवहारोंका पूर्णतया निरूपण है। [इन दोनों मतोंका उल्लङ्घन उसमें नहीं है। यदि है भी तो राक्षसोंके अत्याचाररूपी अतिवृष्टिकी बाढ़ समझनी चाहिये। वि० टी०] ☞ किसीके मतानुसार लोकमत मञ्जुल नहीं है और कोई वेदमतका खण्डन करते हैं। गोस्वामीजी दोनों मतोंको मञ्जुल कहते हैं, जिसका भाव यह है कि रामचरितने दोनों मतोंको 'मञ्जुल' कर दिया है, इससे लोक और वेद दोनोंको बड़ाई मिली है। दोनों मतोंको लेते हुए रामचरित्र कहेंगे। लोकमत-वेदमत दोनोंमें जल है।

नोट—१ श्रीकबीरजीने लोकमत और वेदमतका भी जहाँ-तहाँ खण्डन किया है। श्रीनाभास्वामीजी उनके सम्बन्धमें लिखते हैं कि—'*कबीर कानि राखी नहीं वर्णाश्रम षट्दर्शनी।*' कबीरजी अपने 'राम' को 'सबसे न्यारा' कहते हैं। गोस्वामीजीने कर्म, ज्ञान, उपासना और दैन्य चार घाट बनाकर लोक और वेद दोनों मतोंका उल्लेख किया। जो जिस घाटकी वस्तु है वह उस घाटमें दिखायी गयी, कर्मकाण्डका सिद्धान्त कर्मकाण्डघाटमें, उपासनाका उपासनाघाटमें, इत्यादि। इसीसे उनके कथन जहाँ जो हैं, वहाँ वे पूरे सत्य हैं; कोई विरोध नहीं है।

नोट २—नदीके दो किनारोंमेंसे एक किनारे जल गहरा रहता है और दूसरेपर उथला, एक किनारा खड़ा और दूसरा प्रायः ढालू। नदीका बहाव (धारा) जिधर होता है वह किनारा गहरा होता है। यहाँ कविता-सरयू वेदमत-किनारे लगकर चलती है जहाँ श्रीरामयश-जल सदा गहरा रहता है। लोकमत-किनारा उथला किनारा है। वेदमतके उदाहरण; यथा—'*करि आरति नेवछावरि करहीं। बार बार सिसु चरनन्हि परहीं॥*' (१। १९४। ५), '*जो आनंदसिंधु सुखरासी। सीकर तें त्रैलोक सुपासी॥ सो सुखधाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक बिश्रामा॥*' (१। १९७। ५-६), '*जे मृग रामबान के मारे। ते तनु तजि सुरलोक सिधारे॥*' (१। २०५) '*सुर लखे राम सुजान पूजे मानसिक आसन दये।*' (१। ३२१)—(इसमें अन्तर्यामित्वगुण प्रकट होनेसे वह वेदमत ही है।), इत्यादि। लोकमत, यथा—'*कौतुक बिनोद प्रमोदु प्रेमु न जाइ कहि जानहिं अलीं।*' (१। ३२७),'*लोकरीति जननी करहिं बरदुलहिनि सकुचाहिं। मोदु बिनोदु बिलोकि बड़ रामु मनहि मुसुकाहिं॥*' (१। ३५०) इत्यादि, ग्रन्थभर दोनोंके प्रमाणोंसे ओत-प्रोत है। (मा० प्र०) त्रिपाठीजीका मत है कि लोकमत दक्षिणकूल है और वेदमत वामकूल है।

नदी पुनीत सुमानस-नंदिनि। कलिमल त्रिन-तरुमूल-निकंदिनि॥ १३ ॥

अर्थ—यह सुमानस नन्दिनी (जो सुन्दर मानससे उत्पन्न हुई, सुमानसकी पुत्री) नदी पवित्र है और कलिके पापरूपी तिनकों और वृक्षोंको जड़से उखाड़ फेकनेवाली है॥ १३॥

नोट—१ (क) श्रीसरयू मानससरसे निकलीं जिसमें भगवान्‌के नेत्रका जल भरा है। कवितासरयू कविके हृदयसे निकली* जिसमें श्रीरामसुयश-जल भरा है। इसीसे दोनोंको 'सुमानस' की पुत्री कहा और दोनों इसीसे पुनीत भी कही गयीं। (पं० रा० कु०, मा० प्र०) (ख) महाराज हरिहरप्रसादजी लिखते हैं कि 'और नदियाँ पर्वत, भूमि, वृक्ष आदिसे निकली हैं और इनकी उत्पत्ति शिवजीके मानससे है, और

* सू० प्र० मिश्र—यह मानसरामायण शिवमानससे निकला।

नदियाँ जलसे भरी हैं और यह रामयशसे, इसीसे मानसनन्दिनीको सबसे पुनीत कहा। (ग) श्रीसरयूजीकी पुनीतताके सम्बन्धमें गोस्वामीजी स्वयं कहते हैं—*'नदी पुनीत अमित महिमा अति। कहि न सकै सारदा बिमल मति॥'* (१। ३५। २) (घ) *'नंदिनि'* कहकर जनाया कि यह अपनी माता मानसतीर्थको आनन्ददायिनी है, क्योंकि इसके द्वारा उसका नाम भी जगत्‌में विख्यात हुआ। बेटीमें कुछ गुण माताके-से होते हैं और कुछ नहीं भी। मानस ६० मीलकी परिधिमें और कोई २६४ फीट गहरा है, पर सरयू कई प्रान्तोंमें फैली हुई हैं। और गहराई ४० फीटसे अधिक न होगी। अतः काव्यद्वारा जिस कथाका प्रचार संसारमें हुआ उसमें मूलकी अपेक्षा बहुत कम गहराई होना स्वाभाविक ही है। (वि० त्रि०)

टिप्पणी—१ *'कलिमल त्रिन......'* इति। (क) कलिमल छोटे और बड़े दो प्रकारके हैं—पातक और उपपातक; यथा—*'जे पातक उपपातक अहहीं। करम बचन मन भव कबि कहहीं॥'* (२। १६७) पातक बड़े हैं और उपपातक छोटे। उपपातक तृण हैं, पातक तरु हैं। (ख) *'मूल निकंदिनि'* का भाव यह है कि पापका मूल मन, वचन और कर्म हैं। यह प्रथम मनको पवित्र करती है क्योंकि मानसनन्दिनी है, उत्पत्ति-स्थान इसका मन ही है, मनमें आते ही मन पवित्र हुआ। मनसे उमगकर वचनमें आयी तो वचन पवित्र हुआ, तब कर्म पवित्र हुए। इस तरह यह मन, वचन और कर्म तीनोंको पवित्र कर देती है। यथा—*'मन क्रम बचन जनित अघ जाई। सुनहिं जे कथा श्रवन मन लाई॥'* (७। १२६। ३) अथवा, क्रोध और अभिमान इत्यादि पापके मूल हैं। प्रमाण, यथा—**'क्रुद्धः पापं न कुर्यात्कः क्रुद्धो हन्याद् गुरूनपि। क्रुद्धः परुषया वाचा नरः साधूनधिक्षिपेत्।'** (वाल्मी० ५। ५५। ४) अर्थात् (श्रीहनुमान्‌जी लङ्कादहनके पश्चात् सोच कर रहे हैं कि) क्रोधी पुरुष कौन-सा पाप नहीं कर सकता है? वह गुरुको भी मार सकता है तथा कठोर वाणीद्वारा महात्माओंका तिरस्कार भी कर सकता है। पुनः यथा—*'लखन कहेउ हँसि सुनहु मुनि क्रोध पाप कर मूल। जेहि बस जन अनुचित करहिं चरहिं बिस्व प्रतिकूल॥'* (१। २७७), *'दया धर्म को मूल है पापमूल अभिमान।'* इन सबोंका नाश करती है। यथा—*'काम कोह कलिमल करिगन के। केहरि सावक जन-मन-बन के॥'* (१। ३२। ७)

टिप्पणी—२ (क) ये तृण और तरु कूलके हैं। यहाँ लोकमत और वेदमत दो कूल हैं। लोकमतसे जो पाप हैं और वेदमतसे जो पाप हैं दोनोंको यह नाश करती है। पुनः, [श्रीसरयूजी तो बुरे-भले सभी वृक्षोंको उखाड़ डालती हैं, पर सुकीर्ति-सरयू दुर्बुद्धि आदि कुत्सित वृक्षोंको ही उखाड़ती हैं, यह विशेषता है; इसीसे तो 'सुमानस नन्दिनी' है। (ख) जब नदीके वेगसे किनारा फटकर गिरता है तब उसीके साथ भूमिमें प्रविष्ट वृक्षका मूल भी उखड़कर बह जाता है एवं पापका उत्पत्तिस्थान बुद्धि है, मानसरामायणके श्रवण-मनन-कीर्त्तनमें प्रवृत्त होनेपर जब पुलकाङ्ग होता है एवं पापबुद्धि समूल उखड़कर कथाप्रवाहरूपी वेगमें बह जाती है। कथाको नदीकी समता देनेका भाव कि नदीका प्रवाह और कथाकी वाणी दोनों प्राचीन कालसे चली आती हैं। पुनः जैसे नदी ऊँचेसे नीचेकी ओर जाती है, वैसे ही कथा भी बड़ोंके मुखसे निकलकर छोटोंको पवित्र करती है। पुनः एक समुद्रमें, दूसरी ईश्वर (रामरूप समुद्र) में लीन होती है। इत्यादि। (बै०, सू० मिश्र)]

टिप्पणी—३ उत्तमता और अधमता चार प्रकारसे देखी जाती है। अर्थात् जन्म-स्थानसे, सङ्गसे, स्वभावसे और तनसे। विभीषणजी जब शरणमें आये तब उन्होंने अपना अधम होना चारों प्रकारसे कहा है *'निसिचर बंस जनम सुरत्राता'* से जन्म दूषित दिखाया, *'नाथ दसानन कर मैं भ्राता'* से अधम रावणका सङ्ग-दोष कहा, *'सहज पाप प्रिय'* से स्वभाव-दोष कहा और *'तामस देहा'* कहकर तनकी अधमता कही। इसी प्रकार श्रीरामचन्द्रजीने चन्द्रमाके प्रति चारों बातें कही हैं, यथा—*'जनम सिंधु पुनि बंधु बिष दिन मलीन सकलंकु। सियमुख समता पाव किमि चंदु बापुरो रंकु॥'* (१। २३७), *'घटइ बढ़इ बिरहिनि-दुख-दाई। ग्रसइ राहु निज संधिहि पाई॥ कोक सोक प्रद पंकज द्रोही।'—'जन्म सिंधु'* (यह जन्म-दोष), *'बंधु बिष'* (यह सङ्गदोष) *'दिन मलीन'* और *'कोक सोक प्रद पंकज द्रोही'* (यह स्वभावदोष) और *'घटइ बढ़इ ......'* (यह तनदोष है)।

☞ इसी तरह श्रीसरयूजीकी उत्तमता गोस्वामीजीने चारों प्रकारसे दिखायी है। *'सुमानस नन्दिनि'* से जन्म-स्थानकी पवित्रता कही, *'नदी पुनीत'* से तन पवित्र जनाया, *'राम भगति सुरसरितहि जाई। मिली ......'* से उत्तम सङ्ग और *'सुकीरति सरजु सुहाई'* से स्वभावसे उत्तम दिखाया। दोहा ४० (५) भी देखिये।

दोहा—श्रोता त्रिबिध समाज पुर ग्राम नगर दुहुँ कूल।
संत-सभा अनुपम अवध सकल सुमंगल मूल॥ ३९॥

अर्थ—तीन प्रकारके श्रोताओंका समाज इसके दोनों किनारोंके पुरवे, गाँव और नगर हैं। सुमङ्गलमूल सन्त-सभा उपमा-रहित और सब सुन्दर मङ्गलोंकी जड़ श्रीअयोध्याजी हैं॥ ३९॥

नोट—१ 'श्रोता त्रिबिध समाज पुर ग्राम नगर' इति। श्रोता तीन प्रकारके हैं। वह तीन कौन हैं इसमें मतभेद है—

१—इस ग्रन्थमें मुक्त, मुमुक्षु और विषयी तीन प्रकारके श्रोताओंका प्रमाण मिलता है; यथा—*'सुनहिं बिमुक्त बिरत अरु बिषई। लहहिं भगति गति संपति नई॥'* (७। १५)। (पाँ०, पं० रा० कु०, सन्त उन्मनी-टीका) तुलसीसतसईमें भी कहा है—*'मुक्त, मुमुक्षु बर बिषई श्रोता त्रिबिध प्रकार। ग्राम नगर पुर जुग सुत तुलसी कहहिं बिचार॥'* मुक्त मुमुक्षु और विषयी जीवोंके श्रोता होनेके प्रमाण और भी हैं—*'जीवनमुक्त महामुनि जेऊ। हरिगुन सुनहिं निरंतर तेऊ॥'* (उ० ५३), *'जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं। सुख संपति नाना बिधि पावहिं॥ सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं। अंतकाल रघुपति पुर जाहीं॥ ...... बिरति बिबेक भगति दृढ़ करनी।'* (७। १५), *'बिषइन्ह कहँ पुनि हरिगुनग्रामा। श्रवन सुखद अरु मन अभिरामा॥'* (७। ५३) यहाँ, 'बिरत'=मुमुक्षु=जो अभी साधन-अवस्थामें हैं। कथाका रस पूर्णरीतिसे जिनको नहीं मिला है।

२—श्रीबैजनाथजी तथा काष्ठजिह्वास्वामीजीके मतानुसार उत्तम, मध्यम और निकृष्ट—ये तीन प्रकारके श्रोता होते हैं।

बैजनाथजी लिखते हैं कि जो वक्ताके मुखपर दृष्टि, उसकी वाणीमें श्रवण, अर्थमें मन लगाये हुए बुद्धिसे विचारकर उसे चित्तमें धर लेता है वह उत्तम श्रोता है। जो सुनते तो हैं पर न विचारते हैं और न मनमें धरते हैं वे मध्यम हैं। जो सुनते हैं, पर जिनका मन नहीं लगता वे नीच श्रोता हैं। जैसे ग्राम आदिमें सरयूजीका माहात्म्य श्रीअयोध्याजी-जैसा नहीं है वैसे ही श्रीकीर्ति-सरयूका माहात्म्य जैसा सन्त-समाज—अवधमें है वैसा अन्यत्र नहीं है।

देवतीर्थ काष्ठजिह्वास्वामीजी कहते हैं कि 'उत्तम श्रोता सूपकी तरह सारग्राही हैं, मध्यम चलनीकी नाईं असारग्राही हैं और निकृष्ट खेतके पनारीके समान, गीली हो जाय पर जल न रखे, सुनते हैं पर धारण नहीं करते।' सूर्यप्रसाद मिश्रने इसीकी नकल कर दी है और कुछ विस्तार कर दिया है। वे लिखते हैं कि 'जो प्रेमपूर्वक सुनकर हृदयमें रखे हैं वे नगरके समान हैं। असारग्राही चलनीके समान हैं अर्थात् हरिकथाको अपनी बड़ाईके लिये सुनने जाते हैं, न विचारपूर्वक सुनें न धारण करें। इन्हें ग्रामसमान जानो। निकृष्ट 'पत्थरकी नालीके समान हैं, ये कथा सुनते हैं पर कथाका प्रभाव इनपर कुछ नहीं होता।' सुधाकर द्विवेदीजी कहते हैं कि 'प्रेमसे सुननेवाले', 'कुछ प्रश्न करनेवाले' और 'किसी कारणसे दुःखिया हो मनःशान्तिके लिये कुछ काल सुननेवाले'—ये तीन प्रकारके श्रोता हैं। इनका अन्तर्भाव ऊपर दिये हुए श्रोताके प्रकारोंमें हो जाता है।

इन दोनोंपर विचार करनेसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि—(क) 'मुक्त' और 'उत्तम' एक ही श्रेणीके हैं, ये कथा सादर सुनते हैं और निरन्तर धारण किये रहते हैं। जिज्ञासु रामतत्त्व जाननेके अभिप्रायसे सुनते हैं। इससे वे भी निरन्तर सुनते हैं। ये भी इसी श्रेणीमें आ सकते हैं। (ख) 'मुमुक्षु' और 'मध्यम' एक श्रेणीके हैं। इन्हींको अर्थार्थी भी कह सकते हैं। ये निरन्तर नहीं सुनते, क्योंकि *'रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं॥'* (उ० ५३) और, (ग) 'बिषयी' और 'निकृष्ट' एक श्रेणीके हैं। ये इधर सुने उधर भूले।

सुननेमें इनका मन नहीं लगता। सुनते समय सुख हुआ। फिर कुछ नहीं। आर्त श्रोता भी इसी श्रेणीके हैं, दु:ख पड़ता है तब कथामें आ जाते हैं, दु:ख दूर होनेपर कथाका नाम नहीं लेते।

३—त्रिपाठीजी लिखते हैं कि 'तटवासीको ही सदा अवगाहनका सौभाग्य प्राप्त है, अत: उनसे नित्यके श्रोताओंको उपमित किया है। कोई इस काव्यसे लौकिक शिक्षा ग्रहण करते हैं और कोई वैदिक शिक्षा ग्रहण करते हैं। दोनों प्रकारके श्रोता होनेसे उन्हें यथाक्रम दोनों किनारोंका निवासी कहा। तामस, राजस और सात्त्विक भेदसे भी श्रोतासमाजका भेद हुआ।

४—श्रीजानकीदासजी एवं करुणासिन्धुजीके मतानुसार 'आर्त्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु' ये तीन प्रकारके श्रोता हैं। वे लिखते हैं कि 'आर्त्त—सुत, वित, लोक, बड़ाई, शरीररक्षा इत्यादि अपने आर्त्तिनिवृत्तिके लिये कथा सुनते हैं। ये पुर हैं। क्योंकि दु:ख दूर होते ही कथा सुनना छोड़ देते हैं। लोक-आर्त्त लोकमतके और परलोक-आर्त्त वेदमतके तटपर बसे हैं। अर्थार्थी श्रोता सिद्धियोंकी या किसी अन्य अर्थकी प्राप्तिके लिये वेद, पुराण इत्यादि कथा सुनकर फिर मन्त्र-यन्त्र, देवाराधन आदि अन्य साधनोंमें लग जाते हैं। ये ग्राम हैं। लोकार्थी जो अन्न-वस्त्रादि लोक-पदार्थोंकी चाह करते हैं, वे लोकमतके किनारे और परलोक स्वर्गादिके अर्थी वेदमतके किनारे बसे हैं। और जिज्ञासु केवल ज्ञान, वैराग्य आदि ग्रहण करनेके लिये, वस्तु जाननेके लिये कथा सुनते हैं, जिससे मुक्ति मिले—ये नगर हैं। ये सब दिन सुनते हैं, जो लोक-चतुराई सीखनेके हेतु सुनते हैं। वे लोकमतके और जो रामतत्त्व जाननेके हेतु सुनते हैं, वे वेदमतके तटपर बसे हैं और 'जो केवल ज्ञानी भक्त हैं, भगवद्यश सुनते हैं, अपने स्वस्वरूपमें सदा आरूढ़ रहते हैं और श्रीरामचन्द्रजीके माधुर्य स्वरूप-नाम-धाम-लीलारूपी रसको पान करते हैं, ऐसे निष्काम सन्तोंकी समाज श्रीअयोध्याजी हैं।' (करु०)—ये ज्ञानी संत त्रिविध श्रोताओंमें नहीं हैं, इन्हें कोई चाह नहीं है। ये केवल रामयशकी चाह रखते और उसीको सुनते हैं। ये सर्वकाल यहाँ बने रहते हैं; कोटि विघ्न उपस्थित होनेपर भी वे कथा नहीं छोड़ते। ये सदा वेदतटपर 'सन्तसभारूपी अनुपम अयोध्याजीमें वास करते हैं।' (मा० प्र०)

श्रीकरुणासिंधुजी एवं बाबा जानकीदासजीके मतमें एक विशेषता यह है कि अन्य महात्माओंने जो त्रिविध श्रोता माने हैं उनमें फिर 'अवध' के लिये कोई अवशिष्ट नहीं रह जाते, क्योंकि उत्तम, मध्यम और निकृष्ट अथवा विमुक्त, मुमुक्षु और विषयी तीन ही श्रेणियाँ होती हैं, इनको त्रिविध माननेसे ये तीनों श्रेणियाँ ग्राम, पुर और नगरमें ही समाप्त हो जाती हैं, निष्काम भक्त भी उत्तम या विमुक्तमें आ जाते हैं। अन्य स्थलोंमें जहाँ त्रिविध श्रोताओंकी चर्चा आयी है वहाँ चौथेकी चर्चा नहीं है। चौथा भी उन्हींमें आ जाता है। चार प्रकारके भक्त आर्त्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानीमें-से प्रथम तीनको त्रिविध श्रोतामें लेनेसे चौथा ज्ञानी, जिसमें निष्कामका भी ग्रहण किया गया है, अवधके लिये शेष रह जाता है।

नोट—२ श्रोताओंको 'पुर, ग्राम, नगर' किस भावसे कहा है, अब इसपर विचार करना है। पुर, ग्राम और नगरकी व्याख्यामें भी मतभेद है।

१—प्राय: सब मतोंका सारांश यह है कि नगर बड़ा होता है, ग्राम छोटा और पुर जिसे पुरवा या खेरा भी कहते हैं बहुत छोटा होता है। पुरवा जल्द कट वा उजड़ जाता है, ग्राम उससे अधिक दृढ़ होता है और देरमें कटता वा उजड़ता है और नगर बहुत दृढ़ होता है। इसके उजड़नेका भय बहुत कम होता है। त्रिविध श्रोताओंमेंसे कौन पुर हैं; कौन ग्राम और कौन नगर? अब इसे देखें—

(क) मुक्त, मुमुक्षु और विषयीमेंसे जीवन्मुक्त नगर हैं, क्योंकि *'हरिगुन सुनहिं निरंतर तेऊ',* मुमुक्षु ग्राम हैं, क्योंकि ये कामनापूर्ण होनेपर फिर नहीं सुनते—*'रामचरित जे सुनत अघाहीं। रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं॥'* और विषयी पुर हैं जो भूले-भटके कभी पहुँच जाते हैं। अब 'आर्त्त, अर्थार्थी और जिज्ञासु' वा 'निकृष्ट, मध्यम और उत्तम श्रोताओंको लें। पुर नदीसे शीघ्र कटता है' इसी तरह आर्त्त अथवा निकृष्ट श्रोता बहुत शीघ्र कथासे हट जाते हैं। दु:ख दूर हुआ और कथा छूटी। अर्थार्थी वा मध्यम श्रोता कुछ अधिक दिन ठहरते हैं और जिज्ञासु अपने बसभर सदा सुनते हैं, क्योंकि वे वस्तु जाननेके लिये सुनते

हैं। ये नगर हैं, दैवयोगहीसे कटें तो कटें। (मा० प्र०) पाण्डेयजीके मतानुसार 'विषयी जिनकी बाहुल्यता है सो नगर हैं, उनसे कमतर मुमुक्षु पुर हैं और बहुत थोड़े जो मुक्त हैं सो ग्राम हैं। सन्तसभा सकल शुभ मङ्गल रामजन्मभूमि है।'

अथवा, (ख) यों कहें कि जैसे नदीके तटपर नगर कहीं-कहीं और वह भी बहुत कम होते हैं, ग्राम उससे अधिक और पुरवे बहुत होते हैं वैसे ही ***'श्रोता बक्ता ज्ञाननिधि कथा राम कै गूढ़।'*** ऐसे विमुक्त, जिज्ञासु या उत्तम श्रोता भी बहुत कम होते हैं, मुमुक्षु, अर्थार्थी या मध्यम श्रेणीके श्रोता इनसे अधिक होते हैं और विषयी, आर्त्त वा निकृष्ट श्रोता ही प्रायः बहुत होते हैं।

(ग) सन्त श्रीगुरुसहायलालजी लिखते हैं कि 'पुर, ग्राम और नगर' इस ग्रन्थभरमें पर्याय शब्द जान पड़ते हैं, परन्तु बस्तियोंके अन्त कहीं पुर, कहीं ग्राम, कहीं नगर पद पाया जाता है। जैसे—***'जन पुर नगर गाउँ गन खेरे', 'पुर न जाऊँ दसचारि बरीसा', 'पिता बचन मैं नगर न आवउँ'*** 'शृङ्गवेरपुर' एवं ***'ग्राम बास नहिं उचित......', 'पहुँचे दूत रामपुर पावन',*** एवं नन्दिग्राम, रामनगर इत्यादि। सभी कथा श्रवण करनेवाले श्रोता ही हैं पर कोई विषयी, कोई मुमुक्षु, कोई मुक्त कहलाते हैं। इसीसे कहा कि तीनों प्रकारके जो श्रोतासमाज हैं वे ही पुर, ग्राम, नगरसंज्ञक आबादी हैं। (मा० त० वि०)

(घ) सूर्यप्रसादमिश्रजीका मत है कि ***'पुर'*** राजधानीका नाम है। प्रमाणमें उन्होंने श्रीधरस्वामीकी भा० स्क०१ अ० ६ श्लोक ११ की व्याख्या दी है—***'तत्र पुराणि राज्यधान्यः।'*** ग्रामलक्षण जो उन्होंने दिया है वह मानसके अनुकूल नहीं है, इससे उसे यहाँ नहीं उद्धृत करता। इस मतके अनुसार उत्तम पुर हैं, मध्यम नगर और निकृष्ट ग्राम हैं।

मयङ्ककार कहते हैं कि 'पहिले मानसका समाज कहा है (***संत सभा चहुँ दिसि अँबराई।***) कि चारों ओर सन्तोंका समाज जो है वही मानो अँबराई है और वाटिका, बाग, वन इत्यादि जो कहा है वही समाज जो मानसमें रहनेपर था प्रकट होनेपर वही सरयूके किनारे सुशोभित हुआ। सन्तसभारूपी अवध वाटिका, बाग, वन और पुरादिक किनारे-किनारे सुशोभित हुए।'

(ङ) सुधाकरद्विवेदीजी—'इस नदीके दोनों किनारोंपर किसी कारणसे सुननेवाले पुर, भगवत्प्रीति बढ़नेके लिये प्रश्न करनेवाले गाँव और अचल प्रेमसे सुननेवाले शहर हैं। सब सुमङ्गलकी मूल संतसभा अनुपम अवध है जहाँ सदा यह नदी अमृतमय धारासे बहा करती है।'

* 'संत सभा अनुपम अवध' इति *

टिप्पणी १—'मुक्त, मुमुक्षु, विषयी—इन तीनोंसे पृथक् सन्त (सन्तसभा) हैं। [ये निष्काम रामानन्य अनुरागी हैं—***'सकल-कामना-हीन जे रामभगति रस लीन।'*** इन्हींके लिये कहा है कि ***'एहि सम प्रिय तिन्ह के कछु नाहीं॥'*** (उ० १३०) ***'संत-समाज-पयोधि रमा सी'*** और ***'संत-सुमति-तिय सुभग सिंगारू॥'*** (१। ३१) इत्यादि। ***'आसा बसन ब्यसन यह तिन्हहीं। रघुपतिचरित होइ तहँ सुनहीं।'*** (७। ३२) ***'सुनि गुनगान समाधि बिसारी। सादर सुनहिं परम अधिकारी॥ जीवनमुक्त ब्रह्मपर चरित सुनहिं तजि ध्यान।'*** (७। ४२)] इसी तरह 'पुर, ग्राम और नगर' से पृथक् अवध है। अवधके निमित्त सरयूजी आयीं, इसीसे अवध पहुँचनेपर फिर 'ग्राम, पुर, नगर' का मिलना नहीं कहा है।

खर्रा—१ 'मुक्त वेदमतकूलमें टिके हैं, विषयी लोकमतकूलमें टिके हैं और मुमुक्षु आधे-आधे दोनों ओर हैं, इसीसे बराबर हैं। इनसे पृथक् चौथी कोटिमें सन्त हैं जो न मुक्त हैं, न मुमुक्षु और न विषयी, यथा—***'अर्थ न धर्म न काम रुचि गति न चहौं निरबान।'*** —ये ही अवध हैं। ग्राम, पुर और नगरसे भिन्न साकेत रामरूप है। २ ***'सकल सुमंगलमूल'*** सबको सुमङ्गलमूल है अर्थात् मुक्तको मुक्तिरूप है, मुमुक्षुको साधनरूप और बिषयीको आनन्दभोगरूप है।'

(नोट—पं० रामकुमारजी लिखते हैं कि यहाँ ***'सकल सुमंगल मूल'*** कहकर श्रीअवध-सरयूमें समता दिखायी। यथा—***'अवध सकल सुमंगल मूल'*** तथा ***'सरजू नाम सुमंगल मूला।'*** अवध-वाससे जीव

श्रीरघुनाथजीको प्रिय हो जाते हैं; यथा—*'अति प्रिय मोहि यहाँ के बासी'* और सरयू-स्नानसे 'सामीप्य मुक्ति' मिलती है, यथा—*'रामधामदा पुरी सुहावनि'* तथा*'जा मज्जन तें बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं बासा॥'*)

टिप्पणी—२ सन्तसमाज और श्रीअयोध्याजीमें समता यह है कि—(क) दोनों अनुपम हैं। शारदा-शेषादि इनकी महिमा नहीं कह सकते यथा—*'बिधि हरि हर कबि कोबिद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी॥'* (१। ३। ११),*'कहि न सकत सारद श्रुति तेते।'* (३। ४६। ८) तथा—*'जद्यपि सब बैकुंठ बखाना। ...... अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ।'* (७। ४), *'रमानाथ जहँ राजा सो पुर बरनि कि जाइ।'* (७। २९) (ख) दोनों 'सुमङ्गलमूल' हैं। यथा—*'मुद मंगलमय संतसमाजू।'* (१। २), *'सत्संगति मुदमंगल मूला।'* (१। ३) तथा *'अवध सुमंगलमूल'* (यहाँ), *'सकल सिद्धिप्रद मंगलखानी।'* (१। ३५) (ग) दोनों ही श्रीसीतारामजीके विहार-स्थल हैं। यथा—*'संतसमाज पयोधि रमा सी'* और *'रामकथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु। तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु॥'* (३१) (देखिये १। ३१ (१०) और दोहा ३१) श्रीअवध तो लीलास्थल प्रसिद्ध ही है, यह जन्मभूमि ही है। सन्तसमाजमें कथारूपसे विहार होता है। (घ) वह *'कीर्त्ति सरयू'* सन्तसमाजके लिये रची गयी यथा—*'होहु प्रसन्न देहु बरदानू। साधु समाज भनित सनमानू॥'* (१। १४। ७) वैसे ही वसिष्ठजी सरयूजीको अयोध्याजीहीके लिये लाये। (मा० प्र०) (ङ) रामकथाका महत्त्व जैसा सन्तसमाजमें है वैसा अन्यत्र नहीं और सरयूजीका माहात्म्य जैसा अवधमें है वैसा और कहीं नहीं*। पुनः जैसे सन्तसभाकी शोभा रामकथासे और कथाकी सन्तसमाजसे है, वैसे ही श्रीअवध-सरयूकी शोभा एक-दूसरेसे है। 'साधु इस (कथा) समाजमें शोभा देते हैं और जैसी शोभा एवं महत्त्व इसका साधुसमाजमें है वैसी अन्यत्र नहीं तथा इसीसे साधुसमाज भी शोभित है; ये दोनों (रामकथा और साधुसमाज) ऐसे परस्पर मिले हुए हैं।' (मा० प्र०)

रामभगति सुरसरितहि जाई। मिली सुकीरति सरजु सुहाई॥ १॥

अर्थ—सुकीर्तिरूपी सुन्दर सरयू राम-भक्ति-गङ्गामें जाकर मिली॥ १॥

नोट—१ 'सुकीर्तिरूपिणी सरयू रामभक्ति-सुरसरिमें जाकर मिली, इस कथनका तात्पर्य यह है कि सुकीर्तिके आनेसे रामभक्तिकी प्राप्ति है। कीर्ति सुन्दर है। उस सुकीर्तिको सरयू कहा, अतएव सरयूको सुहाई कहा।' (पं० रामकुमारजी)

(२) श्रीजानकीदासजी लिखते हैं कि 'यहाँ अब यह बात समझनेकी अपेक्षा हुई कि 'रामयशजलका क्या स्वरूप है और उसी यशकी कीर्ति-नदी चली तो इस नदीका क्या स्वरूप है?' कैलासप्रकरणके चार दोहोंमें रामयशका स्वरूप कहा गया है। अर्थात् *'सगुनहि अगुनहि नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध बेदा॥'* (१। ११६। १) से *'सुनि सिव के भ्रम भंजन बचना। मिटि गइ सब कुतरक कै रचना॥'* (११९। ७) तक। जो कुछ सरके प्रकरणमें कह आये वह सब इसीके भीतर जानो। [नोट—किसीने यों कहा है कि यह 'सुकीर्ति-सरयू शिवजीके मानसमें स्थित थी; यथा—*'मानस मूल मिली सुरसरिहीं,'* जो पार्वतीजीके प्रश्नसे उमगी और निकल पड़ी। शिवजी जो प्रसङ्ग ले चले यही सुकीर्ति-सरयूका मानससे चलना है।'—दोनों पवित्र नदियोंका सङ्गम दूना पवित्र हुआ।]—यह रामयश उमगा और कीर्तिरूपी प्रवाह चला। यह धारा *'सुनु गिरिजा हरि चरित सुहाए। बिपुल बिसद निगमागम गाए॥'* (१२१। १) से चली और मनुशतरूपाजीकी अनन्य रामभक्तिरूपी गङ्गामें जा मिली।

जैसे श्रीसरयूजी थोड़ी दूर चलकर तब छपरा (जिला सारन) के पास गङ्गामें मिलीं, वैसे ही श्रीरामचन्द्रजीकी कीर्तिका वर्णन शिवजीने पार्वतीजीके प्रश्नके उत्तरसे उठाया, बीचमें क्षीरशायी, वैकुण्ठभगवान् इत्यादिकी रामावतारकी कथाएँ कहते हुए पूर्णब्रह्म श्रीसाकेतविहारीके अवतारकी कथा प्रारम्भ की। यथा—*'अपर हेतु सुनु सैलकुमारी। कहउँ बिचित्र कथा बिस्तारी॥ जेहि कारन अज अगुन अनूपा। ब्रह्म भयउ कोसलपुर भूपा॥'*

* श्रीमहाराज हरिहरप्रसादजी लिखते हैं कि 'इसका भाव यह है कि सरयूजी और जगह अकेली हो जाती हैं और यहाँ अवधपुरीमें पुरीसहित दूनी रहती हैं' (रा० प्र०)।

(१। १४१) इस कथामें अनन्य रामभक्तिका वर्णन मनुशतरूपाजीके तपमें दिखाया गया है; यथा—'*बिधि-हरिहर तप देखि अपारा। मनु समीप आए बहु बारा॥ माँगहु बर बहु भाँति लुभाये। परम धीर नहिं चलहिं चलाये॥*' (१। १४४। २-३) ब्रह्मा, विष्णु, महेश जगत्‌के उत्पन्न, पालन, संहारकर्त्ताओंकी ओर ताका भी नहीं—ऐसे अनन्य रामभक्त! इन्होंने सब देवताओंकी भक्तिका निराकरण करके रामभक्तिहीको दृढ़ माना*।

यहाँ राम-भक्ति-गङ्गामें कीर्ति-सरयू जाकर मिलीं इसीसे '*जाई*' शब्द यहाँ दिया। अभिप्रायदीपककार लिखते हैं कि '*मन मानस ते चलि धसी लसी जाह्नवी बीच। बसी राम उर उदधि महँ लसी उपासक बीच॥*' (४८) जिसका भाव यह है कि जैसे मानससरसे श्रीसरयूजी प्रकट होकर गङ्गाजीमें सुशोभित हुईं वैसे ही गोस्वामीजीके मन-मानसमें जो गुरुदत्त शङ्कररचित मानस था वही काव्यरूप होकर निकला। अब जो कोई भी उसका आश्रय लेंगे वे राम-भक्ति प्राप्त करेंगे।—यही कविता-सरयूका राम-भक्ति-गङ्गामें मिलना है। 'जैसे गङ्गाजी सरयूजीको अपने हृदयमें लेकर सहस्रों धारासमेत समुद्रमें मिल गयीं, उसी प्रकार भक्तिगङ्गा अनेकों उपासकोंके अनुभवसे अनेकों रूप होकर एक रामरूपहीमें अचल हो जाती है।'

त्रिपाठीजी लिखते हैं कि 'इससे ज्ञात होता है कि गङ्गाकी स्थिति सरयूसे पहलेकी है'—(परन्तु ऐतिहासिक ग्रन्थों, पुराणों, रामायणोंसे इस मतका विरोध होता है। गङ्गाजी बहुत पीछे पृथ्वीपर आयी हैं)। सरयूजी पुर, ग्राम, नगरोंसे दोनों ओर संयुक्त होती हुई अवध पहुँचीं और वहाँसे श्रीगङ्गाजीमें जा मिलीं और सरयू नाम छोड़कर गङ्गा ही हो गयीं। इसी भाँति कविता-सरिता भी अनेक तामस, राजस और सात्त्विक श्रोतृसमाजोंमेंसे होती हुई सन्तसभामें जा पहुँची और वहाँ जाकर भक्तिसे मिल गयी। अर्थात् यह कविता-सरिता भक्तिकी प्रापिका है।

नोट—२ रामभक्तिको गङ्गाजीकी उपमा और भी जहाँ-तहाँ दी गयी है; यथा—'*राम भक्ति जहँ सुरसरि धारा।*' दोनोंकी समता दोहा २(८—११) में देखिये। वहीं भक्तिकी उपमा गङ्गासे देनेके कारण देखिये।

☞ स्मरण रहे कि मानस-प्रकरण दोहा ३५ से प्रारम्भ होकर दोहा ४३ तक गया है। इसमें समस्त रामचरितमानसका रूपक है। इसीसे प्रत्येक दोहे-चौपाईमें इस ग्रन्थका प्रसङ्ग दिया गया है।

'सुरसरितहिं जाई।' इति।

'यहाँपर ग्रन्थान्तरोंमें मतभेद है। श्रीसरयूजीका आविर्भाव सृष्टिके आदिमें हुआ। इक्ष्वाकु महाराजके समयमें श्रीअवधके लिये श्रीसरयूजीका आना पाया जाता है और गङ्गाजीको इनके बहुत पीछे उन्नीसवीं पीढ़ीमें भगीरथजी लाये तो सरयूका गङ्गामें मिलना कैसे कहा गया? उचित तो यह था कि गङ्गाका सरयूजीमें जा मिलना कहा जाता पर ऐसा कहा नहीं गया?'—इस विषयपर बहुत महानुभाव जुट पड़े हैं।

सन्त-उन्मनी-टीकाकार तथा पं० शिवलालजी कहते हैं कि 'यह कथा भक्ति-सिद्धान्त-सम्मिलित है, इससे भक्ति प्राप्त होती है जिससे फिर रामस्वरूपकी प्राप्ति होती है। सुकीर्तिसरयूका राम-भक्ति-गङ्गामें मिलना कहनेमें केवल इतना ही तात्पर्य है। आद्यन्त इतना ही दिखलाना है कि भक्ति हो तो ऐसी हो जैसी मनुशतरूपाजीकी; यथा—'*माँगहु बर बहु भाँति लुभाए। परम धीर नहिं चलहिं चलाए॥*' या जैसी भरतजीमें थी कि '*तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा॥*' इत्यादि, वा, जैसी भुशुण्डिजीमें थी कि '*भक्तिपक्ष हठ नहिं सठताई।*'

सूर्यप्रसादमिश्रजी लिखते हैं कि ग्रन्थकारका यह आशय नहीं है कि सरयू गङ्गाजीमें मिलीं या गङ्गाजी सरयूजीमें मिलीं, उनको तो यही अभिप्रेत है कि रामभक्ति रामकीर्तिसे भी बढ़कर है और रामजीका प्रादुर्भाव भी महाराज भगीरथजीके बहुत बादका है। ग्रन्थकार भी रामजीहीके उपासक हैं, जो बातें उनको वर्तमानमें दिखायी पड़ीं उन्हींको लिखा है।

---

*सू० प्र० मिश्रजी लिखते हैं कि 'और भी भक्तिहीके लिये रामजीका प्रादुर्भाव हुआ, सब काण्डोंमें भक्तिरूप गङ्गा वर्तमान हैं— अयोध्यामें भरतकी, अरण्यमें सुतीक्ष्णकी, किष्किन्धामें सुग्रीव-हनुमान्‌की, सुन्दरमें विभीषणकी, लङ्कामें रावणादिका हरिमें लीन होना और उत्तरमें तो सब भक्ति-ही-भक्ति है।' (यह भाव बैजनाथजीका है।)

नोट—३ यहाँ '*सुरसरितहिं*' शब्दसे स्पष्ट है कि गङ्गाजीहीमें सरयूजीका मिलना कहते हैं न कि गङ्गाजीका सरयूजीमें। वर्तमान कालमें सरयूजीहीका गङ्गाजीमें मिलना कहा और देखा जाता है। इसीके अनुसार ग्रन्थकारने लिखा है। अथवा, अन्य कारणोंसे जो आगे दिये जाते हैं वा कल्पान्तर भेदसे।—

(१) कहा जाता है कि गङ्गाजीने ब्रह्माजीसे वर माँग लिया था कि कोई भी नदी क्यों न हो जिससे हमारा सङ्गम हो वह हमारे सङ्गमसे आगे हमारे ही नामसे प्रसिद्ध हो इस कारणसे भी सरयूमें सङ्गम होनेपर सरयूका नाम गङ्गा ही ख्यात हुआ। इसका प्रमाण आनन्दरामायण, यात्राकाण्ड सर्ग ४ के श्लोक '**वरदानात्कलौ शम्भोर्गङ्गा ख्यातिं गमिष्यति। अग्रे सागरपर्यन्तमेनां गङ्गां वदन्ति हि॥ तव पादसमुद्भूता या विश्वं पाति जाह्नवी। इयं तु नेत्रसम्भूता किमद्याग्रे वदाम्यहम्॥ कोटिवर्षसहस्रैश्च कोटिवर्षशतैरपि। महिमा सरयूनद्याः कोऽपि वक्तुं न वै क्षमः॥**' (९१—९३) में मिलता है। इस वरदानका कारण यह कहा जाता है कि सरयू-सागर-सङ्गमसे कुछ दूरपर कपिलजीका आश्रम था। सरयूजीसे कहा गया कि आप अपनी धारा वहाँ ले जाकर सगरपुत्रोंको मुक्त करें, पर उन्होंने साफ जवाब दे दिया कि हमारा आविर्भाव अयोध्याजीके निमित्त था, हम अपनी मर्यादा-उल्लङ्घन न करेंगी। गङ्गाजीने इस शर्तपर कि सरयू-गङ्गा-सङ्गमसे हमारा ही नाम पड़े तो हम सहस्रधारी होकर सगरपुत्रोंको कृतार्थ करें। अतएव यह वर उनको मिला कि कलियुगमें सङ्गमसे तुम्हारा ही नाम ख्यात होगा। सरयूजीने इसे स्वीकार कर लिया।

(२) अथवा, गुरु-आज्ञासे, भगीरथजी गङ्गाजीको लाये, सगरके पुत्रोंका उससे उद्धार हुआ। इससे गङ्गाका माहात्म्य लोकमें प्रसिद्ध हुआ तथा कालान्तरके कारणसे सरयूका नाम सङ्गमसे गङ्गा ही प्रसिद्ध हो गया।

(३) श्रीसरयूजी गुरु वसिष्ठकी कन्या हैं अर्थात् वसिष्ठजी सरयूजीको अयोध्याजीमें लाये और गङ्गाजी राजाकी कन्या हैं। अर्थात् राजा भगीरथ गङ्गाजीको पृथ्वीपर लाये। जैसे गुरुकी कन्याको देखकर राजकन्या उसे आदरपूर्वक गोदमें ले लेती है इसी भाँति दोनोंका मिलना जानिये। मानो सरयूजीको गङ्गाजीने गोदमें ले लिया।

(४) सरयूजी नेत्रजा हैं अर्थात् भगवान्के नेत्रसे निकली हैं और गङ्गाजी भगवान्के चरणसे निकली हैं। जो जल नेत्रसे चलेगा वह चरणकी ओर जावेगा। इसीसे सरयूजीका गङ्गामें मिलकर फिर 'गङ्गा' ही नामसे बहना कहा।

(५) मा० त० वि० कार लिखते हैं कि 'शतकोटिरामायणमें वैवस्वत मनुका वचन है कि मुद्गल ऋषिके लिये बद्रीक्षेत्रमें श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे लक्ष्मणजी बाणद्वारा सरयूजीको सुरसरिमें ले आये।' आनन्दरामायण यात्राकाण्डमें भी यह कथा है श्लोक ९५ से ९८ तक।

नोट—४ स्कन्दपुराण रेवाखण्डमें लिखा है कि एक बार मनु महाराजने त्रिपुरी तीर्थमें जाकर नर्मदातटपर यज्ञ किया। यज्ञकी समाप्तिपर नर्मदाकी स्तुति की और उनके प्रसन्न होनेपर वर माँगा कि देवलोकमें जो गङ्गा आदि अनेक नदियाँ हैं वे अयोध्या प्रदेशमें प्रकट हो जायँ। नर्मदाने वर दिया कि त्रेताके प्रथम भागमें भगीरथ गङ्गाको इस लोकमें लावेंगे। द्वितीय भागमें यमुना, सरस्वती, सरयू तथा गण्डकी आदि नदियाँ प्रकट होंगी—इस कथाके अनुसार पहले गङ्गा आयीं तब सरयू—इससे शङ्का नहीं रह जाती।

सानुज राम समर जसु पावन। मिलेउ महानदु सोन सुहावन॥ २॥

शब्दार्थ—**महानदु**= बड़ी नदी। अथवा, पुराणानुसार एक नदका नाम है। पं० शिवलाल पाठकजी महानदसे गण्डकी नदीका अर्थ करते हैं।

अर्थ—भाई लक्ष्मणसहित श्रीरामचन्द्रजीका पवित्र यश जो युद्धमें हुआ वही मानो सुन्दर महानद सोन उसमें (गङ्गामें) मिला है॥ २॥

'सानुज राम समर'

पं० रामकुमारजी लिखते हैं कि '*सानुज राम समर*' मारीच-सुबाहुका हुआ और कोई समर सानुज नहीं हुआ। विराधको श्रीरामजीने अकेले मारा; यथा—'*मिला असुर बिराध मगु जाता। आवत ही रघुबीर निपाता॥*'

खर-दूषण, कबन्ध और बालिको भी श्रीरामजीने अकेले मारा। लङ्कामें जो समर हुआ *'केवल सानुज राम'* समर नहीं है। अर्थात् वहाँ वानर-रीछ भी समरमें इनके साथ रहे, ऐसा कोई समर वहाँ नहीं हुआ जिसमें केवल श्रीराम-लक्ष्मण ही हों। सिद्धाश्रममें ही श्रीराम-लक्ष्मण दोनों भाइयोंने साथ ही यज्ञकी रक्षामें निशाचरोंका संहार किया था; यथा—*'रामु लखनु दोउ बंधुबर रूप सील बल धाम। मख राखेउ सबु साखि जगु जिते असुर संग्राम॥'* (१। २१६) समरको महानद कहकर जनाया कि महासंग्राम हुआ।

नोट —१ *'सानुज'* से यहाँ केवल श्रीलक्ष्मणजीका ग्रहण होगा, क्योंकि समरमें और कोई भाई साथ न थे।

नोट—२ मानसमयङ्ककार कहते हैं कि 'लक्ष्मणजीका वन-चरित सोन है और श्रीरामचन्द्रजीका यश महानद (गण्डकी) है।' वे *'सानुज राम समर'* का अर्थ 'रामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी दोनोंका एक साथ जहाँ समरयश है' ऐसा नहीं करते। इसका कारण वे यह कहते हैं कि 'यहाँ मूलमें उपमेय दो यश कहा—एक लक्ष्मणका, दूसरा रामका और उपमान एक सोन कहनेसे साहित्यानुसार विरोध पड़ता है। पुनः सोन और महानद आमने-सामनेसे आकर गङ्गामें मिले हैं।' मा० त० वि० कार और शुकदेवलालजीका भी यही मत है।

नोट—३ *'समर जसु पावन'* इति। 'समर-यश' और फिर 'पावन' यह कैसे? यह प्रश्न उठाकर उसका उत्तर लोगोंने इस प्रकार दिया है कि—(क) 'पावन' कहनेका भाव यह है कि छल करके नहीं मारा, संग्राममें मारा, (पं० रा० कु०) इस समरमें कहनेके लिये भी कोई स्वार्थ न था। (ख) निशाचरोंके वधसे अधर्म होना बन्द हो गया, धर्मका प्रचार हुआ। भक्तों, मुनियों, सन्तों, देवताओं एवं समस्त लोकोंको इस समरसे सुख प्राप्त हुआ। सन्त, भक्त, ऋषि, मुनि निष्कण्टक हो भजनमें लगे, देवता बन्दीखानेसे छूटे और फिरसे सुबस बसे, इत्यादि कारणोंसे समर-यशको पावन कहा। (मा० प्र०) (ग) निशाचरोंकी अधम देह छूटकर उनकी मुक्ति हुई, इसलिये पावन कहा। यथा—*'निर्बानदायक क्रोध जाकर भगति अबसहिं बस करी॥'* (३। २६), *'एकहि बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निजपद दीन्हा॥'* (बा० २०९) (घ) रामयश तो सभी पावन है। समरयशमें जीवहिंसा होनेके कारण सन्देह किया जाता है कि वह पावन कैसे? पर यह यश तो और भी पावन समझना चाहिये; क्योंकि इसीसे तो सर्व धर्मोंका निर्वाह और प्रतिपालन हुआ। ऋषि स्वच्छन्द होकर यज्ञादि कर सके, नहीं तो मारीचादिके भयसे विश्वामित्र ऐसे महामुनि भी यज्ञ न कर पाते थे। (मा० प्र०)

नोट—४ *'मिलेउ महानद सोन'''* इति (क) सोन एक प्रसिद्ध महानद है जो मध्यप्रदेशके अमरकण्टककी अधित्यका भूमिसे, नर्मदाके उद्गमस्थानसे दो-ढाई मील पूर्वसे निकला है और उत्तरमें मध्यप्रदेश तथा बुन्देलखण्डमें होता हुआ पूर्वकी ओर प्रवाहित हुआ है और बिहारमें दानापुरसे दस मील उत्तर गङ्गामें मिला है। बिहारमें इस नदका पाट कोई ढाई-तीन मील लम्बा है। वर्षाऋतुमें समुद्र-सा जान पड़ता है। इसमें कई शाखा नदियाँ मिलती हैं जिनमें कोइल प्रधान है। गर्मीमें इस नदमें पानी बहुत कम हो जाता है। इसका नाम 'मागध' भी हो गया है।

गण्डकी नदी नैपालमें हिमालयसे निकलकर बहुत-सी छोटी नदियोंको लेती हुई पटनेके पास गङ्गामें गिरती है। इसमें काले रङ्गके गोल-गोल पत्थर निकलते हैं, जो शालग्राम कहलाते हैं।

(ख) *'महानद सोन'*— वीरताके पावन यशको, अति उदात्त होनेसे, नदी न कहकर महानद शोणसे उपमित करते हैं। शोण महानद दक्षिण ऋक्षवान्‌से आकर गङ्गाजीसे मिला है, इसी भाँति यह पावन समरयश भी दक्षिण सिद्धाश्रमसे आकर रामभक्तिके अन्तर्गत हो गया। अतः दोनों भाइयोंके पावन यशको महानद शोण कहा। (वि० त्रि०)

(ग) जब सरयूकाव्य रामसुयशसे भरा हुआ आकर भक्ति भागीरथीसे मिल ही चुका था, फिर समर-यशको उससे अत्यन्त पृथक् करके शोणसे उपमित करनेका कारण यह है कि इसमें वैरभावसे भजन

करनेवालोंकी (निशाचरोंकी) कथा है। इसका भी मेल रामभक्तिसे हुआ, पर यह उस रामयशसे एकदम पृथक् है, जिससे प्रेमसे भजन करनेवालोंको आनन्द-ही-आनन्द है और वैरसे भजन करनेवालोंको यावज्जीवन प्रेमका आनन्द नहीं होता बल्कि द्वेषसे जला करते हैं, अतः दोनोंको अलग-अलग कहना पड़ा। (वि० त्रि०) वैरभावसे भजनेवालोंका वध ही किया जाता है।

(घ) सुधाकरद्विवेदीजी इस प्रकार अर्थ करते हैं कि 'उसमें लक्ष्मणरामका रणयश कुछ क्रोध होनेसे लाल वर्णका शोण महानद मिल जानेसे महापवित्र स्थान हरिहरक्षेत्रसे भी अधिक पुनीत हो गया। युद्धमें रक्तकी धारा चलती है, संग्राम-सरिताका रक्त नदीसे रूपक दिया ही जाता है।

(ङ) मा० प्र०—सोनकी धारा बड़ी तीव्र है, भयावनी लगती है, वैसे ही समर बड़ा भयावन है। जैसे सोन नदीसे मगह-सी अपवित्र भूमि पवित्र हो गयी वैसे ही यद्यपि समर देखनेमें बड़ा भयावन है तथापि इस समरमें राक्षसोंकी मुक्ति हुई। इस तरह शोणभद्र और समरयशकी एकता हुई।

☞ ऐसा जान पड़ता है कि मानस-परिचारिकाकार तथा पं० रामकुमारजी महानदको 'सोन' का विशेषण मानते हैं। इसमें मानसमयङ्ककारकी शङ्काकी जगह भी नहीं रहती। इसीसे आगे भी सरयू और शोणभद्रके बीचमें गङ्गाका शोभित होना कहा। दूसरे, *'सानुज राम'* कथनसे अनुजका यश पृथक् नहीं कहा गया। तीसरे, महानद और सोनभद्रसे यदि दो नद अभिप्रेत होते तो *'मिलेउ'* एकवचनसूचक क्रिया न देते। चौथे, परम्परागतके पढ़े हुए मा० मा० कार एवं श्रीनंगे परमहंसजीने भी महानदको शोणका विशेषण माना है। पाँचवें, महानद पुँल्लिङ्ग है, गण्डकी स्त्रीलिङ्ग है। गण्डकी अभिप्रेत होता तो 'महानदि' लिखते अथवा 'गण्डकी' प्रसिद्ध शब्द ही रख देते। 'महानद' की जगह 'गण्डकी' बैठ भी जाता है। स्मरण रहे कि नद (पुरुष) सात माने गये हैं, शेष सब स्त्रीलिङ्ग माने गये हैं। यथा—'**शोणसिन्धुहिरण्याख्याः कोकलोहितघर्घराः। शतद्रुश्च नदाः सप्त पावनाः परिकीर्तिताः॥**' (देवलवाक्य, निर्णयसिन्धु परिच्छेद २ श्रावण प्रकरण) शोणभद्र, सिन्धु, ब्रह्मपुत्र, सतलज, झेलम, घाघरा और व्यास ये सात नद हैं। पुनश्च यथा—'**गण्डकः पुंसि खड्गे स्यात् संख्याविद्याप्रभेदयोः। अवच्छेदेऽन्तराये च गण्डकी सरिदन्तरे।**' **इति विश्वमेदिन्योः** (अमरकोश २। ५। ४)।

जुग बिच भगति देवधुनि-धारा। सोहति सहित सुबिरति बिचारा॥ ३॥

शब्दार्थ—**देवधुनि**—देव-धुनि (=नदी। यह संस्कृत शब्द है)=देवनदी=गङ्गाजी।

अर्थ—(शोण और सरयू) दोनोंके बीचमें गङ्गाजीकी धारा कैसी सुहावनी लगती है, जैसे ज्ञान और सुष्ठु वैराग्यके सहित भक्ति (शोभित हो)॥ ३॥

टिप्पणी—१ 'यहाँ विचार ज्ञानका वाचक है। सरयू विरति है; सोनभद्र ज्ञान है, गङ्गा भक्ति है। जैसे सरयू और सोनभद्रके बीचमें गङ्गा, वैसे ही ज्ञान और वैराग्यके बीचमें भक्ति है। ऐसा कहनेका भाव यह है कि कीर्त्तिके सुननेसे वैराग्य होता है, समरयश सुननेसे ज्ञान होता है; अतएव लङ्काकाण्ड 'विज्ञानसम्पादिनी नाम सोपान है।' ज्ञान-वैराग्यसे भक्तिकी शोभा है। इसीसे तीनोंको जहाँ-तहाँ साथ कहा है। यथा—*'कहहिं भगति भगवंत कै संजुत ज्ञान बिराग।'* (१। ४४), *'श्रुति संमत हरिभगति पथ संजुत बिरति बिबेक।'* (७। १००)

नोट—१ त्रिपाठीजी अर्थ करते हैं—'दोनोंके बीचमें गङ्गाजीकी धारा सुविरति और विचारके साथ शोभित है।' वे लिखते हैं कि—(क) यहाँ कार्यसे कारणका ग्रहण किया। *'बिरति'* से कर्मकाण्ड कहा, यथा—*'धर्म ते बिरति'* और 'बिचार' से ब्रह्मविचारका ग्रहण किया। सन्तसमाजप्रयागमें जाकर भक्ति, कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड (ब्रह्मविचार) से योग होता है। ब्रह्मविचारका सरस्वतीकी भाँति अन्तःप्रवाह रहता है और कर्म तथा भक्ति प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होते हैं। प्रयागसे होती हुई गङ्गाजी जब बहुत आगे बढ़ जाती हैं तब जाकर सरयूका सङ्गम होता है। अतः यहाँ भक्ति गङ्गाका विरति यमुना और ब्रह्मविचार सरस्वतीके साथ वर्णन करना पूर्णतः उपयुक्त है।

(ख)—*'जुग बिच'* इति। एक ओर तो उत्तरसे दक्षिण बहती हुई सरयू आयीं, दूसरी ओर दक्षिणसे उत्तर बहता हुआ महानद शोण आया। बीचमें यमुना और सरस्वतीसे मिली हुई गङ्गाजीके पश्चिमसे पूर्वके प्रवाहकी अद्भुत शोभा है। इसी भाँति एक ओरसे माधुर्यगुणयुक्त रामसुयश बह रहा है, दूसरी ओरसे ऐश्वर्यगुणयुक्त समरयशका प्रवाह आ रहा है, बीचमें वैराग्य और ब्रह्मविचारके साथ भक्तिकी अविच्छिन्न धाराकी अद्भुत शोभा है।

नोट—२ 'यहाँ भक्तिमें विरति और विचार क्या है?' यह प्रश्न उठाकर उसका उत्तर श्रीजानकीदासजी यह देते हैं कि श्रीमनुजीने पहिले विचार किया कि *'होइ न बिषय बिराग भवन बसत भा चौथ पन। हृदय बहुत दुख लाग जनम गयउ हरिभगति बिनु॥'* (बा० १४२)—यह जो हृदयमें सोचा यही 'विचार' है और तत्पश्चात् जो *'बरबस राज सुतहि तब दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा॥'*—यह वैराग्य है। पहिले विचार किया तब वैराग्य हुआ तब भक्ति। (यही मत श्रीबैजनाथजीका है) बाबा जानकीदासजीके मतानुसार यह अर्थ हुआ कि 'जैसे सरयू और शोणके बीचमें गङ्गा शोभित हैं वैसे ही सुन्दर वैराग्य और विचारके सहित भक्ति शोभित है। कीर्त्तिरूपा कविता-सरयू और समरयशरूप शोणके बीचमें भक्तिगङ्गा।'

नोट—३ करुणासिन्धुजी *'सुबिरति बिचारा'* का अर्थ इस प्रकार करते हैं कि—'**सुबिरति**=सुष्ठु वैराग्य। (सु) **बिचार**=सुष्ठु विचार। असत्का त्याग सुष्ठु वैराग्य है और सत्का ग्रहण सुष्ठु विचार है। बिना इनके भक्तिकी शोभा नहीं।'

नोट—४ मा० म० *'जुग'* से महानद गण्डकी और शोणका अर्थ करते हैं। अर्थात् इन दोनोंके मध्य सुविरति और विचारसहित भक्ति-गङ्गा शोभित हैं। शोण दक्षिणसे आकर शेरपुरके पास मिला और महानद उत्तरसे आकर रामचौराके बायें गङ्गामें मिला।—परम्पराके पढ़े हुए मा० मा० कारने इस अर्थको 'अथवा' में रखा और मा० म० के भावको इस तरह निर्वाह करनेकी चेष्टा की है कि 'काव्य-सरयूको भक्ति-गङ्गा निज उदरमें लेकर लखनलालके समरयशशोण और श्रीराघवसमरयश शालग्रामी ये दोनोंके बीचमें दोनोंकी मर्यादाकी रक्षा करती हुई सनातन राजती है। न तो भक्तिने रामसमरयशको दबाया और न लखनलालके समरयशको ही दबाया। चारों एकमें भिन्न-भिन्न होकर शोभा देतीं और साथ ही समुद्रमें मिलती हैं अर्थात् रामरूपमें प्राप्त होती हैं।'

त्रिबिध ताप त्रासक तिमुहानी। रामसरूप सिंधु समुहानी॥ ४॥

शब्दार्थ—**तिमुहानी**=तीन मुखवाली।=वह स्थान जहाँ तीन ओरसे नदियाँ आकर मिली हों। तीन नदियोंका सङ्गम होनेसे गङ्गाको तिमुहानी कहा। गङ्गामें पहले सरयू मिलीं फिर शोण।

अर्थ—तीनों तापोंको त्रास देनेवाली यह तिमुहानी-गङ्गा रामस्वरूप सिन्धुकी ओर चली॥ ४॥

नोट—१ *'त्रिबिध ताप त्रासक तिमुहानी'* इति। (क) जैसे तीन मुँहवाले मनुष्यको देखनेसे डर लगता है वैसे ही तीन नदियोंके संगमपर तीव्र धारा भयावन लगती है। इसीसे *'त्रासक'* कहा। ***त्रिबिध***= तीन प्रकारका अर्थात् दैहिक, दैविक और भौतिक। यथा—*'दैहिक दैविक भौतिक तापा।'* (७। २१। १) शारीरिक कष्ट जैसे ज्वर, खाँसी, फोड़ा, फुन्सी इत्यादि रोग तथा काम, क्रोधादि मानसरोग दैहिक ताप हैं। देवताओं अर्थात् प्राकृतिक शक्तियों ग्रहादिद्वारा जो क्लेश होता है उसे दैविक ताप कहते हैं, जैसे अतिवृष्टि, अनावृष्टि, बिजली गिरना, पाला इत्यादि। सर्प, बिच्छू, पशु इत्यादिद्वारा जो दुःख हो वह भौतिक ताप है। इन्हींका दूसरा नाम आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक है।

(ख) रघुवंश सर्ग ८ में श्रीसरयूगङ्गासंगमके प्रभावका उल्लेख मिलता है। उस प्रसंगकी कथा इस प्रकार है—'श्रीदशरथजी महाराजकी माता इन्दुमती थीं जिनको 'अज' महाराज स्वयंवरमें जीतकर लाये थे। राजा दशरथकी बाल्यावस्थामें एक दिन नारद मुनि वीणा बजाते हुए आकाशमार्गसे निकले, वीणापरसे एक पुष्पमाला खिसकी और श्रीइन्दुमतीजीके हृदयपर गिरी, जिससे उनके प्राण निकल गये। अज महाराज

बहुत शोकातुर हुए तब वसिष्ठजीने शिष्यद्वारा उनको उपदेश कहला भेजा और बताया कि रानी इन्दुमती पूर्व जन्मकी अप्सरा है जो तृणबिन्दुऋषिका तपोभंग करनेको गयी थी। ऋषिने मनुष्ययोनिमें जन्म लेनेका शाप दिया और प्रार्थना करनेपर देवपुष्पदर्शनतक शापकी अवधि नियुक्त कर दी। देवपुष्पके दर्शनसे उसका शाप समाप्त हुआ। उस समय दशरथजी बहुत छोटे थे। आठ वर्षके पश्चात् श्रीदशरथजीको राज्यपर बिठाकर राजा अज उसी शोकसे व्याकुल श्रीसरयू-गङ्गा-संगमपर आये और वहाँ प्रायोपवेशन करके उन्होंने अपना प्राण त्याग दिया। स्वर्गमें पहुँचनेपर इन्दुमतीकी वहाँ प्राप्ति हुई जो पूर्वसे अब अधिक सुन्दर थी। '**तीर्थे तोयव्यतिकरभवे जह्नुकन्यासरय्वोर्देहत्यागादमरगणनालेख्यमासाद्य सद्यः। पूर्वाकाराधिकतररुचा संगतः कान्तयासौ लीलागारेष्वरमत पुनर्नन्दनाभ्यन्तरेषु॥**' (९५) इस तीर्थका महात्म्य स्कन्दपुराणमें यह लिखा है कि इस तीर्थमें किसी प्रकार भी जो देहत्याग करता है उसको अपने इष्ट वस्तुकी प्राप्ति होती है और आत्मघातका दोष नहीं लगता। यथा—'**यथाकथंचित्तीर्थेऽस्मिन्देहत्यागं करोति यः। तस्यात्मघातदोषो न प्राप्नुयादीप्सितान्यपि॥**' (मल्लिनाथटीकासे)

त्रिपाठीजी—जैसे कोई राजमार्ग पश्चिमसे पूर्वको जा रहा हो, उसमें एक मार्ग उत्तरसे आकर मिल जाय और एक दक्षिणसे आकर मिल जाय तो उन संगमोंके बीचके स्थलको तिमुहानी कहते हैं। इसी भाँति माधुर्य्य गुणोंके अनुध्यानसे भी भक्तिकी प्राप्ति होती है, तथा ऐश्वर्य्य गुणोंके अनुध्यानसे भी भक्तिकी ही प्राप्ति होती है; अतः रामसुयश तथा 'सानुज रामसमरयश' दोनोंका भक्तिरूपी राजपथमें ही मिलना कहा। माधुर्य्य और ऐश्वर्य्यका विराग विचारयुक्त भक्तिमें मिल जानेसे यहाँ भी तिमुहानी हो गयी।

यहाँपर श्रीगोस्वामीजीने हिन्दी-संसारकी सीमा भी दिखला दी। हिन्दी-भाषा-भाषी संसारके पश्चिमकी सीमा यमुना नदी है, पूर्वकी सीमा गङ्गाशोणसंगम है। उत्तरकी सीमा सरयूनदी और दक्षिणकी सीमा शोण है। इन्हीं प्रान्तोंमें हिन्दी बोली जाती है। अतः इतनेमें ही श्रीगोस्वामीजीने अपने काव्यका रूपक बाँधा है।

टिप्पणी—१ (क) गङ्गा-सरयू-सोनका संगम 'तिमुहानी' है। त्रिविध तापको त्रास करनेवाली तीनों नदियाँ हैं। जब ये तीनों त्रिमुहानी हुईं तब रामस्वरूप सिन्धुके सम्मुख चलीं। भाव यह है कि जैसे इनका संगम होनेपर समुद्रकी प्राप्ति होती है, वैसे ही ज्ञान, वैराग्य और भक्ति होनेसे श्रीरामजी मिलते हैं। (ख) '*सिंधु*' कहनेका भाव यह है कि तीनों नदियोंका पर्यवसान समुद्र है और ज्ञान, वैराग्य, भक्तिके पर्यवसान श्रीरामजी हैं। (ग) गङ्गाजीमें सोन और सरयूका संगम कहकर तब समुद्रके सम्मुख चलना कहा अर्थात् दोनोंको लेकर गङ्गाजी समुद्रमें मिलीं। समुद्रके मिलनेमें गङ्गाजी मुख्य हैं, इसी तरह ज्ञान-वैराग्य-सहित श्रीरामजीकी प्राप्ति करनेमें भक्ति मुख्य है।

नोट—२ (क) श्रीजानकीदासजी लिखते हैं कि 'सरयू, सोन और गङ्गा तीनों मिलकर समुद्रको चलीं। जहाँ समुद्रमें मिलीं वहाँ तिमुहानी गङ्गाकी धारा कुछ दूर समुद्रके भीतरतक चली गयी है। वैसे ही यहाँ कैलास-प्रकरण दोहा ११५ से कीर्त्ति-सरयू चलकर मनुशतरूपाजीकी अनन्य रामभक्तिमें मिली, फिर इसमें सानुज-राम-समर-यश (जो मारीच-सुबाहुके समरमें हुआ) रूपी शोण मिला। ये तीनों श्रीरामचन्द्रके राजसिंहासनपर विराजमान स्वरूपके सम्मुख चलीं और मिलीं। इसके पश्चात् जो चरित '*प्रथम तिलक बसिष्ठ मुनि कीन्हा।*' (उ० १२) से लेकर शीतल अमराईके प्रसंग दोहा ५१ तक वर्णित है, वह नित्य चरितका है। यह नित्य चरित्रका वर्णन स्वरूप-सिन्धुमें पहुँचकर धाराका कुछ दूरतक चला जाना है'। (मा० प्र०) (ख) समुद्रके समीप गङ्गाका चलना कहकर अर्थात् पहिले सरयू-शोण-गङ्गाका संगम कहकर फिर समुद्रकी ओर चलना कहा और संगमका फल कहा। अब केवल सरयूका वर्णन करेंगे—(मा० द०)।

वीरकवि—यहाँ '**उक्तविषयागम्यवस्तूत्प्रेक्षा**' है क्योंकि बिना वाचक पदके उत्प्रेक्षा की गयी है। यहाँ अनुप्रास, उत्प्रेक्षा और रूपक तीनोंकी संसृष्टि है।

मानस मूल मिली सुरसरिही। सुनत सुजन मन पावन करिही॥ ५॥

अर्थ—इस कीर्त्ति-सरयूका मूल (उत्पत्तिस्थान) मानस है और यह गङ्गाजीमें मिली है। (इसलिये) इसके सुननेसे सुजनोंका मन पवित्र होगा॥ ५॥

नोट—१ यहाँसे सिंहावलोकन-न्याय काव्यरचना है अर्थात् जैसे सिंह चलकर फिर खड़ा होकर अगल-बगल दृष्टि डालता है वैसे ही ऊपर राजतिलक-प्रसंग कहकर फिर पीछेका प्रसंग मानस, गङ्गा और सरयूका वर्णन उठाया और बीचके प्रसंग कहेंगे। समुद्र-संगम और संगमका माहात्म्य दो० ४० (४) में कहा, अब फिर सरयूका वर्णन करते हैं और माहात्म्य कहते हैं। यहाँसे आगे सरयूजी और कीर्ति-सरयूका रूपक चला।

टिप्पणी—१(क) नदी कहकर अब नदीका मूल कहते हैं। इसका मूल मानस है। (ख) नदीका संगम समुद्रसे कहना चाहिये। जैसे, अन्य-अन्य स्थानोंमें कहा है। यथा—(क) *'रिधि सिधि संपति नदी सुहाई। उमगि अवध अंबुधि कहँ आई॥'* (२। १) (ख) *'ढाहत भूप रूप तरु मूला। चली बिपति बारिधि अनुकूला॥'* (२। ३४) तथा यहाँ भी समुद्रमें मिलना कहा, यथा—*'त्रिबिध ताप त्रासक तिमुहानी। रामसरूप सिंधु समुहानी॥'* (ग) मूल और संगम कहकर इस कीर्ति-नदीका आदि और अन्त दोनों शुद्ध बताये,* सुनते ही सुजन बना देती है और मनको पावन करती है। अथवा यहाँ यह दिखाया कि श्रोता सुजन हैं इससे सुजनके मनको पवित्र करती है, आप पवित्र हैं और अपने श्रोताको पवित्र करती हैं। मनकी मलिनता विषय है; यथा—*'काई बिषय मुकुर मन लागी।'* (१। ११५) सुजनके मनको भी विषय मलिन करता है; यथा—*'बिषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी। मैं पाँवर पसु कपि अतिकामी॥'* (कि० २१) (घ) *'पावन करिही'* कहनेका भाव यह है कि अभी तो चली है, आगे पावन करेगी।

नोट—२ पाण्डेजी भी यही भाव कहते हैं अर्थात् 'सुननेवालेको सुजन और उसके मनको पावन करेगी'। 'सुजन= अपने जन=सुन्दर जन।' इस अर्धालीमें 'अधिक अभेदरूपक' का भाव है। त्रिपाठीजी लिखते हैं कि गोस्वामीजीके दो श्रोता हैं—एक सुजन, दूसरा मन। अतः यहाँ 'सुजन और मन' दोनोंका ग्रहण है।

बिच बिच कथा बिचित्र बिभागा। जनु सरि तीर तीर बनु बागा॥ ६ ॥

शब्दार्थ—**बिभाग**=प्रकरण, प्रसंग।

अर्थ—इस कीर्त्ति-सरयूके बीच-बीच जो विचित्र कथाओंके प्रकरण अर्थात् भिन्न-भिन्न प्रकारकी विचित्र कथाएँ कही गयी हैं वे ही मानो नदीके किनारेके आस-पासके वन-बाग हैं॥ ६॥

टिप्पणी—१(क) बीच-बीचमें कथाके जो विभाग हैं वे मानो सरिके तीर-तीर वन-बाग हैं। बड़ी कथा वन है, छोटी कथा बाग है। (ख) यहाँ वाटिका क्यों न लिखी? क्योंकि नदीके तीर वाटिका नहीं होती, मानस-सरके तीर वाटिका है; इसलिये वहाँ वाटिका भी दिखायी थी; यथा—*'पुलक बाटिका बाग बन……।'* (ग) वृक्षोंका दो बार वर्णन किया गया, एक तो *'कलिमलतृन तरु मूल निकंदिनि'* में और दूसरे यहाँ वन-बागमें भी तरु हैं। दो बार इससे लिखा कि *'कलिमलतृन तरु……'* से करारके वृक्ष सूचित किये और यहाँ करारके ऊपर जो बाग-वनमें वृक्ष लगे हैं उनको जनाया। पहलेवालोंको उखाड़ती हैं और वन-बागको ललित करती हैं।

वि० त्रि०—*'बिचित्र बिभागा'* इति। कथाका विभाग एक-सा नहीं है। *'सतीं मरत हरि सन बर माँगा। जनम जनम सिव पद अनुरागा॥'* इसलिये सतीका पर्वतराजके घर जन्म हुआ और उन्होंने सर्वज्ञ नारदके उपदेशसे तपस्या की। नारद-मोहकी कथा इससे बिलकुल नहीं मिलती। नारदजीको कामजयका अभिमान

* उत्तररामचरितमें कहा है कि जिसकी उत्पत्ति ही पवित्र है, उसे और कोई क्या पवित्र करेगा? जैसे तीर्थोंके जल और अग्निको पवित्र करनेवाला दूसरा नहीं है, यथा—'उत्पत्तिः परिपूतायाः किमस्याः पावनान्तरैः। तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुद्धिमर्हतः॥'

हुआ, अतः भगवान्‌से प्रेरित मायामयी मूर्ति विश्वमोहिनीपर वे मोहित हो गये। भानुप्रतापकी कथा इन दोनोंसे विलक्षण है। ये कपटी मुनिपर श्रद्धा करनेसे मारे गये। अत:'विचित्र विभाग' कहा ।

नोट—१ (क)'*सरि तीर तीर*' पद देकर सूचित करते हैं कि ये कथाएँ रामचरितमानसकी नहीं हैं किन्तु रामसुयशके प्रसंगसे कुछ दूरका सम्बन्ध रखे हैं '*तीर*' शब्द नदीसे अलग बाहर होना सूचित करता है। (ख) यहाँसे कीर्त्ति-सरयू और साक्षात् सरयूका रूपक कहते हैं। सरयूके तीर-तीर कुछ जलका स्पर्श किये हुए वन-बाग हैं, वैसे ही कीर्त्ति-सरयूके लोकमत, वेदमत दोनों तटोंपर बीच-बीचमें विचित्र भाग-विभागकी कथाएँ हैं। वन-बागसे नदीकी शोभा, विचित्र कथा-विभागसे कीर्त्ति शोभित। (मा० प्र०) (ग) सरयूतटपर पुर, ग्राम, नगर ही नहीं हैं; किंतु वन और बाग भी हैं, वैसे ही कीर्त्ति-सरयूके दोनों तटोंपर श्रोताओंके अतिरिक्त बीच-बीचमें विचित्र कथाएँ भी हैं।

प्रश्न—श्रीरामचरितमानसमें ये कथाएँ कहाँ वर्णन की गयी हैं, उनमें कौन वन-बाग हैं और क्यों?

उत्तर—(१) कीर्त्ति-सरयूका प्रसंग शिवजीने उठाकर जलन्धरकी कथा, नारद-मोह, भानुप्रतापकी कथा, रावणका जन्म, दिग्विजय इत्यादि कथाएँ कहीं, वे ही ये कथाएँ हैं। सातों काण्डोंमें जहाँ-जहाँ मुख्य रामचरितका प्रसंग छोड़कर दूसरी कथाका प्रसंग आया और उसकी समाप्तिपर फिर मुख्य प्रसंग चला वे सब 'बीच' की कथाएँ हैं। जलन्धरकी कथा तथा नारद-मोह-प्रसंग क्रमशः छोटा और बड़ा बाग हैं। भानुप्रताप-कथा-प्रसंग वन है। रावणका जन्म, दिग्विजय, देवताओंके विचार—ये वेद-मत-तीरके वन-बाग हैं। शिव-विवाहके उपरान्त जेवनार इत्यादि सब लोकमत तीरके वन-बाग हैं। इसी तरह सारे प्रसंगोंकी योजना कर लें, लौकिक प्रसंग लोकमततीरके और वैदिक प्रसंग वेदमततीरके वन-बाग समझ लें। (मा० प्र०)

(२) मुं० रोशनलालजी लिखते हैं कि सतीमोह, सतीतनत्याग, नारदमोह, प्रतापभानु, रावणजन्म और दिग्विजय—ये कथाएँ विषम वनरूप हैं; क्योंकि दु:खदायी हैं। याज्ञवल्क्य-भरद्वाज-संवाद, पार्वती-जन्म, तप और शिवजीसे विवाह, शिव-पार्वती-संवाद, मनु-शतरूपाकी कथाएँ बागरूप हैं, फलको देनेवाली हैं। ये सब मिलकर बारह कथाएँ रामचरितके बाहरकी हैं। (पाण्डेजी)—(परन्तु संवादको सरका घाट कह आये हैं?)

(३) 'जैसे वन-बागसे पथिकोंको आनन्द होता है वैसे ही हर-एक विषयकी कथासे हर-एक भावके लोगोंको आनन्द होता है।' (मा० त० वि०)

(४) वनमें लोग भटक जाते हैं। सतीजी, नारदजी, भानुप्रताप आदि भी अपना रास्ता भूलकर भटक गये। श्रीगिरिजाजन्म और स्वायम्भुवमनु-शतरूपाकी कथाओंमें कार्त्तिकेय-जन्म, रामचरितमानसकी कथा और ब्रह्मका अवतार आदि फल हैं, जिनसे संसारका कल्याण हुआ। यहाँ सुख-ही-सुख है।

उमा महेस बिबाह बराती। ते जलचर अगनित बहु भाँती॥ ७॥

शब्दार्थ—बरात (सं० वरयात्रा)=विवाहके समय वरके साथ कन्यापक्षवालोंके यहाँ जानेवाले लोगोंका समूह जिसमें शोभाके लिये बाजे, हाथी, घोड़े, ऊँट या फुलवारी आदि भी रहती हैं। जो लोग बरातमें जाते हैं वे बराती कहलाते हैं।

अर्थ—श्रीपार्वती-महादेवजीके विवाहके बराती ही (कीर्त्ति-सरयूके) बहुत भाँतिके अगणित (अनगिनती) जलचर हैं॥ ७॥

नोट—१ '*जलचर बहु भाँती*' इति। नदीमें बहुत प्रकारके रंग-विरंगके बहुत-से जलचर होते हैं। कोई-कोई भयानक होते हैं और कोई-कोई सुन्दर भी, किसीका मुख बड़ा किसीका पेट, किसीका सिर पेटके भीतर इत्यादि। शिव-गण भयानक हैं; यथा—'*कोउ मुखहीन बिपुल-मुख काहू*' से '*देखत अति बिपरीत बोलहिं बचन बिचित्र बिधि॥*' (१। ९३। ६ से ९३ तक) ये भयावने जलचर हैं। विष्णु, ब्रह्मा आदि सुन्दर जलचर हैं। बराती बहुत भाँतिके हैं और बहुत हैं, सुन्दर भी हैं और भयावने भी, यह समता है।

वि० त्रि०—१ सात्त्विक लोग देवताओंका यजन करते हैं, राजसिक लोग यक्ष-राक्षसोंकी पूजा करते हैं और तामसिक लोग भूत-प्रेतोंकी पूजा करते हैं। सो इस बरातमें सभी देवता हैं, सभी मुख्य-मुख्य यक्ष, राक्षस, भूत और प्रेत हैं। अतः बरात क्या है, त्रैलोक्यके लिये इष्टदेवोंका समाज है। जल-जन्तुओंसे उपमा देकर यह भी दिखलाया है कि इस कविता-सरिमें मज्जन करनेवालोंको इनसे बचकर रहना चाहिये, नहीं तो ये उदरस्थ कर लेंगे। अर्थात् इन्हें इष्टदेव मान लेनेसे इन्हींकी गति होगी, फिर श्रीरामपदकी प्राप्ति न हो सकेगी। यथा—'**देवान् देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि**' (गीता), '***जे परिहरि हरि हर चरन भजहिं भूतगन घोर। तिन्ह कइ गति मोहि देउ बिधि……।***' (२। १६७) शिवजीके भूत-प्रेतादि गण भी रामयशमें विहार करनेवाले हैं, फिर भी इनका दूरसे ही दर्शन सुखद है; इनके भजन करनेके फेरमें न पड़े, नहीं तो श्रीरामभक्तिसे दूर निकल जायगा।

मानससरमें '***नवरस जप तप जोग बिरागा***' जलचर थे और यहाँ महादेवजीके विवाहके बरातीको जलचर बता रहे हैं। बात यह है कि यशके प्रचारके साथ-साथ गूढ़ विषय नहीं चल सकते। सरयू-सरि तो श्रीमानसका प्रचारमात्र है। श्रीगोस्वामीजीके पहिले श्रीरामयशका प्रचार इतना अधिक नहीं था। यह तो उनके काव्य श्रीरामचरितमानसके प्रचारका ही प्रभाव है कि श्रीरामकथाके विस्तारसे सभी परिचित हो गये हैं, अतः काव्यके प्रचारसे जिस भाँति रामयशका विस्तार होगा उसी भाँति उसमें वर्णित गूढ़ विषयोंका प्रचार नहीं हो सकता, अतः प्रचाररूपिणी सरयू-सरिके रूपकमें श्रीरामचरितमानसमें वर्णित अन्य विषयोंको छोड़कर केवल कथा-भागसे ही काम लिया है।

रघुबर जनम अनंद बधाई। भवँर तरंग मनोहरताई॥ ८॥

अर्थ— रघुवर-जन्मपर जो आनन्द और बधाइयाँ हुई वे (कीर्त्ति-सरयूके) भँवर और तरङ्गोंकी मन हर लेनेवाली शोभा हैं॥ ८॥

नोट—१ यहाँ '***रघुबर***' पदसे ग्रन्थकारकी सावधानी और चतुरता झलक रही है। यह शब्द देकर उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके साथ-ही-साथ उनके तीन भ्राताओंको भी सूचित किया है। श्रीमद्गोस्वामीजीने इस शब्दको और भाइयोंके लिये भी दो-तीन जगह दिया है। जैसे—'***बरनउँ रघुबर बिमल जसु।***' (अ० मं०) में रघुबर केवल श्रीभरतजी, अथवा श्रीरामचन्द्रजी और श्रीभरतजी दोनोंके लिये प्रयुक्त हुआ है। फिर '**मायामानुषरूपिणौ रघुवरौ।**' (कि० मं०) में श्रीराम-लक्ष्मण दोनोंको '***रघुबर***' कहा है। '***बाजत अवध गहगहे आनंद बधाए। नाम करन रघुबरनि के नृप सुदिन सोधाए।***' (गी० १। ६। १) में भी आनन्द-बधाईके समय चारों भाइयोंके लिये '***रघुबर***' शब्द आया है। पुनश्च यथा—'***नेकु बिलोकि धौं रघुबरनि। चारि फल त्रिपुरारि तोको दिए कर नृपघरनि॥ परस्पर खेलनि अजिर उठि चलनि गिरि-गिरि परनि॥***' (गी० १। २५। १-२)

नोट—२ (क) आनन्द और बधाईको क्रमसे भँवर और तरङ्ग कहा है। यहाँ यथासंख्य अलङ्कार है। आनन्द भँवर है क्योंकि मन जब आनन्दमें मग्न हो जाता है तब कुछ सुध-बुध नहीं रह जाती, आनन्द मनको अपनेमें डुबा लेता है जैसे भँवरके चक्करमें पड़ जानेसे बाहर निकलना कठिन होता है। श्रीदशरथजी आनन्दमें डूब गये—'***दसरथ पुत्र जनम सुनि काना। मानहुँ ब्रह्मानंद समाना॥***'…… (१। १९३) इत्यादि। भँवरमें पड़नेवाला एक ही स्थानमें चक्कर खाता रहता है। सूर्यभगवान्‌की यही दशा हुई थी; यथा—'***मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोइ। रथ समेत रबि थाकेउ निसा कवन बिधि होइ॥***' (१। १९५) जब देवताओंका यह हाल हुआ तब मनुष्योंकी क्या कही जाय।

(ख) मा० मा० कारका मत है कि '***भँवर***' के उपर्युक्त भावमें विरोध पड़ता है। भँवरके चक्करमें डूबना दुःखद है और यहाँ सुखद दृश्यसे उपमा है, पर इस दीनकी समझमें यहाँ मनके मग्न हो जानेमें समता है, अन्य अङ्गोंमें नहीं। सम्भवतः इसी भावसे पाण्डेजीने लिखा है कि 'आनन्दको भँवर इसलिये कहा है कि वह मनको अपनेमें डुबा लेता है।' देखिये,—'***कलिमल तृन तरु मूल निकंदिनि***' में वृक्षोंका उखाड़ना दोष है, परन्तु कलिमलका उखाड़ना गुण है।

(ग) *'बधाई'* तरङ्ग है, क्योंकि लोग गाते-बजाते-नाचते हुए मङ्गल द्रव्य लेकर चलते हैं। (खर्रा) *'बधाई'* में भी आनन्दकी लहरें, विशेषकर सात्त्विक भावकी तरङ्गें उठती हैं। पुनः, बधाई बजती है, वैसे ही तरङ्गके उठनेमें शब्द होता है। पुनः, बधाईको तरङ्ग कहा, क्योंकि वह बाहर-बाहर रहती है। जैसे तरङ्गमें पड़ा हुआ मनुष्य ऊपर-ही-ऊपर बहता है। बधाईका लक्ष्य, यथा—*'कहा बुलाइ बजावहु बाजा।'* (१। १९३) *'गृह गृह बाज बधाव सुभ प्रगटे सुखमाकंद। हरषवंत सब जहँ तहँ नगर नारि नर बृंद॥'* (१। १९४) इत्यादि। (पाँ०)

☞ जन्म-आनन्द-बधाईका प्रसङ्ग *'अवधपुरी रघुकुलमनि राऊ।'* (१। १८८। ७) से *'अनुपम बालक देखेन्हि जाई……।'* (१। १९३। ८) तक है।

नोट—३ जन्मके आनन्द-बधाईकी उपमा 'भँवरतरङ्गकी मनोहरता' से दी है। इस तरह 'जन्मके आनन्दोत्सवकी बधाई' ऐसा अर्थ अधिक सङ्गत जान पड़ता है। आनन्दोत्सव भँवरतरङ्गके विलासके समान सोह रहे हैं। पर प्रायः सभी टीकाकारोंने ऊपर दिया हुआ ही अर्थ किया है।

दोहा—बालचरित चहुं बंधु के बनज बिपुल बहु रंग।
नृपरानी परिजन सुकृत मधुकर बारि बिहंग॥४०॥

अर्थ—चारों भाइयों (श्रीरामचन्द्रजी, श्रीभरतजी, श्रीलक्ष्मणजी, श्रीशत्रुघ्नजी) के बालचरित इस (कीर्त्ति-सरयू) में (खिले हुए) बहुत रङ्गके बहुत-से कमल हैं। महाराज दशरथजी तथा रानियोंके सुकृत (उन कमलोंपरके) भ्रमर हैं और कुटुम्बियोंके सुकृत जल-पक्षी हैं॥ ४०॥

नोट—१ ☞ बालचरित-प्रकरण *'मुनि धन जन सरबस सिव प्राना। बाल केलि रस तेहि सुख माना॥'* (१। १९८। २) से प्रारम्भ होकर *'यह सब चरित कहा मैं गाई।'* (१। २०६। १) पर समाप्त हुआ।

नोट—२ *'बनज बिपुल बहुरंग'* इति। *बनज* (वनज)=वन+ज=जलसे उत्पन्न=जलज, जलजात, कमल; यथा—*'जय रघुबंस-बनज-बन भानू।'* (१। २८५) वन जलको कहते हैं। यथा—*'बाँधेउ बननिधि नीरनिधि जलधि सिंधु बारीस।'* (६। ५) कमल चार रङ्गके होते हैं। *'सोइ बहुरंग कमल कुल सोहा।'* (१। ३७। ५) देखिये। यहाँ बन्धु भी चार हैं। 'कौन चरित किस रङ्गका कमल है?' इसपर कुछ टीकाकारोंने अपने-अपने विचार लिखे हैं।

(क) मानसदीपिकाकार बालचरितमेंसे इन चारों रङ्गोंके कमलोंके उदाहरण इस प्रकार लिखते हैं कि—(१) *'बेद पुरान सुनहिं मन लाई। आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई॥'* (१। २०५। ६) श्वेत रङ्गके कमल हैं। (२) *'देखरावा मातहिं निज अद्भुत रूप अखंड।……।'* (२०१ से २०२) तकका चरित पीत रङ्गका कमल है। (३) *'आयसु माँगि करहिं पुर काजा।'* (१। २०५) अरुण कमल है। (४) *'पावन मृग मारहिं जिय जानी।'* (१। २०५। २) यह नील कमल है।

(ख) श्रीबैजनाथजी लिखते हैं कि 'हास्यरसमय बालचरित श्वेत कमल हैं, वीररसमय चरित पीत, रौद्ररसके चरित अरुण और रूप-माधुरी-वर्णनवाले प्रसङ्ग शृङ्गाररसके चरित नीलकमल हैं। इनके उदाहरण क्रमसे ये दिये हैं—*'भाजि चले किलकत मुख।'* (१। २०३), *'खेलहिं खेल सकल नृपलीला। करतल बान धनुष अति सोहा।'* (१। २०४) *'बन मृगया नित खेलहिं जाई।'* (१। २०५), *'जिन्ह बीथिन्ह बिहरहिं सब भाई। थकित होहिं सब लोग लुगाई॥'* (१। २०४) इत्यादिसे विवाहपर्यन्त जो रूपकी माधुरी वर्णित है।

(ग) खर्रेमें पं० रामकुमारजीने ये श्लोक दिये हैं—'**श्वेतं पीतं तथा नीलं रक्तं चैव चतुर्विधम्। बाल्यं वैवाहिकं युद्धं राज्यं चैव चतुर्विधम्॥ एतल्लीलाप्रमाणं तु कथयन्ति मनीषिणः॥**' '**माधुर्यैश्वर्यवात्सल्यं कारुण्यं च चतुर्विधम्। लीलाब्जं च रामस्य कथयन्ति मनीषिणः।**' अर्थात् पण्डित लोग कहते हैं कि बाल्य, विवाह, युद्ध और राज्यके चरित क्रमशः श्वेत, पीत, नील और रक्त कमल हैं। अथवा माधुर्य, ऐश्वर्य, वात्सल्य और कारुण्य—ये चार भाव चार प्रकारके कमल हैं। परन्तु ये प्रत्येक भाव बाल, विवाह, युद्ध और राज्य चारोंमें आ सकते हैं।

(घ) त्रिपाठीजी सात्त्विक, राजसिक, तामसिक और गुणातीत चार प्रकारके चरितको चार प्रकारके कमल (श्वेत, रक्त, नील और पीत) मानते हैं। उदाहरण क्रमसे; यथा—'*तन की द्युति स्याम सरोरुह लोचन कंज की मञ्जुलताइ हरैं ......।*' (क० १), '*किलकत मोहि धरन जब धावहिं। चलउँ भागि तब पूप देखावहिं॥ आवत निकट हँसहिं प्रभु भाजत रुदन कराहिं। ......॥*' (७। ७७), '*आजु अनरसे हैं भोर के पय पियत न नीके। रहत न बैठे ठाढ़े पालने झुलावतहू ......*' (गीतावली), '*देखरावा मातहिं निज अद्भुत रूप अखंड। रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड।*' (२०१) से '*देखी भगति जो छोरै ताही।*' (२०२। ४) तक। मानसमेंसे सात्त्विकका उदाहरण, यथा—'*बेद पुरान सुनहिं मन लाई। आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई॥ प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥*' (१। २०५) तामसका, यथा—'*बन मृगया नित खेलहिं जाई।*' राजसके और उदाहरण, यथा—'*खेलहिं खेल सकल नृप लीला।*' (१। २०४) इत्यादि।

(ङ) मानसपरिचारिकाकार तीन ही प्रकारके कमल मानकर लिखते हैं कि 'यहाँ 'बहुरंग' पद दास्य, सख्य, वात्सल्य इन तीन रसोंके विचारसे दिया गया है। इनमेंसे दास्य धूम्र रङ्गका, सख्य पीत रङ्गका और वात्सल्य चित्र रङ्गका कमल है। इनके उदाहरणमें एक-एक चौपाई सुनिये। '*बाल चरित हरि बहु बिधि कीन्हा। अति अनंद दासन्ह कहँ दीन्हा॥*' (१। २०३) यह दास्य रसका चरित धूम्र रङ्गका है। '*बंधु सखा सँग लेहि बोलाई। बन मृगया नित खेलहिं जाई॥*' (१। २०५) यह सख्य रसका चरित पीत रंगका कमल है। और,'*भोजन करत बोल जब राजा। नहिं आवत तजि बाल समाजा॥*' (१। २०३) यह वात्सल्यरस चित्र रङ्गका कमल है।'

(च) मा० मा० ने मा० प्र० के ही भाव दिये हैं, भेद केवल इतना है कि दास्य, वात्सल्य और सख्य रसमय चरित्रोंको इन्होंने क्रमसे रक्त (क्योंकि ये बहुत हैं), पीत और नील कमल (जो सबसे कम हैं) कहा है।

नोट—३ '*नृप रानी परिजन सुकृत*' इति। (क) बालचरितरूपी कमलोंको कहकर अब जिनके पुण्योंका यह फलभोग है उनको कहते हैं। '*नृप*' से यहाँ श्रीदशरथजी महाराज और रानीसे उनकी कौसल्यादि रानियाँ अभिप्रेत हैं क्योंकि बालचरितका रसास्वादन इन्हींको मिला। (ख) इसमें यथासंख्य अलङ्कार है अर्थात् नृप रानी और परिजनके सुकृत क्रमसे मधुकर और पक्षी हैं। नृप-रानीके सुकृत मधुकर और परिजनके सुकृत जल पक्षी हैं।*

नोट—४ '*सुकृत मधुकर ......*' इति। (क) सुकृतको भ्रमर कहा क्योंकि यह पुण्यहीका फल है कि वात्सल्य रसमें पगे हुए राजा-रानी चारों भाइयोंका लालन-पालन-पोषण, मुखचुम्बन इत्यादिका आनन्द लूट रहे हैं। जैसे भ्रमर कमलका स्पर्श करता है, रस चूसता है, इत्यादि यथा—'*कर पद मुख चषु कमल लसत लखि लोचन भ्रमर भुलावउँ।*' (गी०। १। १५। १), '*पुन्य फल अनुभवति सुतहि बिलोकि दसरथघरनि।*' (गी० १। २४। ६), '*दसरथ सुकृत मनोहर बिरवनि रूप करह जनु लाग।*' (गी० १। २६। २), '*दसरथ सुकृत राम धरे देही।*' (१। ३१०), '*जनु पाए महिपाल मनि क्रियन्ह सहित फल चारि।*' (१। ३२५), '*सुकृती*

* प्रायः समस्त टीकाकारोंने 'सुकृत' को ही 'मधुकर' और बारिबिहंग' माना है। पर श्रीनंगे परमहंसजी इस मतका खण्डन करते हैं। वे लिखते हैं कि 'ऐसा अर्थ करनेसे कई दोष उपस्थित हो जाते हैं।' प्रथम यह कि जैसे कमल भोग है और मधुकर भोक्ता, वैसे ही बालचरित भोग है और राजा-रानी भोक्ता हैं न कि उनके शुभ कर्म। कर्म भोक्ता हो ही नहीं सकता, कर्मोंका कर्त्ता भोक्ता होता है, यथा—'करै जो कर्म पाव फल सोई। निगम नीति अस कह सब कोई॥' अतः सुकृतको भौंरा बनाना वेदविरुद्ध है। पुनः जब बालचरित कमल है तो उसका सुख अनुभव करनेवाले माता-पिता भ्रमर हैं, यह सुख दम्पतिको हो रहा है न कि उनके सुकृतको।' इसी प्रकार 'परिजन सुकृत' का अर्थ परिजनके सुकृत करनेसे भावविरोध उपस्थित हो जाता है। इसका अर्थ है 'सुकृती परिजन।'—इस प्रकार उत्तरार्धका अर्थ हुआ—'राजा-रानी मधुकर हैं और सुकृती परिजन जलपक्षी हैं।'

तुम्ह समान जग माहीं। भयउ न है कोउ होनेउ नाहीं॥ तुम्ह ते अधिक पुन्य बड़ काके। राजन राम सरिस सुत जाके।' (१। २९४)

(ख) भ्रमर कमलका अधिक स्नेही है, कमलके मकरन्दका अधिक पान यही करता है। राजा-रानीको बालचरितका विशेष सुख हुआ, अतः इनके सुकृतको मधुकर कहा। माता-पिताकी अपेक्षा परिजनका सुकृत और सुख थोड़ा है, इसीसे इसको जलपक्षीकी उपमा दी। (सू० प्र० मिश्र) दम्पतिको जन्मसे ही सुख मिल सकता है और परिजनको बड़े होनेपर सुख मिलता है; यथा—'*बड़े भये परिजन सुखदाई।*' अतः एकको मधुकर और दूसरेको जलपक्षी कहा।

पं० रामकुमारजी लिखते हैं कि 'भ्रमर कमलका आलिङ्गन करता है, राजा-रानी भाइयोंको गोद लेते हैं, मुखचुम्बन करते हैं। जलपक्षी कमलको देखकर सुखी होते हैं। वैसे ही परिजन बालचरित देख सुखी होते हैं। दोनों बालचरितके सुखरूपी मकरन्दका पान करते हैं। सुख ही मकरन्द है, यथा—'*सुख मकरंद भरे श्रिय मूला।*' (२। ५३) नृप-रानी और परिजन आदिके सुखके उदाहरण; यथा—'*भोजन करत बोल जब राजा*' से *भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ।*' (बा० २०३) तक, '*अनुज सखा सँग भोजन करहीं*' से '*देखि चरित हरषइ मन राजा।*' तक (२०५। ४—८) '*जेहि बिधि सुखी होहिं पुर लोगा। करहिं कृपानिधि सोइ संजोगा॥*' (२०५। ५) परिजनके सुखका वर्णन; यथा—'*कछुक काल बीते सब भाई। बड़े भए परिजन सुखदाई॥*' (२०३। २ से दोहा २०३ तक) दशरथ-अजिर घरके भीतरके सब चरित परिजन-सुखदायी हैं।

मानसतत्त्व-विवरणकार लिखते हैं कि 'कमलमें सुगन्ध और मकरन्दरस होता है। यहाँ '*व्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप। भगत हेतु नाना बिधि करत चरित्र अनूप॥*' (१। २०५) यही सुगन्ध है। '*मुनि धन जन सरबस सिव प्राना। बाल केलि रस तेहिं सुख माना॥*' (१। १९८) यह रस है। मा० प्र० का मत है कि लालन-पालन-आलिङ्गन आदि रस पान करना है और परिजनसुकृतरूपी विहङ्गोंका अनेक प्रकारके चरित्रोंका देखना ही सुगन्ध लेना है। पाण्डेजीके मतानुसार 'मुख-चुम्बनको देख आनन्द प्राप्त होना कमलोंमेंसे रसका टपकना है।'

सीय स्वयंबर कथा सुहाई। सरित सुहावनि सो छबि छाई॥ १॥

अर्थ—श्रीसीताजीके स्वयंवरकी जो सुन्दर कथा है वह इस सुहावनी नदीकी सुन्दर छवि है जो उसमें छा रही है॥ १॥

नोट—१ '*सीय स्वयंबर*' इति। कुछ लोग यह शङ्का करते हैं कि 'स्वयंवर तो वह है जिसमें कन्या अपनी रुचि-अनुकूल वर कर ले, और यहाँ तो ऐसा नहीं हुआ; तब इसे स्वयंवर क्यों कहा?' इस विषयमें यह जान लेना चाहिये कि स्वयंवर कई प्रकारका होता है। देवीभागवत तृतीय स्कन्धमें लिखा है कि 'स्वयंवर केवल राजाओंके विवाहके लिये होता है, अन्यके लिये नहीं और वह तीन प्रकारका है—इच्छा-स्वयंवर, पण-स्वयंवर और शौर्य-शुल्क-स्वयंवर। यथा—'**स्वयंवरस्तु त्रिविधो विद्वद्भिः परिकीर्तितः। राज्ञां विवाहयोग्यो वै नान्येषां कथितः किल॥ (४१) इच्छास्वयंवरश्चैको द्वितीयश्च पणाभिधः। यथा रामेण भग्नं वै त्र्यम्बकस्य शरासनम्॥ (४२) तृतीयः शौर्यशुल्कश्च शूराणां परिकीर्तितः।**' शौर्य-शुल्क-स्वयंवरके उदाहरणमें हम भीष्मपितामहने जो काशिराजकी तीन कन्याओं—अम्बा, अम्बालिका और अम्बिकाको अपने भाइयोंके लिये स्वयंवरमें अपने पराक्रमसे सब राजाओंको जीतकर प्राप्त किया था, इसे दे सकते हैं।

स्वयंवर उसी कन्याका होता है जिसके रूप-लावण्यादि गुणोंकी ख्याति संसारमें फैल जाती है और अनेक राजा उसको व्याहनेके लिये उत्सुक हो उठते हैं। अतः बहुत बड़े विनाशकारी युद्धके बचानेके लिये यह किया जाता है। इच्छास्वयंवर वह है जिसमें कन्या अपने इच्छानुकूल जिसको चाहे जयमाल डालकर ब्याह ले। जयमाल तो इच्छास्वयंवर और पणस्वयंवर दोनोंमें ही पहनाया जाता है। जयमाल-स्वयंवर अलग कोई स्वयंवर नहीं है। दमयन्ती-नल-विवाह और राजा शीलनिधिकी कन्या विश्वमोहिनी-का विवाह (जिसपर नारदजी मोहित हो गये थे) 'इच्छास्वयंवर' के उदाहरण हैं। पण (प्रतिज्ञा) स्वयंवर

वह है जिसमें विवाह किसी प्रतिज्ञाके पूर्ण होनेहीसे होता है, जैसे राजा द्रुपदने श्रीद्रौपदीजीका पराक्रम-प्रतिज्ञा-स्वयंवर किया। इसी प्रकार श्रीजनकमहाराजने श्रीसीताजीके लिये पणस्वयंवर रचा था। यथा—*'पन बिदेह कर कहहिं हम भुजा उठाइ बिसाल।'* (१। २४९), *'……सोइ पुरारि कोदंडु कठोरा। राज समाज आज जोइ तोरा। त्रिभुवन जय समेत बैदेही। बिनहिं बिचार बरइ हठि तेही॥'* श्रीरामजीने धनुषको तोड़कर उन्हें ब्याहा। यथा—*'रहा बिबाह चाप आधीना। टूटतही धनु भएउ बिबाहू।'* (१। २८६) कुछ महानुभाव इसके पूर्व पुष्पवाटिका-प्रसङ्गके *'निज अनुरूप सुभग बर माँगा'* एवं *'चली राखि उर स्यामल मूरति'* इन वाक्योंसे यहाँ इच्छा-स्वयंवर होना भी कहते हैं। परन्तु इसकी पूर्ति 'प्रतिज्ञाकी पूर्ति' पर ही सम्भव थी, इसलिये इसे पणस्वयंवर ही कहेंगे। शिवधनुषके तोड़नेपर ही जयमाल पहनाया गया।

नोट—२ *'कथा सुहाई'* इति। अन्य स्वयंवरोंकी कथासे इसमें विशेषता है। यह केवल धनुषभङ्गकी ही कथा नहीं है किन्तु इसमें एक दिन पहले पुष्पवाटिकामें परस्पर प्रेमावलोकनादि भी है और फिर दूसरे ही दिन उन्हींके हाथों धनुर्भङ्गका होना वक्ता-श्रोता-दर्शक सभीके आनन्दको अनन्तगुणित कर देता है, सब जय-जय-कार कर उठते हैं—*'राम बरी सिय भंजेउ चापा'*; अतः *'सुहाई'* कहा। दूसरे, श्रीरामकथाको *'सुहाई'* कह आये हैं; यथा—*'कहउँ कथा सोइ सुखद सुहाई'* अब श्रीसीताजीकी कथाको *'सुहाई'* कहा। सीयस्वयंवरकथा वस्तुतः श्रीसीताजीकी कथा है। (वि० त्रि०) तीसरे, ऊपर *'रघुबरजन्म'* कहा और यहाँ *'सीय स्वयंबर'* कहा, क्योंकि पुत्रका जन्म सुखदायी होता है और कन्याका विवाह। लोकमें जन्मसे विवाह कहीं सुन्दर माना जाता है, इससे *'सीय स्वयंबर कथा'* को *'सुहाई'* कहा। (रा० प्र०)

नोट—३ *'सो छबि छाई'* का भाव यह है कि सीयस्वयंवरकथासे ही रामयशसे भरी हुई इस कविताकी शोभा है; यथा—*'बिस्व बिजय जसु जानकि पाई।'* सीयस्वयंवरकथामें युगलमूर्तिका छबिवर्णन भरा पड़ा है, बीसों बार *'छबि'* शब्दकी आवृत्ति है। यहींकी झाँकीमें *'महाछबि'* शब्दका प्रयोग हुआ है। यथा—*'नख सिख मंजु महाछबि छाए।'* (१। २४४), *'छबिगन मध्य महाछबि जैसे।'* (१। २६४) ग्रन्थकार कहते हैं कि छबिका सार भाग यहीं है। यथा—*'दूलह राम सीय दुलही री ……सुषमा सुरभि सिंगार छीर दुहि मयन अमियमय कियो है दही री। मथि माखन सियराम सँवारे सकल भुवन छबि मनहुँ मही री।'* (गी० १। १०४) अतः कवितासरित् की छबि सीयस्वयंवर ही है। (वि० त्रि०)

नोट—४ पं० रामकुमारजी लिखते हैं कि *'सरित सुहावनि'* कहनेका भाव यह है कि कीर्त्ति-नदी तो स्वयं सुहावनी है, कुछ 'सीय-स्वयंवर' की कथाके कारण सुहावनी नहीं हुई। उस कथासे कुछ उसकी शोभा नहीं हुई। स्वयंवरकी कथा ऐसी है कि जैसे कोई स्वरूपवती स्त्री शृङ्गार करे, वैसे ही इस सुहावनी नदीकी छबि है। स्वयंवरकथा कीर्त्ति-नदीका शृङ्गार है।

☞ नोट—५ (क) *'सीय-स्वयंवर'*—प्रकरण कहाँसे कहाँतक है इसमें मतभेद है। किसीका मत है कि *'तब मुनि सादर कहा बुझाई। चरित एक प्रभु देखिय जाई॥ धनुषजग्य सुनि रघुकुलनाथा।'* (१। २१०। ९) से यह प्रकरण प्रारम्भ हुआ, और किसीके मतानुसार *'सीय स्वयंबर देखिय जाई॥'* (१। २४०। १) से तथा किसीके मतसे *'यह सब चरित कहा मैं गाई। आगिलि कथा सुनहु मन लाई॥'* (१। २०६। १) से हुआ है। (ख)—पं० रामकुमारजीके मतानुसार स्वयंवर-प्रसङ्ग *'तदपि जाइ तुम्ह करहु अब जथा बंस ब्यवहारु।'* (१। २८६) तक है और कुछ महानुभावोंके मतानुसार *'रघुबर उर जयमाल……।'* (२६४) अथवा, *'गौतम तिय गति सुरति……।'* (२६५) पर यह प्रकरण समाप्त हुआ है। (मा० प्र०) (ग) मेरी समझमें *'आगिलि कथा सुनहु मन लाई। (१। २०६। १)'* से अथवा महर्षि विश्वामित्रजीके साथ श्रीअयोध्याजीसे जानेके समयसे अर्थात् *'पुरुषसिंह दोउ बीर चले संग मुनि भय हरन।'* (१। २०८) से 'सीय-स्वयंवर' की भूमिका समझनी चाहिये। (घ) मा० प्र० कार कहते हैं कि 'दस दोहा पुष्पवाटिका-प्रकरणकी कथा मानस-सरके प्रकरणमें *'राम सीय जस सलिल सुधा सम।'* के साथ है और किञ्चित्-किञ्चित् जल-गुणके साथ कहेंगे। यह गुण तो जलके साथ ही रहता है।' श्रीपाण्डेजीका मत है कि फुलवारीकी

कथा ही श्रीजानकीजीके स्वयंवरकी कथा है (क्योंकि स्वयंवर ढूँढ़कर हृदयमें उसे पतिरूपसे रखना यहाँ ही पाया जाता है और आगे तो प्रतिज्ञा एवं जयमालस्वयंवर है। केवल 'सीय-स्वयंवर' यही है) जो इस नदीकी शोभित छबि है। इसे छबि कहकर जनाया कि कविता-सरितामें पुष्पवाटिकाकी कथा सर्वोपरि है, इसीसे इसे नदीका शृङ्गार कहा। (खर्रा)

बैजनाथजी—श्रीअयोध्याजीमें श्रीसरयूजीकी विशेष शोभा है। तीरपर संतोंके निवासाश्रम, तुलसी पुष्पादिके वृक्ष, ठाकुरद्वारा, पत्थरके बुर्ज, साफ सीढ़ियाँ और उनपर निर्मल जलकी तरङ्गें इत्यादि छबि छा रही हैं। वैसे ही श्रीकिशोरीजीके स्वयंवरकी कथा—जनकपुरवर्णन, धवलधाम, 'मणि-पुरट-पटादि' तीरके मन्दिर हैं, प्रेमीजन साधु हैं, रङ्गभूमि दिव्य घाट हैं, प्रभुकी सब लीला जल है, किशोरीजीकी लीला जलकी अमलता है, फुलवारी रङ्गभूमिमें परस्पर प्रेमावलोकन अगाधता है, उपमा तरङ्गें हैं, स्त्री-पुरुष-तुलसी-पुष्प-वृक्ष, इत्यादि—कीर्त्ति=सरिताकी सुहावनी छबि छा रही है।

सुधाकरद्विवेदीजी—स्वयंवरकथानदी रामबाहुबलसागरमें मिलनेसे पतिसंयोगसे तृप्त हुई। वह सागर भी अपनी प्रियाके मिलनेकी लालसासे ऐसा लहराया कि धनुषरूप बड़े जहाजको भी तोड़ डाला। इसीपर २६१ वाँ दोहा कहा है—*'संकर चाप जहाज सागर रघुबर बाहुबल। ……'*

नदी नाव पटु प्रस्न अनेका। केवट कुसल उतर सबिबेका॥ २॥

शब्दार्थ—पटु=विचारपूर्वक।='विचारवानोंके'।=चतुर, कुशल, प्रवीण। अथवा, पटु=सुन्दर, मनोहर; यथा—*'रघुपति पटु पालकी मँगाई', 'पौढ़ाये पटु पालने सिसु निरखि मगन मन मोद।'* पुनः, पटु=स्फुट, प्रकाशित। पं० रा० कु० के पुराने खर्रेमें 'पटु' का अर्थ 'छलरहित' दिया है, यथा—*'प्रस्न उमा कै सहज सुहाई। छलबिहीन सुनि ……', 'लछिमन बचन कहे छलहीना ……।'* 'पटु' संस्कृत शब्द है। कुशल=अच्छा, समर्थ, प्रवीण, चतुर, यथा—*'पर उपदेस कुसल बहुतेरे।'*

अर्थ—अनेक 'पटु' प्रश्न इस सुकीर्ति-सरयू-नदीकी नावें हैं और उनके विवेकसहित पूर्ण रीतिसे उत्तर नावके चतुर केवट हैं॥ २॥

नोट—१ पं० रामकुमारजी लिखते हैं कि अनेक प्रश्न हैं, अनेक नावें हैं, अनेक केवट हैं। जैसा प्रश्न वैसी नाव और वैसे ही कुशल उत्तररूपी केवट। *'कुसल'* कहनेका भाव यह है कि सब प्रश्नोंके उत्तर रामायणमें पूरे उतरे हैं। उत्तर न देते बनना ही नावका डूबना है सो यहाँ सब उत्तर पार हो गये हैं, कोई नाव नहीं डूबी। श्रीपंजाबीजी लिखते हैं कि —*'पटु'* से उन चतुर स्त्रियोंसे तात्पर्य है जो मिथिलापुरके झरोखेमें बैठी हुई रघुनाथजीका वृत्तान्त पूछ रही हैं। इनके प्रश्न नाव हैं। उत्तर देनेमें जो युवतियाँ कुशल हैं, जिन्होंने विवेकसंयुक्त मुनिवधू-उधारनादि प्रभाव सुनाकर निस्सन्देह किया, उनके उत्तर केवट हैं।' पं० रामकुमारजीका मत है कि 'यहाँ प्रश्नोत्तर स्वयंवरका प्रकरण नहीं है; क्योंकि इस प्रकरणमें तो किसीका प्रश्नोत्तर नहीं है। [नोट—जहाँ उत्तर नहीं बन पड़ा है, वह प्रसङ्ग 'कुशल केवट' नहीं है और न वह यहाँ अभिप्रेत है।]

प्रश्न और उनके उत्तरोंके उदाहरण—(१) *'कहहु नाथ सुंदर दोउ बालक। मुनिकुलतिलक कि नृपकुलपालक॥'* (१। २१६। १) इत्यादि। इस प्रश्नका कुशल उत्तर *'कह मुनि बिहसि कहेहु नृप नीका। बचन तुम्हार न होइ अलीका॥'* से *'मख राखेउ सब साखि जग ………।'* (२१६) तक (२) *'कोटि मनोज लजावनि हारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे॥'* (२। ११७। १) ग्रामवासिनियोंके इस प्रश्नका उत्तर *'तिन्हहिं बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ सकोच सकुचति बरबरनी॥ ……सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लखनु लघु देवर मोरे॥ बहुरि बदन बिधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी॥ खंजन मंजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहिं सिय सयननि॥'*—कितना कुशल और पूर्ण है कि सुनकर *'भईं मुदित सब ग्राम बधूटीं। रंकन्ह राय रासि जनु लूटीं॥ अति सप्रेम सिय पायँ परि……।'* (११७) (३) *'अब जहँ राउर आयसु होई। मुनि उदबेगु न पावै कोई॥ ……अस जिय जानि कहिय सोइ ठाऊँ। सिय सौमित्रि सहित जहँ जाऊँ॥ तहँ रचि रुचिर परन तृन साला। बासु करउँ कछु काल कृपाला॥'* (२। १२६। २—६)—श्रीरामजीके इस

प्रश्नका उत्तर महर्षि वाल्मीकिजीने क्या सुन्दर दिया है, प्रथम तो उत्तरकी भूमिका ही सुन्दर है—*'साधु साधु बोले मुनि ग्यानी'* से *'जस काछिअ तस चाहिअ नाचा।'* (२। १२७। ८) तक; फिर *'पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुचाउँ। जहँ न होउ तहँ देहु कहि तुम्हहिं देखावौं ठाउँ॥'* (१२७) से *'बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु।'* (१३१) तक, फिर *'कह मुनि सुनहु भानुकुलनायक'* से *'चित्रकूट महिमा अमित कही महामुनि गाइ।'* (१३२) तक। उत्तर कितना सुन्दर है कि प्रश्नकर्त्ता प्रसन्न हो गया—*'बचन सप्रेम राम मन भाए।'* (४) श्रीभरद्वाजजीसे श्रीरामजीका प्रश्न—*'नाथ कहिअ हम केहि मग जाहीं।'* (२। १०९। १) और उसका उत्तर *'मुनि मन बिहसि राम सन कहहीं। सुगम सकल मग तुम्ह कहँ अहहीं॥'* कितना सुन्दर और पूर्ण है। (५) अरण्यकाण्डमें श्रीलक्ष्मणजीके प्रश्न और श्रीरामजीका उत्तर जो 'श्रीरामगीता' नामसे प्रसिद्ध है; (३। १४। ५) *'मैं पूछउँ निज प्रभु की नाईं।'* से *'भगति जोग सुनि अति सुख पावा।'* (१७। १) तक यह प्रसङ्ग है। (६) श्रीशबरीजीसे प्रश्न—*'जनकसुता कइ सुधि भामिनी। जानहि कहु करिबर गामिनी।'* और उसका कुशल उत्तर*'पंपासरहि जाहु रघुराई। तहँ होइहि सुग्रीव मिताई॥ सो सब कहिहि देव रघुबीरा। जानतहूँ पूछहु मति धीरा॥ बार बार प्रभु पद सिरु नाई। प्रेम सहित सब कथा सुनाई॥'* (३। ३६। १०—१४) (७) श्रीनारदजीके प्रश्न—*'राम जबहिं प्रेरेउ निज माया। मोहेहु मोहि सुनहु रघुराया॥ तब बिबाह मैं चाहउँ कीन्हा। प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा॥'* (३। ४३। २-३) तथा *'संतन्ह के लच्छन रघुबीरा। कहहु नाथ भव भंजन भीरा॥'* (३। ४५। ५) और उनके उत्तर *'सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा।'* (३। ४३। ४) से *'ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं.....'* (४४) तक, यथा—*'सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ।'* (४५। ६ से ४६। ८) तक। उत्तर सुनकर *'मुनि तन पुलक नयन भरि आए।'* (४५। १) और *'नारद सुनत पद पंकज गहे।'* (४६) (९) किष्किन्धामें श्रीहनुमान्‌जीका प्रश्न श्रीरामजीसे *'को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा। .....।'* (४। १। ७) से दोहा तक और उसका उत्तर *'कोसलेस दसरथ के जाए।'* से *'आपन चरित कहा हम गाई।'* और साथ ही प्रश्न—*'कहहु बिप्र निज कथा बुझाई॥'* और हनुमान्‌जीका कुशल उत्तर। सुग्रीवजीसे श्रीरामजीका प्रश्न और उनका उत्तर—*'कारन कवन बसहु बन मोहि कहहु सुग्रीव।'* (४। ५) से *'तदपि सभीत रहउँ मन माहीं'* तक। बालीका प्रश्न—*'अवगुन कवन नाथ मोहि मारा'* और उसका उत्तर। (४४। ९। ५—१०) जाम्बवान्‌जीसे हनुमान्‌जीका प्रश्न—*'जामवंत मैं पूछउँ तोही। उचित सिखावनु दीजहु मोही॥'* और उसका उत्तर *'एतना करहु तात तुम्ह जाई'* से *'परम पद नर पावई'* तक (४। ३०) में। (१४)—सुन्दरमें श्रीविभीषणजीका प्रश्न और हनुमान्‌जीका उत्तर *'बिप्र कहहु निज कथा बुझाई।'* (५। ६। ६) से दोहा ७ तक। श्रीसीताजीके प्रश्न—*'नर बानरहिं संग कहु कैसे'*, *'कपि केहि हेतु धरी निठुराई'* *'हैं सुत कपि सब तुम्हहि समाना। .....'* और हनुमान्‌जीके उत्तर। हनुमान्-रावण-संवाद भी रावणके प्रश्नसे प्रारम्भ होता है। सबके उत्तर पूरे-पूरे हनुमान्‌जीने दिये। श्रीरामजीके प्रश्न श्रीहनुमान्‌जीसे—*'कहहु तात केहि भाँति जानकी।'* (५। ३०। ८) *'कहु कपि रावन पालित लंका। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका॥'* (३३। ५) और उनके उत्तर। इसी तरह लङ्काकाण्डमें सुवेलपर्वतपर श्रीरामजीके प्रश्न और सुग्रीवादि सबोंके उत्तर। अङ्गद-रावण-संवादमें रावणके प्रश्नोंके कुशल उत्तर अङ्गदने जो दिये हैं। विभीषणका प्रश्न—*'नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना। केहि बिधि जितब बीर बलवाना॥'* और उसके उत्तरमें 'विजय धर्मरथ' का प्रसङ्ग। दोहा ७९ में और उत्तरकाण्डमें श्रीभरतजीके प्रश्न हनुमान्‌जीसे—*'को तुम्ह तात कहाँ ते आए'* इत्यादि, *'कहु कपि कबहुँ कृपाल गोसाईं। सुमिरहिं मोहि दास की नाईं॥'* और उनके उत्तर दोहा २ में। श्रीभरतजीका प्रश्न—*'संत असंत भेद बिलगाई। प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई॥'* और श्रीरामजीका उत्तर दोहा ३७ (५) से ४१ तक।

इसी तरह जहाँ-जहाँ प्रश्न हैं और उनके कुशल उत्तर हैं वे ही प्रसङ्ग यहाँ नाव और केवट हैं।

त्रिपाठीजी—यात्रियोंके सुभीतेके लिये नदियोंमें अनेक सुन्दर-सुन्दर बड़ी-बड़ी नौकाएँ होती हैं। (१) कुछ ऐसी होती हैं जो इस पार और उस पार आया-जाया करती हैं। (२) कुछ ऐसी होती हैं, जो

निश्चित स्थानोंपर जानेके लिये छूटती हैं। (३) कुछ ऐसी होती हैं जो सहायक स्रोतोंसे आ जाती हैं (४) और, कुछ छोटी ऐसी होती हैं, जो कार्य-विशेषके लिये छूटा करती हैं। कहना नहीं होगा कि चौथे प्रकारकी नाव असंख्य होती हैं। जिस प्रकार नदीमें नाव होती है, इसी प्रकारसे इस कवितासरित्में प्रश्न ही नाव है, उसी प्रश्नका सहारा लेकर ही निर्दिष्ट स्थानकी प्राप्ति होती है—विषयविशेषका ज्ञान होता है। इस कविता एवं सरितमें भी उपर्युक्त चारों प्रकारोंकी नावें हैं। दो प्रश्न भारद्वाजके, बारह प्रश्न उमाके और बारह प्रश्न गरुड़के हैं। कुल चौबीस प्रधान प्रश्न हैं। छोटे-छोटे प्रश्न प्रसङ्गोंमें अनेक आये हैं उनकी संख्याकी आवश्यकता भी नहीं है।

भरद्वाजजीके मुख्य प्रश्न *'रामु कवन प्रभु पूछौं तोही। ''''' भयेउ रोषु रन रावनु मारा॥ प्रभु सोइ रामु कि अपर कोउ '''''।'* (१। ४६) और *'जैसे मिटै मोह भ्रम भारी। कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी॥'* ये हैं। इनमेंसे पहली नाव पहले प्रकारकी है अर्थात् लोक और वेद दोनों कूलोंमें बिचरती है और दूसरी नाव दूसरे प्रकारकी है अर्थात् नदीके उद्‌गमसे लेकर मुहानेतक इसका संचार है।

उमाने आठ प्रार्थनाएँ की हैं। इनके उत्तरमें शिवजीने समझाया है। ये भी एक प्रकारके प्रश्नोत्तर कहे जा सकते हैं। उन्हें पहले प्रकारका प्रश्न समझिये। फिर उनके आठ प्रश्न *'प्रथम सो कारन कहहु बिचारी।'* (११०। ४) से *'प्रजा सहित रघुबंसमनि किमि गवने निज धाम।'* (११०) तक दूसरे प्रकारकी नावें हैं और शेष चार तीसरे प्रकारकी हैं। फिर उमाके छः प्रश्न *'सो हरिभगति काग किमि पाई।'* (७। ५४। ८) से *'तेहि केहि हेतु काग सन जाई। सुनी कथा '''''।'* (७। ५५। ४ तक), गरुड़जीके चार प्रश्न—*'कारन कवन देह यह पाई।'* (७। ९४। ३) से *'कारन कवन सो नाथ सब कहहु सहित अनुराग।'* (९४)' तक एवं *'ज्ञानहि भगतिहि अंतर केता '''''।'* (७। ११५)—ये सब प्रश्न तीसरे प्रकारकी नावें हैं। गरुड़जीके अन्तिम सप्त प्रश्न *'सप्त प्रस्न मम कहहु बखानी।'''* (७। १२१। २—७) चौथे प्रकारकी नावें हैं।

'उतर सबिबेका' इति। इससे जनाया कि सब प्रश्नोंके उत्तर विवेकसहित दिये गये हैं। जहाँ विवेक-सहित न मालूम हो वहाँ समझना चाहिये कि भाव ठीक तरहसे समझमें नहीं आया।

नोट—२ मा० मा० कार इसपर लिखते हैं कि—'परन्तु क्रमसे चरित्रका वर्णन हो रहा है। इसपर विचार करना चाहिये। जन्म, बालचरित, स्वयंवर, इसके बाद समस्त रामायणमें जो प्रश्न हैं और उनके उत्तरका उदाहरण देना असम्बन्धित है, क्योंकि आगेकी चौपाईमें वर्णन है कि उन प्रश्नोत्तरोंको सुनकर उसका कथन करना ही उन नावोंपर चढ़कर पथिकगण जानेवाले हैं। उसके पश्चात् परशुरामजीका क्रोधित होना नावोंका घोर धारामें पड़ना है, परन्तु उस घोर धारामें नावें बचकर घाटमें लग गयीं, यहाँ श्रीरामजीका वचन उसे घाटमें लगाना है। इस प्रकारसे प्रकरणका मिलान क्रमशः विवाहहीके समयका हो सकता है।' प्रश्नोत्तरके उदाहरण ये हैं—(क) महारानी सुनयनाका कथन सखियोंसे—*'रामहि प्रेम समेत लखि सखिन्ह समीप बुलाइ। सीतामातु सनेह बस बचन कहै बिलखाइ॥'* (१। २५५) से *'भूप सयानप सकल सिरानी।'* (२५६। ५) तक प्रश्न है, इसका उत्तर *'बोली चतुर सखी मृदु बानी'* से *'सखी बचन सुनि भइ परतीती।'* (२५७। ३) तक है। (ख) धनुष टूटनेके प्रथम राजाओंका वचन—*'तोरेहु धनुष ब्याहु अवगाहा। बिनु तोरे को कुअँरि बिआहा॥'* (२४५। ६) से *'एक बार कालहु किन होऊ'''* ' तक प्रश्न है; जिसका उत्तर *'यह सुनि अपर भूप मुसुकाने'* के बाद *'सीय बिआहबि राम '''''।'* (२४५) से *'करहु जाइ जा कहँ जोइ भावा'* तक उत्तर है और, (ग) धनुर्भंगके बाद *'लेहु छड़ाइ सीय कह कोऊ।'* (२६६। ३) से *'जीतहु समर सहित दोउ भाई'* तक प्रश्न है, जिसका उत्तर *'साधु भूप बोले सुनि बानी'* से *'तस तुम्हार लालच नरनाहा।'* (२६७। ४) तक है। ☞ पं० रामकुमारजी आदिका मत ऊपर दिया गया कि सीय-स्वयंवर-प्रकरणमें किसीका प्रश्नोत्तर नहीं है। पाठक स्वतन्त्ररूपसे विचार कर लें कि इन उद्धरणोंकी 'प्रश्न' और 'उत्तर' संज्ञा हो सकती है या नहीं।

नोट—३ प्रश्नकर्त्ताका 'प्रश्न करना, नावपर चढ़ना है, उसका समाधान पार उतरना है और सुयश उतराई है।'—(वै० रा० प्र०)

सुनि अनुकथन परसपर होई। पथिक-समाज सोह सरि सोई॥ ३॥

शब्दार्थ—**अनुकथन** (अनु+कथन)=पीछेसे कहना। कथा सुनकर तत्पश्चात् दस-पाँच वा कुछ श्रोता मिलकर सुनी हुई कथाको आपसमें स्मरण रखनेके लिये कहते हैं, प्रश्नोत्तर-विवादसहित उसका पाठ लगाते हैं— इसीको 'अनुकथन' कहते हैं= बार-बार कथन वा उसकी चर्चा।= कथोपकथन, परस्पर बातचीत। (श० सा०) 'अनु'—जिस शब्दके पहले यह उपसर्ग लगता है उसमें इन अर्थोंका संयोग करता है—१ पीछे। जैसे अनुगामी, अनुकरण। २ सदृश। जैसे अनुरूप, अनुगुण। ३ साथ। जैसे 'अनुकम्पा, अनुपान'। ४ प्रत्येक। जैसे अनुदिन। ५ बारम्बार। जैसे अनुगुणन, अनुशीलन। **पथिक**=मार्ग चलनेवाले, मुसाफिर, नदीके उतरनेवाले।

अर्थ—सुनकर आपसमें फिरसे उसका कथन करना ही इस कीर्त्ति-सरयूमें यात्रियोंका समाज है जो नदी-तटपर शोभा दे रहा है॥ ३॥

नोट—१ (क) पूरे काव्यके श्रोतृसमाजको पुर, ग्राम और नगर कह आये हैं, अब विशेष-विशेष प्रसङ्गके श्रोताओंके विषयमें कहते हैं। बहुतेरे श्रोता ऐसे हैं जिन्हें प्रसङ्ग विशेष प्रिय है। कोई सीय-स्वयंवर सुनना चाहता है, कोई परशुरामसंवाद तो कोई अङ्गदरावणसंवाद ही सुनना चाहता है। (ख) नाव और केवट निष्प्रयोजन नहीं होते। जब नाव और केवटका वर्णन किया तो उस पथिकसमाजका भी वर्णन प्राप्त है। जो उन नावों और केवटोंसे काम लेते हैं। अतः सुननेके बाद जो आपसमें चर्चा होती है वही इन नाव और केवटोंसे काम लेनेवाला पथिक-समाज हुआ। ऐसे चर्चा करनेवालोंका निर्दिष्ट स्थान है, जहाँपर वे प्रश्न प्रतिवचनद्वारा पहुँचना चाहते हैं। जिन्होंने चर्चा नहीं की उन्हें कहीं जाना-आना नहीं है, अतः वे नाव और केवटसे काम नहीं लेते, यों ही घूमते-घामते उधर आ निकले थे। यहाँ यह भी जनाया कि बिना अनुकथन वा मननके श्रवण अकिञ्चित्कर है, यह परस्परका अनुकथन उसी मन्त्रका व्यक्त रूप है। (वि० त्रि०) (ग) स्थलसे यात्रा करनेसे जल (नाव) द्वारा यात्रा करना विशेष मनोरम तथा आयासरहित होता है, इसी भाँति किसी विषयके समझनेसे विषय-निरूपण प्रश्न-प्रतिवचनरूपमें होनेसे विशेष मनोरम हो जाता है और शीघ्र समझमें आता है। सुननेके बाद आपसमें चर्चा करना उस प्रश्न-प्रतिवचनसे लाभ उठाना और उक्त काव्यकी प्रतिष्ठा करना है। (वि० त्रि०)

पं० रामकुमारजी—परस्पर अनुकथन करनेवालोंकी शोभा रामचरितसे है। सरिकी शोभा उनसे नहीं कहते; क्योंकि सरिकी शोभा पहले ही कह चुके हैं; यथा—'*सीय स्वयंबर कथा सुहाई। सरित सुहावनि सो छबि छाई॥*'

नोट—२ मानसपरिचारिकाकार लिखते हैं कि 'जैसे उस नावपर चढ़े पथिकोंका समाज शोभा देता है पर वह समाज है नदीके बाहरका, वैसे ही अनेक प्रकारके प्रश्नोत्तरोंको सुनकर जो परस्पर अनुकथन करते हैं, कहते हैं कि क्या प्रश्नका उत्तर निबहा है, यही पथिकोंका समाज कीर्त्तिसरिमें शोभा देता है। पूर्व जो श्रोताओंका त्रिविध समाज कह आये हैं उन्हींमें दो कोटि किये, एक जो सुनतेभर हैं ये पुर, ग्राम, नगर हैं और दूसरे वह हैं जो सुनकर पीछे परस्पर अनुकथन करते हैं।

बैजनाथजीका मत है कि वक्ताकी वाणी सुनकर और लोग जो परस्पर वार्ता करके वक्ताके वचनको समझते हैं वे नदी पार जानेवाले पथिकोंका समाज है, जो नदीतटपर शोभित है। बोधित (जो वक्ताकी वाणी समझ गये हैं) पार हो गये और अबोधित पार जानेवाले हैं।

घोर धार भृगुनाथ रिसानी। घाट सुबद्ध* राम बर बानी॥ ४॥

अर्थ—(इस कथारूपिणी नदीमें जो) परशुरामजीका क्रोध (वर्णित है वही नदीकी) घोर धारा है और श्रीरामचन्द्रजीकी श्रेष्ठ (क्रोधको शान्त करनेवाली) वाणी ही सुन्दर दृढ़ बँधा हुआ घाट है॥ ४॥

टिप्पणी—१ घोर (भयानक, तीक्ष्ण, तेज) धारा देखकर भय प्राप्त होता है। भृगुनाथ (परशुराम) की रिस भय देनेवाली है, जिसे देखकर जनक-ऐसे महाज्ञानी एवं सुर-मुनि-नागदेवतक डर गये, इतर जनोंकी क्या गिनती? यथा—*'अति डर उतर देत नृप नाहीं।'* (१। २७०), *'सुर मुनि नाग नगर नर नारी। सोचहिं सकल त्रास उर भारी॥', 'भृगुपति कर सुभाव सुनि सीता। अरध निमेष कलप सम बीता॥'* (१। २७०। ६, ८), *'देखत भृगुपति बेष कराला। उठे सकल भय बिकल भुआला॥'* (१। २६९। १)

☞नोट—१ *'सीस जटा ससि बदन सुहावा। रिस बस कछुक अरुन होइ आवा॥'* (२६८। ५) से भृगुनाथकी रिसानीरूप घोर धारा चली और *'सुनि मृदु गूढ़ बचन रघुपति के। उघरे पटल परसुधर मति के॥'* (२८४। ६) पर शान्त हो गयी।

नोट—२ *'घोर धार'* के और भाव—(क) घोर धार जिधर घूमती है उधरहीके करारोंको काटती चली जाती है; वैसे ही परशुरामजीकी रिस लौकिक अथवा वैदिक जिस कूलकी ओर घूमी उसीको काटती गयी। लौकिक कूलका काटना, यथा—*'निपटहिं द्विज करि जानहिं मोहीं। मैं जस बिप्र सुनावौं तोहीं॥ चाप स्रुवा सर आहुति जानू। कोप मोर अति घोर कृसानू॥ समिधि सेन चतुरंग सुहाई। महा महीप भए पसु आई॥ मैं एहि परसु काटि बलि दीन्हे। समरजग्य जप कोटिन्ह कीन्हे॥'* (१। २८३) वैदिक कूलका काटना, यथा—*'गर्भन्ह के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर।'* (१। २७२) (वि० त्रि०)

(ख) घोर धारासे साधारण घाट भी कट जाते हैं। परशुरामजीने क्रोधमें आकर पृथ्वीको निःक्षत्रिय करनेका विचार ठान लिया था। उन्होंने २१ बार क्षत्रियकुलका नाश किया। सहस्रबाहु-से वीर इनके क्रोधके शिकार हो गये। उन्होंने स्वयं कहा है *'परसु मोर अति घोर', 'कहि प्रताप बल रोष हमारा', 'बाल ब्रह्मचारी अति कोही। बिस्व बिदित छत्रिय कुल द्रोही॥'* इत्यादि।

नोट—३ *'भृगुनाथ'* इति। परशुराम प्रसिद्ध नाम न देकर यहाँ भृगुनाथ नाम दिया है। कारण इसका यह है कि श्रीरामचरितमानस-कथा-भागमें धनुषभङ्गके पश्चात् परशुरामजीका आगमन 'भृगु' शब्दसे उठाया और इसी शब्दसे परशुराम-राम-संवाद-प्रसङ्गको सम्पुट किया गया है। *'तेहि अवसर सुनि सिवधनु भंगा। आयउ भृगुकुल कमल पतंगा॥'* (१। २६८। २) आदिमें और *'भृगुपति गए बनहिं……।'* (१। २८५। ७) अन्तमें दिया है तथा जब सभामें ये पहुँचे और सबकी दृष्टि इनपर पड़ी तब प्रथम ही *'भृगुपति'* शब्दका प्रयोग महाकविने किया है, 'पति' और 'नाथ' पर्याय शब्द हैं।—*'देखत भृगुपति बेषु कराला। उठे सकल भय बिकल भुआला॥'* (१। २६९। १) इन्हीं कारणोंसे यहाँ उस नामका बीज बो दिया है। विशेष दोहा २६८ चौपाई २ में देखिये।

☞स्मरण रहे कि 'भृगुनाथ', 'भृगुपति', 'भृगुसुत', 'भृगुनायक' ये सब परशुरामजीके नाम हैं। ये उन्हीं भृगुजीके वंशज हैं जिन्होंने ब्रह्मा और शिवजीपर भी अपना क्रोध प्रकट किया था। पिता और भ्राता दोनोंका अपमान किया था तथा भगवान्‌की छातीपर लात मारी थी। वैसे ही परशुरामजीने अपनी

---

* पं० छक्कनलालजीकी प्रतिमें 'सुबंध' पाठ है। पं० रामवल्लभाशरणजी तथा भागवतदासजीका 'सुबंधु' पाठ है अर्थात् लक्ष्मणसहित रामजीके वचन। मानसपरिचारिकामें 'सुबंधु' पाठ है। मानसपत्रिकामें 'सुबद्ध' पाठ है। सूर्यप्रसाद मिश्रजीने जो भाव और अर्थ दिये हैं वह 'सबंधु' पाठके हैं। मानसपरिचारिकाके भावोंको उन्होंने अपने शब्दोंमें उतार तो दिया है (और उस टीकाका नाम भी यहाँ नहीं लिया) पर यह ध्यान न रखा कि अपना पाठ वह नहीं है। १६६१ वाली पोथीमें 'सुबद्ध' पाठ है। 'घाट सबंधु राम बर बानी' पाठका अर्थ यह होगा कि 'लक्ष्मणजी और रामचन्द्रजीकी श्रेष्ठ वाणी घाट है'। 'सुबंधु'= सुन्दर भाई। लक्ष्मणजीको सुबन्धु कहा है क्योंकि 'बारहिं ते निज हित पति जानी। लछिमन रामचरन रति मानी॥' (१। १९७) पुनः, अयोध्याकाण्ड ७२ में कहा है कि 'गुरु पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाव नाथ पतियाहू॥—करुनासिंधु सुबंधु के सुनि मृदु बचन बिनीत।—'

माता और भ्राताओंका सिर काटा और भगवान् श्रीरामजीको भी कटु वचन कहे तो क्या आश्चर्य? इनके योग्य ही है। भगवान्‌ने भृगुको क्षमा ही किया; वैसे ही श्रीरामजीने इनको क्षमा किया।

नोट—४ 'घोर धारासे घाट, ग्राम, नगर आदिके कटनेकी सम्भावना रहती है। और यहाँ इस प्रसङ्गमें परशुरामजी राजा जनकका राज्य ही पलट देनेकी धमकी दे रहे हैं। यथा—*'उलटउँ महि जहँ लहि तव राजू।'* (१। २७०। ४) अतः रक्षाके लिये सुदृढ़ बँधे घाट चाहिये; वही दूसरे चरणमें कहते हैं।

नोट—५ *'घाट सुबद्ध'* ...... इति। (क) यात्रियोंके उतरने, स्नान करने, जल भरने और धारासे नगर आदिकी रक्षा इत्यादिके लिये पक्के दृढ़ घाट बनाये जाते हैं। परशुरामजीके क्रोधयुक्त कठोर वचन सुनकर *'सुर मुनि नाग नगर नर नारी। सोचहिं सकल त्रास उर भारी॥'* कि अब रक्षा कैसे होगी, इस तीक्ष्ण क्रोधसे सचमुच ही नगरको ये उलट न दें। सुर-मुनि-नाग यात्री हैं। इन यात्रियों तथा नगरनिवासियोंकी क्रोधरूपी घोर धारसे रक्षाके लिये श्रीरामजीकी श्रेष्ठ मधुर शीतल वाणी 'सुबद्ध घाट' सम है। प्रथम ही *'उलटउँ महि जहँ लहि तव राजू।'* इससे *'सभय बिलोके लोग सब ...... बोले श्रीरघुबीर।'* (२७०) फिर जब लक्ष्मणजीके कटु वचनोंको सुनकर रिस बहुत बढ़ी और *'हाय हाय सब लोग पुकारा'* तथा—*'अनुचित कहि सब लोगु पुकारे'* तब *'लखन उतर आहुति सरिस भृगुबर कोपु कृसानु। बढ़त देखि जल सम बचन बोले रघुकुलभानु॥'* (२७६)। ...... ' तब *'राम बचन सुनि कछुक जुड़ाने।'* फिर लक्ष्मणजीकी वाणीसे जब परशुरामजीका रिससे तन जलने लगा और *'थर थर काँपहिं पुर नर नारी'* तब *'अति बिनीत मृदु सीतल बानी। बोले रामु जोरि जुग पानी॥'* (२७९। १) तब फिर कुछ शान्त हुए—*'कह मुनि राम जाइ रिस कैसें। अजहुँ अनुज तव चितव अनैसे॥'* फिर जब वे श्रीरामजीपर ही क्रोध जताने लगे तब उन्होंने 'मृदु गूढ़ वचन' कहे जिन्हें सुनकर *'उघरे पटल परसुधर मति के'* और उन्होंने अपना धनुष देकर श्रीरामजीकी स्तुति कर दोनों भाइयोंसे क्षमा माँगी और वनको चल दिये। इस सुदृढ़ पक्के घाटपर उनके क्रोध-प्रवाहका कुछ जोर न चला और धारा यहाँसे लौट पड़ी।

(ख) *'घाट सुबद्ध'* से यह भी जनाया कि जबतक घाट न बँधे थे, तबतक लोग इनकी घोर क्रोधरूपी धारामें कट जाते थे, बह जाते थे; यथा—*'जासु परसु सागर खर धारा। बूड़े नृप अगनित बहु बारा॥'* (६। २६) घाट बँधनेसे जीवोंकी अति रक्षा हुई, परशुरामकी रिस मन्द पड़ गयी; यथा—*'भृगुपति गए बनहिं तप हेतू।'*

(ग) घोर धारा अत्यन्त दृढ़ बँधे हुए घाटपर भी अपना बड़ा जोर लगाती है, पर टक्कर खा-खाकर सुदृढ़ बँधे हुए घाटसे उसे घूम जाना ही पड़ता है। वैसे ही श्रीरामजीकी श्रेष्ठ वाणी यहाँ *'सुबद्ध घाट'* है। भृगुनाथरिसानीरूपिणी घोर धारा यहाँ आयी तो बड़े तीव्र वेगसे थी; यथा—*'बेगि देखाउ मूढ़ नत आजू। उलटउँ महि जहँ लहि तव राजू॥'* (१। २७०। ४) संघर्ष भी खूब हुआ, चौदह टक्कर खाकर धारा पलट गयी। (वि० त्रि०) पुनः भाव कि (ख) लक्ष्मणजीके वचनसे क्रोध बढ़ता जाता था, उसे श्रीरामजीने अपनी मधुर श्रेष्ठ वाणीसे ठंडा किया। यथा—*'लखन उतर आहुति सरिस भृगुबर कोप कृसानु। बढ़त देखि जल सम बचन बोले रघुकुलभानु॥'* (१। २७६) (पं० रामकुमारजी)

नोट—६ *'घाट सुबंधु'* पाठ भी कई प्राचीन पोथियोंमें है। अतः उस पाठका भाव जो मा० प्र० कारने लिखा है वह यहाँ हम देते हैं। यह भाव 'सुबद्ध' पाठमें भी दो-एक टीकाकारोंने लगाया है। मा० प्र० कार लिखते हैं कि घाट बनानेंमें धाराका जोर रोकनेके लिये बारम्बार कोठियाँ गलायी जाती हैं। बहुधा ऐसा होता है कि तीक्ष्ण धारा कोठियोंको उखाड़ डालती है, जमने नहीं देती, इससे पुनः-पुनः गच्च-पर-गच्च देकर कोठियाँ गलानी पड़ती हैं जिससे धाराका वेग कम हो जाता है। अथवा, धाराका मुँह फिर जाता है, तब कोठी जमती है और घाट बँधता है। ऐसे ही जब प्रथम भृगुनाथ बोले—*'कहु जड़ जनक धनुष कैहि तोरा'* तब यह घोर धारा देख रघुनाथजीने प्रथम गोला गलाया—*'नाथ संभु धनु भंजनिहारा ......।'* यह कहकर परशुरामजीको शान्त करना चाहा था; परन्तु वे शान्त न हुए, किन्तु 'सुनि

रिसाइ बोले मुनि कोही।' यह मानो गोलेका न थँभना वा कोठीका टूटना है। फिर लक्ष्मणजीने कहा कि—*'बहु धनुही तोरी लरिकाई ...... यहि धनु पर ममता केहि हेतू।'* इनमेंसे एक ही बातका उत्तर परशुरामजीने दिया—*सुनि रिसाइ ...... । धनुही सम त्रिपुरारि धनु ...... ।'* मानो दो कोठियोंमेंसे एक तो जमी। आगे जब उत्तर न देते बना तब विश्वामित्रजी, विदेहजी इत्यादिका निहोरा लिया कि इसे हटा दो, यथा—*'तुम्ह हटकहु जौं चहहु उबारा।', 'केवल कौसिक सील तुम्हारे'* इत्यादि। यही मानो धाराका फिर जाना है। फिर श्रीरामजीकी अन्तिम वाणीने उनको शान्त कर दिया, उनकी आँखें खुल गयीं, वे अपना धनुष सौंपकर क्षमा माँगकर चले गये, यही मानो घाटका बँध जाना है।

नोट—७ श्रीजानकीशरणजी लिखते हैं कि—'सरयूजीकी घोर धारामें अनेकों नावें टूट गयी हैं, उसी प्रकार यहाँ अर्थात् जनकपुर-स्वयंवर-भूमिमें उपस्थित सभासद् प्रश्नोत्तरको सुनकर अनुकथन कर ही रहे थे कि परशुरामजी आकर क्रोधयुक्त बोलने लगे। श्रीरामजीकी श्रेष्ठ वाणीने उनको शान्त किया; यह *'बर बानी'* बँधी हुई घाट हुई। अर्थात् नाव घोर धारमें टूटी नहीं, बँधी हुई घाटमें लग गयी।'

—[पर 'नाव' तो प्रश्न हैं। प्रश्न टूटे नहीं, घाटमें लग गये। इसका क्या आशय है, यह समझमें नहीं आता। जयमालके पश्चात् पूर्वके प्रश्नोत्तरोंका आपसमें फिरसे कथन कौन-सा है? सम्भवतः *'रानिन्ह सहित सोच बस सीया। अब धौं बिधिहि काह करनीया।'* (१। २६७। ७) और *'खरभरु देखि बिकल नर नारी। सब मिलि देहिं महीपन्ह गारी॥'* (२६८। १) यही अनुकथन उनके मतसे हो। यह भी देखना है कि राजाओंके वचन सब परशुरामजीके दर्शनके साथ ही बन्द हो गये, यथा—*'देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने॥'* (२६८। ३)—यह नावका डूबना हुआ या घाट लगना या क्या? प्रश्नको पटु और सविवेक उत्तरको कुशल केवट कहनेका महत्त्व इस पक्षमें मेरी समझमें नहीं रह जाता।]

सानुज राम बिबाह उछाहू। सो सुभ उमग सुखद सब काहू॥ ५॥

अर्थ—भाइयोंसहित श्रीराम-विवाहोत्सव इस कविता-सरयूकी शुभ (सुख, मङ्गल और कल्याणकारी) बाढ़ है जो सबहीको सुख देनेवाली है॥ ५॥

नोट—१ (क) *'सानुज राम समर जस पावन'* में अनुजसे केवल श्रीलक्ष्मणजीका ग्रहण है; क्योंकि और भाई साथ न थे, परन्तु यहाँ *'सानुज राम बिबाह'* में अनुजसे चारों भाइयोंका ग्रहण है; क्योंकि सब भाइयोंका विवाह साथ हुआ। (पं० रामकुमारजी) (ख) धनुष टूटते ही सारे संसारमें उछाह भर गया; यथा—*'भुवन चारि दस भरा उछाहू। जनकसुता रघुबीर बिआहू॥'* (१। २९६। ३) समाचार पाते ही बारात चल पड़ी। उत्साह इतना बढ़ा हुआ है कि ग्रन्थकार सगुनका भी नाचना वर्णन करते हैं—*'सुनि अस ब्याहु सगुन सब नाचे। अब कीन्हे बिरंचि हम साँचे॥'* (१। ३०४)। बारातके पहुँचनेपर अगवानीके समयका आनन्द कवि यों वर्णन करते हैं—*'जनु आनंद समुद्र दुइ मिलत बिहाइ सुबेल।'* (१। ३०५) श्रीरामचरितमानस-भरमें सबसे बड़ा *'उछाह'* श्रीरामविवाहोत्सव ही हुआ। राज्याभिषेकमें होना सम्भव था, पर उस समय महाराज दशरथका न होना सबको खला, यहाँतक कि अवधपुरमें बाजातक न बजा। बरात तो चली केवल श्रीरामजीके विवाहके लिये और लौटी चार बहुएँ लेकर। यह उत्साहकी पराकाष्ठा है। (वि० त्रि०)

नोट—२ श्रीरामविवाहमें *'उछाह'* बहुत बढ़ा, यही नदीकी बाढ़ है। नदीकी बाढ़ अशुद्ध होती है, पर यह शुभ है। नदीकी बाढ़में लोगोंका अकाज होता है, परन्तु उछाहकी वृद्धिमें किसीका अकाज नहीं है। (पं० रामकुमारजी) मा० प्र० का मत है कि सरयूजीकी उमग शुभ है, सबको सुखद है, वैसे ही सानुज-राम-विवाह शुभ और सबको सुखद है। *'सब सुखद'* से यह भी जनाया कि नदीकी बाढ़ चाहे किसीको शुभ और सुखद न भी हो पर कीर्त्ति-नदीके सानुज-रामविवाहका उत्साह तो सबको शुभ एवं सुखद है।

श्रीबैजनाथजी लिखते हैं कि 'गर्मीके तपनमें जब श्रीसरयूजीमें ज्येष्ठमें बर्फ गलनेसे जलकी बाढ़ होती है तो वह सुखदायी होती है। इसी प्रकार जनकपुरवासी राजा जनकके प्रतिज्ञारूपी परितापसे और अवधपुरवासी प्रभुके वियोगसे तप्त थे। यहाँ विवाह-आनन्दरूपी बाढ़से दोनों सुखी हुए।

किसीका मत है कि शुभ इससे कहा कि श्रीसरयूजीकी बाढ़से दूर रहनेवालोंको भी स्नान सुलभ हो जाता है। पुनः माँझावालोंको खेतीके लिये बाढ़ उपकारक होती है। और विवाहोत्सव सबहीको सुखद और मङ्गलकारी है, यथा—*'उपबीत ब्याह उछाह मंगल सुनि जे सादर गावहीं। बैदेहि राम प्रसाद ते जन सर्बदा सुखु पावहीं॥ सिय रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं। तिन्ह कहुँ सदा उछाह मंगलायतन रामजस॥'* (१। ३६१)

नोट—३ नदी उमगकर दोनों कूलोंको प्लावित करती चलती है और यह कविता-सरिता उमगकर आनन्दसे लोक-वेद-विधियोंको प्लावित करती चली है। लोकविधिका प्लावन; यथा—*'पहिचान को केहि जान सबहि अपान सुधि भोरी भई। आनंदकंद बिलोकि दूलहु उभय दिसि आनँदमई॥'* (१। ३२१) वेद-विधिका प्लावन, यथा—*'होम समय तनु धरि अनलु अतिसुख आहुति लेहिं। बिप्र बेष धरि बेद सब कहि बिबाह बिधि देहिं॥'* (१। ३२३) (वि० त्रि०)

नोट—४ 'सीय-स्वयंवर कथाका प्रकरण *'रहा बिबाह चाप आधीना॥ टूटत ही धनु भएउ बिबाहू। सुर नर नाग बिदित सब काहू॥ तदपि जाइ तुम्ह करहु अब जथा बंस ब्यवहारु'''''।'* (१। २८६) पर समाप्त हो गया। यहींसे अब विवाह प्रकरणका आरम्भ समझना चाहिये। यहाँसे विवाह प्रसङ्गकी भूमिका है, विवाहकी तैयारियाँ आदि हैं, बारात आदि सब विवाहके ही सम्बन्धकी बातें हैं। *'सानुज राम बिबाह उछाहू'* यह शुद्ध प्रसङ्ग (१। ३१२) *'धेनु धूरि बेला बिमल सकल सुमंगल मूल। बिप्रन्ह कहेउ बिदेह सन जानि सगुन अनुकूल॥'* से *'प्रभु बिबाह जस भयउ उछाहू।'* (१। ३६१। ६) तक है। मा० प्र० के मतानुसार यह प्रकरण *'रामचंद्र मुखचंद्र छबि'''''।'* (१। ३२१) से (१। ३६१) तक है।

नोट—५ *'सब काहू'* से यह भी भाव ले सकते हैं कि विवाहमें ददिहाल, ननिहाल, ससुराल' इत्यादि सभीके सम्बन्धी उपस्थित थे, पिता भी जीवित थे, (राज्याभिषेकमें पिता न थे) अतः यहाँ *'सब काहू'* कहा।

कहत सुनत हरषहिं पुलकाहीं। ते सुकृती मन मुदित नहाहीं॥ ६॥

शब्दार्थ— **पुलकाहीं**=रोमाञ्चित होते हैं। **मुदित**=प्रसन्नतापूर्वक। **सुकृती**=पुण्यात्मा, धर्मात्मा।

अर्थ—(इस कथाके) कहते-सुनते जिनको हर्ष और रोमाञ्च होता है वे ही इस कीर्त्ति-सरयूमें प्रसन्न मनसे नहानेवाले सुकृती हैं॥ ६॥

टिप्पणी—१ (क) कहते और सुनतेमें हर्ष और पुलक होना ही मुदित मनसे नहाना है। बिना मुदितमन हुए तीर्थका फल नहीं मिलता है, उत्साह-भङ्गसे धन-धर्मकी हानि होती है। इसलिये उत्साहपूर्वक स्नान करना चाहिये। यथा—*'मजहिं प्रात समेत उछाहा।'* (१। ४३। ८) *'सुनि समुझहिं जन मुदित मन मजहिं अति अनुराग।'* (१। २), *'मुदित नहाइ कीन्ह सिव सेवा। पूजि जथा बिधि तीरथ देवा॥'* तथा यहाँ *'कहत सुनत हरषहिं पुलकाहीं'''''।'* कहने-सुननेमें हर्ष और पुलकावली बड़े सुकृतसे होती है। कीर्त्ति-नदीमें सुकृती नहाते हैं, पापीको स्नान दुष्प्राप्य है; यथा—*'पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजन मोर तेहि भाव न काऊ॥'* (ख) *'कहत सुनत'* इति। अर्थात् श्रोता पाकर कहनेमें और वक्ता पाकर सुननेमें। अथवा, परस्पर एक-दूसरेसे कहने-सुननेमें। यथा—*'कहत सुनत रघुपति गुन गाथा। कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा॥'* (१। ४८। ५), *'बिदा किए सिर नाइ सिधाए। प्रभु गुन कहत सुनत घर आए॥'* *'कहत सुनत'* 'कहना-सुनना' मुहावरा है।

नोट—१ *'हरषहिं पुलकाहीं'* इति। श्रीजानकीदासजी 'कहत हर्षहिं' और 'सुनत पुलकाहीं' ऐसा अर्थ करते हैं। यथा—*'सुने न पुलकि तन कहे न मुदित मन किये जे चरित रघुबंसराय।'* (वि० ८३) *'रघुपति चरित महेस तब हरषित बरनइ लीन्ह।'* (१। १११) (मा० प्र०) इस तरह यथासंख्य अलङ्कार होगा, पर इस ग्रन्थमें कहने-सुनने दोनोंमें हर्ष और पुलकका प्रमाण मिलता है; यथा—*'सुनि सुभ कथा उमा हरषानी।'* (७। ५२), *'सुनि हरि चरित न जो हरषाती।'* (१। ११३) इत्यादि। कहनेके उदाहरण ऊपर दे ही चुके हैं।

नोट—२ '*ते सुकृती*' इति। भाव कि— (क) श्रीसरयूजीमें प्रसन्न मनसे स्नान बड़े सुकृतसे प्राप्त होता है, क्योंकि '*जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा। मम समीप नर पावहिं बासा॥*' वैसे ही जब बहुत और बड़े सुकृत उदय होते हैं तब रामचरित कहने-सुननेमें मन लगता है, हर्ष और पुलक होता है; यथा—'*अति हरिकृपा जाहि पर होई। पाउँ देइ एहि मारग सोई॥*' (७। १२९) '*सोइ सुकृती सोइ परम सयाना। जो तजि कपट करइ गुन गाना॥*' (ख) जो सुकृती नहीं हैं, सरयू-स्नान उनको दुर्लभ है, वे तो श्रीसरयूजीको साधारण जलकी नदी ही समझेंगे, वे क्या जानें कि ये ब्रह्मद्रव ही हैं, इनका जल चिदानन्दमय है, भगवान्‌के नेत्रोंका दिव्य करुणाजल है। इसी तरह जो सुकृती नहीं हैं, वे इस कीर्त्तिसरिताको एक साधारण काव्य ही समझेंगे। उनके भाग्यमें स्नान कहाँ? हर्ष और पुलक तो कोसों दूर हैं। पापीको स्नान दुष्प्राप्य है, यथा—'*पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजन मोर तेहि भाव न काऊ॥*'

त्रिपाठीजी—मानसके अधिकारी श्रोताओंको '*सुरबर*' कहा था; यथा—'*तेइ सुरबर मानस अधिकारी॥*' (१। ३८। २) और इस कवितासरिताके प्रचारके श्रोताको '*सुकृती*' कहा। कारण यह है कि इस श्रीरामचरितमानसकी कथा ही दो प्रकारकी है। एक तो वह कथा है, जिसमें चारों घाटोंकी कथाओंका सँभार है, रस, अलङ्कार, लक्षणा, व्यञ्जना, ध्वनि आदिका विचार है, वैधीभक्ति, रागानुगाभक्ति, वैराग्य, ज्ञान-विज्ञानादिका विवरण है, शम, यम, नियम, योगादिका विवेचन है, वही कथा 'मानस' के नामसे विख्यात है। उसके वक्ता दुर्लभ हैं और श्रोता अत्यन्त ही दुर्लभ हैं। दूसरी वह कथा है, जो सर्वसाधारणमें प्रचलित है, जिसमें सीधा-सीधा कथाका आनन्द है, उपर्युक्त बातोंपर वक्ता-श्रोता दृष्टिपात नहीं करते, क्योंकि उन विषयोंमें उनका प्रवेश भी नहीं है। कहना नहीं होगा कि प्रचार दूसरी प्रकारकी कथाका ही विशेष है, क्योंकि इसके वक्ता-श्रोता बहुतायतसे मिलते हैं। इसी प्रचारवाली कथाको श्रीग्रन्थकारने सरयूसे उपमित किया है, क्योंकि सरयूजीमें 'मानस' का ही जल है और सरयूजी सुलभ हैं, गृहस्थीमें रहते भी अवगाहन हो सकता है। मानसका अवगाहन दुर्घट है। बिना गृहस्थीके प्रेमके शिथिल किये उसका अवगाहन नहीं हो सकता, अतः 'मानस' के अवगाहन करनेवालेको '*सुरबर*' कहा और सरयूके अवगाहन करनेवालेको सुकृती कहा।

नोट—३ '*कहत सुनत*' हर्ष और पुलक होना जो यहाँ कहा गया वह किस कथाके लिये? इसपर टीकाकारोंने कोई प्रकाश नहीं डाला है। इस कथाके 'कहने-सुनने' या 'कहते-सुनते' इतना ही लोगोंने लिखा है। 'इस कथा' से समस्त रामचरितमानसका भी ग्रहण हो सकता है और अंशका भी। श्रीजानकीशरणजीका मत है कि चरित्रका वर्णन यहाँ क्रमसे हो रहा है। आगेकी चौपाईमें अयोध्याकाण्डका प्रकरण आयेगा। इससे यहाँ विवाहचरित्रके कहने-सुननेवालोंसे ही यहाँ रूपक समझना चाहिये। उदाहरण, यथा—'*सिय रघुबीर बिबाह जे सप्रेम गावहिं सुनहिं*……।' (१। ३६१)

राम-तिलक-हित मंगल-साजा। परब जोग जनु जुरे समाजा॥ ७॥

शब्दार्थ—**साजा**=सामान, सामग्री। **परब**=अमावास्या, पूर्णिमा, ग्रहण, अर्धोदय, संक्रान्ति, महोदय, वारुणी, गोविन्दद्वादशी, श्रीरामनवमी, श्रीजानकीनवमी इत्यादि। पर्व-योग=पर्वकी प्राप्तिपर, पर्वके दिन, पर्वका योग होनेपर ☞ पुराणानुसार चतुर्दशी, अष्टमी, अमावास्या, पूर्णिमा और संक्रान्ति ये सब पर्व हैं। पर्वके दिन स्त्री-प्रसंग करना अथवा मांस-मछली आदि खाना निषिद्ध है। जो ये सब काम करता है, कहते हैं, वह विण्मूत्रभोजन नामक नरकमें जाता है। पर्वके दिन उपवास, नदी-स्नान, श्राद्ध, दान और जप आदि करना चाहिये। यथा—'**चतुर्दश्यष्टमी चैव अमावास्या च पूर्णिमा। पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रान्तिरेव च॥**' [विष्णुपु०। मूहूर्तचिन्तामणि पीयूषधाराटीकासे उद्धृत] '**चतुर्दश्यष्टमी कृष्णा त्वमावास्या च पूर्णिमा। पुण्यानि पञ्चपर्वाणि संक्रान्तिर्दिनस्य च॥**' [वसिष्ठवचन। पीयूषधारा] '**स्त्रीसेवनं पर्वसु पक्षमध्ये पलं च षष्ठीषु च सर्वतैलम्। नृणां विनाशाय चतुर्दशीषु क्षुरक्रिया स्यादसकृत्तदाशु॥**' (वसिष्ठसं०)

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजीके तिलकके लिये जो मङ्गलसाज सजाया गया वही मानो इस कीर्त्ति-नदीपर पर्व-योगपर (योगी, यती, उदासी, वैष्णव, स्मार्त, विरक्त, गृहस्थ इत्यादि) यात्रियोंका समाज जुटा है॥ ७॥

नोट—१ पर्वयोग होनेपर श्रीसरयूजीपर बहुत भीड़ होती है। कीर्त्ति-सरयूमें श्रीरामराज्याभिषेकहित मङ्गलसाज सजाया जाना पर्वका समाज है।

सु० द्विवेदीजीका मत है कि 'जब अमावास्याको सोमवार हो और अमावास्या तीन प्रहर भोग करे तदनन्तर चौथे प्रहर प्रतिपदा प्रवेश करे तो ऐसे योगमें रविको राहु भोगता है अर्थात् ग्रहण होता है। यहाँ राज्याभिषेकके दिन तीन प्रहरतक मानो अमावास्या रही और जब कैकेयीने चौथे प्रहर अभिषेक-समाचारको सुनकर विघ्न आरम्भ किया, वही मानो प्रतिपदाका संचार हुआ। ऐसे योगमें राजतिलकमें बाधा पड़ी, मानो ग्रहण हुआ।'

बैजनाथजीका मत है कि यहाँ श्रीरामजी निष्कलङ्क चन्द्रमाके समान और कैकेयीके वरदान राहुसमान हैं। (इनके मतानुसार पूर्णिमाका पर्व लेना होगा)

त्रिपाठीजी कहते हैं कि यद्यपि 'पर्व' शब्दसे किसी भी पर्वका ग्रहण हो सकता है फिर भी श्रीरामाभिषेक पुष्यके योगमें ही होनेवाला था और गोविन्दद्वादशी भी पुष्ययोगमें ही बहुत दिनोंपर कभी आती है, अतः वही ग्रन्थकारकी लक्ष्भूता प्रतीत होती है।

नोट—२ ***'जुरे समाजा'*** इति। अभिषेकके लिये ***'लगे सुमंगल सजन सब बिधि अनुकूल बिचारि॥'*** (२। ८) ***'प्रमुदित पुर नर नारि सब सजहिं सुमंगल चार। एक प्रबिसहिं एक निर्गमहिं भीर भूप दरबार॥'*** (२। २३) यही कीर्त्ति-नदीपर रामराज्याभिषेकरूपी पर्वके अवसरकी भीड़ है। श्रीसरयूजीमें, श्रीअयोध्याजीमें पर्व-विशेषपर कई दिन पूर्वसे भीड़ एकत्र होने लगती ही है।

नोट—३ (क) ***'तिलक हित मंगल साजा'*** का प्रसंग, ***'सबके उर अभिलाषु अस कहहिं मनाइ महेसु। आपु अछत जुबराजपद रामहिं देउ नरेसु॥'*** (२।१) से प्रारम्भ होता और ***'सकल कहहिं कब होइहिं काली।'*** (२। ११। ६) पर, अथवा, मानसपरिचारिकाके मतानुसार ***'नाम मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि।'*** (२। १२) पर समाप्त होता है। (ख) पर्वयोग दुर्लभ है। वैसे ही रामराज्य दुर्लभ। लोग मनाते हैं कि रामराज हो। (पं० रा० कु०) (ग) यहाँ उक्तविषयावस्तूत्प्रेक्षा अलङ्कार है। पर्वपर समाज जुटता ही है।

काई कुमति केकई केरी। परी जासु फलु बिपति घनेरी॥ ८॥

शब्दार्थ—घनेरी=एक साथ ही बहुत-सी, घोर।

अर्थ—कैकेयीकी दुर्बुद्धि (इस कीर्त्ति-नदीमेंकी) काई है जिसका फल (परिणाम) 'घनेरी' बिपत्ति पड़ी है॥ ८॥

नोट—१☞ ***'काई कुमति······ घनेरी'***—यह प्रसंग ***'नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि।'*** (२। १२) से ***'सजि बन साजु समाजु सबु बनिता बंधु समेत। बंदि बिप्र गुरु चरन प्रभु चले करि सबहि अचेत॥'*** (२। ७९) तक और फिर सुमन्त्रजीके लौट आनेसे ***'पितु हित भरत कीन्ह जसि करनी'*** तक है। (मा० प्र०) मा० म० के मतसे ***'भावी बस प्रतीति उर आई'*** से ***'अस बिचारि सोइ करहु जो भावा'*** तक यह प्रसंग है।

नोट—२ ***'बिपति घनेरी'*** का प्रसंग—***'नगर ब्यापि गइ बात सुतीछी।'*** (२। ४६। ६) से ***'अति बिषाद बस लोग लोगाईं।'*** (२। ५१। ७) तथा ***'सजि बन साजसमाज······'*** तक। पुनः, ***'चलत रामु लखि अवध अनाथा।'*** (२। ८३। ३) से ***'बिषम बियोग न जाइ बखाना।'*** (२। ८६। ८) तक। पुनः, ***'मंत्री बिकल बिलोकि निषादू।'*** (२। १४२। ६) से ***'पितु हित भरत कीन्ह जसि करनी।'*** (अयो० १७१। १) तक; वस्तुतः वनसे पुनः अवध लौट आनेतक सब विपत्ति है; पर प्रकरण-क्रमसे यहींतक यह प्रसंग होगा।

नोट—३ ☞ गोस्वामीजी सारी विपत्तिका दोष कैकेयी-कुमति बताते हैं और यही अयोध्याकाण्डमें दर्शाया गया है। यथा—***'कुटिल कठोर कुबुद्धि अभागी। भइ रघुबंस बेनु बन आगी······॥ सुख महुँ सोक ठाटु धरि ठाटा॥ ······'*** (४७) ***'बरु बिचारि नहि कुमतिहि दीन्हा'*** तक, ***'भइ दिनकर कुल बिटप कुठारी।***

कुमति कीन्हि सब बिस्व दुखारी॥' (२। ९२) *'कैकयनंदिनि मंदमति कठिन कुटिलपनु कीन्ह। जेहि रघुनंदन जानकिहि सुखु अवसर दुख दीन्ह॥'* (२। ९१) इत्यादि।

टिप्पणी—१ (क) काईका होना उत्पात है, कुमतिका फल विपत्ति है। यथा—*'जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना।'* (५। ४०) (कुमति आनेपर लोग मित्रको शत्रु और शत्रुको मित्र मान लेते हैं; यथा—*'तव उर कुमति बसी बिपरीता। हित अनहित मानहु रिपु प्रीता॥'* (५। ४०) वैसे ही कैकेयीने मन्थराको हित मान लिया; यथा—*'तोहिं सम हित न मोर संसारा। बहे जात कइ भइसि अधारा॥'* (२। २३) और *'बिप्रबधू कुल मान्य जठेरी। जे प्रिय परम कैकई केरी॥'* उनके वचन उसको बाण सम लगे, वे सब अहित जान पड़े)। पक्का घाट पहिले कह आये हैं; यथा—*'घाट सुबद्ध राम बर बानी।'* नदीमें पक्के घाटपर काई लगा करती है इसलिये घाट कहकर फिर काई कहा। (ख) एक उत्पातका फल अमित विपत्ति हुई—रामराजमें विघ्न, वन-गमन, दशरथ-मरण, रानियोंका वैधव्य, प्रजाको शोक, भरतजीको क्लेश, इत्यादि। (ग) काईसे फिसलकर लोग गिर पड़ते हैं, यहाँ बहुत-सी विपत्ति आकर गिरी है—(पाँड़ेजी) (घ) कैकेयीके हृदयमें मन्थराकी बात अच्छी लगना काईका लगना है।

नोट—४ काई घाटपर जलकी रुकावट और कीचड़के संयोगसे हो जाया करती है। यहाँ मन्थरा कीचड़ है, जिसके संयोगसे कैकेयीमें कुमतिरूपी काई जमी। (बैजनाथजी लिखते हैं कि नदीतीरमें जहाँ भूमिकी विषमतासे जल रुका रहता है वहाँ मैले पदार्थका योग पाकर काई पड़ जाती है। यहाँ देवप्रेरित सरस्वतीद्वारा मैला-संयोग पानेपर कैकेयीकी मतिकी कुमति प्रकट हुई। यही काई है।)—काईमें बेधड़क चलनेसे फिसलकर गिरना होता है, यहाँ महाराज दशरथजी न जानते थे कि काई जम आयी है, वे बेधड़क वचन दे बैठे (यही कुमति काईपर चलना है) जिससे ऐसे गिरे कि फिर न उठे। 'परी' शब्द कैसा चोखा है। यह स्वयं ही जना देता है कि यह विपत्ति पूर्णतया फिर न हटी, पड़ी ही रही। केवल कुछ अंशमें कम हो गयी। बैजनाथजी लिखते हैं कि 'जैसे कोई धर्मात्मा आ जाता है तो काईको घाटपरसे निकलवा देता है तब वह काई सूख जाती है। यहाँ भरतजीने माताका त्याग किया, फिर कभी कैकेयीको माता न कहा। यही काईका निकाल फेंकना है, विधवापन सूख जाना है।'

त्रिपाठीजी लिखते हैं कि मानसमें काईका वर्णन नहीं है, क्योंकि वहाँ आधिभौतिक अर्थके साथ-ही-साथ आध्यात्मिक तथा आधिदैविक अर्थ भी चलते हैं और उन अर्थोंपर ध्यान देनेसे कैकेयी भगवतीमें कुमतिका आरोप नहीं हो सकता; यथा—*'तात कैकइहि दोष नहिं गई गिरा मति धूति।'* अतः मानससरमें काई नहीं कहा।

दोहा—समन अमित उतपात सब भरत चरित जप-जाग।
कलि अघ* खल अवगुन कथन ते जलमल बग काग॥ ४१॥

शब्दार्थ—**उतपात** (उत्पात)= विपत्ति, आपत्ति, उपद्रव। **जप-जाग**=जपयज्ञ।

अर्थ—सभी असीम उपद्रवोंको शान्त करनेवाला श्रीभरतजीका चरित जपयज्ञ है। कलिके पापों और खलोंके अवगुणोंके वर्णन इस नदीके मल बगुले और कौए हैं॥ ४१॥

नोट—१ *'समन अमित उतपात सब'* इति। (क) 'जैसे काई लगनेसे जल बिगड़ता है, तब महात्मा लोग काईको निकलवाते हैं और जप, पुरश्चरण तथा यज्ञ करके विघ्नोंको शान्त करते हैं, वैसे ही कीर्ति-सरयूमें जो कैकेयीकी कुमतिरूपी काई लगनेसे उत्पात हुए उनकी शान्तिके लिये श्रीभरतजीका चरित जपयज्ञ है। (मा० प्र०) (ख) श्रीभरतजीका फिर जीते-जी कैकेयीको माता न कहना, उनका सदाके लिये त्याग करना, यही काईका निकाल फेंकना है। प्रभुकी चरणपादुका सिंहासनपर पधराना और स्वयं भूमि खोदकर नन्दिग्राममें अवधिभर रहना यह सब प्रायश्चित्त है। (ग) श्रीभरतजीके इस चरित्रसे कैकेयीकी

* कलि अघ खल अवगुन—१६६१, पाँडेजी, वै०,

कुमति जाती रही, उसे परिपूर्ण पश्चात्ताप हुआ। यथा—*'लखि सिय सहित सरल दोउ भाई। कुटिल रानि पछितानि अघाई॥ अवनि जमहि जाचति कैकेई। महि न बीचु बिधि मीचु न देई॥'* (२। २५२) *'गरइ गलानि कुटिल कैकेई। काहि कहइ केहि दूषनु देई॥'* (२। २७३। १) और भरतजीके ही चरितका प्रभाव है कि अवध फिर सुन्दर रीतिसे 'सुबस' बसा, *'रामदरस लगि लोग सब करत नेम उपबास। तजि तजि भूषन भोग सुख जिअत अवधि की आस॥'* (३२२) और भगवान् श्रीरामजीका राज्याभिषेक हुआ। सब उत्पात शान्त हुए।

नोट—२ बैजनाथजी लिखते हैं कि—'काई, मैला आदि यावत् उत्पात जलमें होता है वह सब वर्षाका प्रवाह आनेपर बह जाता है, यहाँ कैकेयी-कुमति आदि यावत् पूर्व उत्पातरूप काई और मैल रहा उस सबको शमन करनेके लिये जो जपयज्ञमय भरतचरित है वही वर्षाका प्रवाह है जिससे सब विकार बह गया।'

नोट—३ यज्ञ प्रायश्चित्त आदिके लिये किया जाता है, वैसे ही कैकेयीजीके पापका प्रायश्चित्त श्रीभरतचरितसे हुआ। यथा—'**दृढभक्तिरिति ज्येष्ठे राजतृष्णापराङ्मुखः। मातुः पापस्य भरतः प्रायश्चित्तमिवाकरोत्॥**' (रघुवंश २। १९) अर्थात् ज्येष्ठ भ्रातामें भरतजीकी दृढ़भक्ति थी, अतः राज्यतृष्णासे उनको पराङ्मुख होना मानो माताके पापका प्रायश्चित्त ही है।

नोट—४ (क) 'भरतचरित' प्रसंग *'सानी सरल रस मातु बानी सुनि भरत ब्याकुल भए। लोचन सरोरुह स्रवत सींचत बिरह उर अंकुर नए॥ सो दसा देखत समय तेहि बिसरी सबहि सुधि देह की।*......' (२। १७६) से *'भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं।'* (२। ३२६) तक है। बीच-बीचमें स्वभावका वर्णन है, उसे जल-गुणके साथ दोहा (४२। ८) में सुशीतलता कहा है। (मा० प्र०) (ख) 'भरतचरित' सब उत्पातोंका नाशक है; यथा—*'मिटिहहिं पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल भार। लोक सुजसु परलोक सुखु सुमिरत नाम तुम्हार॥'* (२। २६३)—यह श्रीरामजीका आशीर्वाद है। देखिये, कविने स्वयं भरतवचनको 'सबीजमन्त्र' की उपमा दी है। यथा—*'भरत बचन सब कहँ प्रिय लागे। राम सनेह सुधा जनु पागे॥ लोग बियोग बिषम बिष दागे। मंत्र सबीज सुनत जनु जागे॥'* (२। १८४)

पं० रामकुमारजी—१(क) भरतचरितको जपयज्ञ कहा क्योंकि जपयज्ञ सब यज्ञोंसे श्रेष्ठ है; यथा—'**यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि।**' (गीता। १०। २५) (ख) जपयज्ञसे अमित उत्पात नाशको प्राप्त होते हैं, यहाँ तो एक ही उत्पात है। भरतचरित्रसे श्रीसीता-राम-लक्ष्मण तीनों प्रसन्न हुए, सब प्रजा सुखी हुई, स्वर्गमें राजा प्रसन्न हुए। (ग) पुनः, जैसे जपयज्ञका माहात्म्य है वैसे ही भरतचरितका माहात्म्य गोस्वामीजीने कहा है; यथा—*'परम पुनीत भरत आचरनू। मधुर मंजु मुद मंगल करनू॥ हरन कठिन कलि कलुष कलेसू। महामोह निसि दलन दिनेसू॥ पापपुंज कुंजर मृगराजू। समन सकल संताप समाजू॥ जनरंजन भंजन भवभारू। रामसनेह सुधाकर सारू॥'* (२। ३२६)

* *'कलि अघ खल अवगुन कथन', 'जलमल बग काग'* *

(१) श्रीजानकीदासजीके मतानुसार *'कलि अघ कथन,* बक है, *खल अवगुन कथन'* काग है। जैसे—सरयूजीके एक देशमें देशभूमिके योगसे घोंघी-सिवाररूप मल रहता है, जिसके साफ करनेको काग-बक रहते हैं, वैसे ही कीर्ति-नदीमें कविताके संयोगसे कहीं-कहीं एक देशमें प्राकृत दृष्टान्त दिये गये हैं, वही घोंघी सिवाररूपी जलमल हैं जिनके साफ (दूर) करनेको उत्तरकाण्डमेंका कलि-अघवर्णन बक है और खल-अवगुण वर्णन काग है। ये वर्णन प्राकृत दृष्टान्तादि मलको साफ कर देते हैं। इस तरह कि इन दृष्टान्तोंको बहुत लोग पढ़ या सुनकर वैसा ही बुरा कर्म करने लगते हैं। *'कद्रू बिनतहि दीन्ह दुख'* इत्यादि दृष्टान्तका उदाहरण लोग देते हैं और कहते हैं कि देवकोटिवाले ऐसा करते थे, हम क्यों न करें—यही मलका जमा होना है। वे यह नहीं समझते कि यह तो काव्यका अङ्ग है। परन्तु कलिके अघ और खलके अवगुणका वर्णन जो रामायणमें है, इसको जब वे लोग सुनते हैं तब उनको ग्लानि होती है कि जो कर्म हम करते रहे

सो तो दुष्टोंके कर्म हैं। ऐसा विचार होनेपर वे कुकर्मोंको त्याग देते हैं; यही मलका साफ होना है। यथा—*'बुध जुगधर्म जानि मन माहीं। तजि अधर्म रति धर्म कराहीं॥'* (७। १०४) इसीसे अघ अवगुण कथनको बक और काग कहा। इनका वर्णन आवश्यक अङ्ग है, क्योंकि *'संग्रह त्याग न बिनु पहिचाने।'*

(२) पं० श्रीरामकुमारजी लिखते हैं कि 'कलिका वर्णन जलमल है, खल-अघ बक है, खल-अवगुण काग है।' अथवा, कलिका अघ जलमल है और खल-अघ-अवगुन-कथन बक और काग हैं।

(३) बैजनाथजीका मत है कि *'कलि मल ग्रसे धर्म सब।'* (७। ९७) इत्यादि कलिका वर्णन जलमल है। अघ-वर्णन; यथा—*'जे अघ मातु पिता सुत मारें।'* (२। १६७। ५) इत्यादि बक है। खल-अवगुण-कथन काक है। यहाँ यथासंख्यालङ्कार है।

टिप्पणी—१ (क) जब मानसका वर्णन किया था तब खल और कामीको बक-काग कहा था; यथा— *'अति खल जे बिषई बक कागा'*, *'कामी काक बलाक बिचारे।'* यहाँ खलके अघ-अवगुण-कथनको बक-काग कहा। मानसमें *'जलमल बक काग'* नहीं कहा, यहाँ सरयूमें कहा है। कारण यह है कि मानस देवलोकमें है जो दिव्य है; इससे वहाँ *'जलमल बक काग'* नहीं हैं; यथा—*'अति खल जे बिषई बक कागा। एहिं सर निकट न जाहिं अभागा॥ संबुक भेक सेवार समाना। इहाँ न बिषय कथा रस नाना॥'* (१। ३८। ३-४) और सरयूजी नरलोकमें आयीं, इससे यहाँ ये सब हुए। इसी प्रकार जबतक मानस कविके स्वच्छ हृदयमें रहा तबतक ये वहाँ न थे, जब कथा वर्णन करने लगे तब कथामें तो खलकी कथा, कलियुगकी कथा, सभी कुछ कहना ही चाहिये, इससे यहाँ *'जलमल बक काग'* कहे। अथवा, यों कहिये कि जैसे मानसमें बक-काग नहीं वैसे ही गोस्वामीजीके मानसमें जबतक कविताके अङ्ग नहीं थे, तबतक बक-कागका रूपक भी न था। बक-काग मर्त्यलोकमें हैं, सरयू मर्त्यलोकमें आयीं इससे यहाँ सब हैं। इसी तरह जब कविके हृदयसे निकलकर कथाका रूपक बाँधा गया तब बक-कागका भी कथामें वर्णन हुआ।

नोट—१(क) ☞ कलि-अघ व कलिका वर्णन उत्तरकाण्डमें है, यथा—*'कलिमल ग्रसे धर्म सब……'* से *'सुनु ब्यालारि काल कलि मल अवगुन आगार'* तक (उ० ९७ से १०२ तक) (मा० प्र०)। (ख) *'खल अघ अवगुन'* का वर्णन बालकाण्डके आदि और उत्तरकाण्डके मध्यमें है; यथा—*'बहुरि बंदि खलगन सतिभाएँ। जे बिनु काज दाहिनेहु बाएँ॥'* से *'खल अघ अगुन साधु गुन गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा॥'* तक। (१। ४। १) से (१। ६। ३) तक, *'सुनहु असंतन्ह केर सुभाऊ'* से *'स्वारथ रत परलोक नसाना।'* (७। ३९। १) से (७। ४१। ४) तक है। फिर दोहा १२१ में भी कुछ है—*'पर दुख हेतु असंत अभागी। सन इव खल परबंधन करई। खाल कढ़ाइ बिपति सहि मरई॥'* से *'जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू।'* तक (७। १२१। १५—२०) इत्यादि इससे उत्तरकाण्डमें जो वर्णन है वह 'खल-अवगुन-कथन' यहाँ अभिप्रेत है; यह मत मा० प्र० का है और यही ठीक जान पड़ता है। बैजनाथजी तथा और भी एक-दो टीकाकार *'खल अघ अगुन……'* इत्यादि जो बालकाण्डमें है उसे 'खल-अवगुन-कथन' में लेते हैं। मा० मा० कार इसपर लिखते हैं कि पूर्व वर्णन क्रमसे हो रहा है, इसलिये फिर लौटकर बालकाण्डमें जाना प्रसंग-विरुद्ध जान पड़ता है। साथ ही एक बड़ा दोष इसमें यह है कि यह प्रसंग कीर्ति-सरयूका नहीं है, यह तो कविके वन्दना-प्रकरणका एक अंश है।

कीरति सरित छहूँ रितु रूरी। समय सुहावनि पावनि भूरी॥ १॥

शब्दार्थ—रितु (ऋतु)—प्राकृतिक अवस्थाओंके अनुसार वर्षके दो-दो महीनेके छः विभाग। ये छः हैं। इनके नाम मुं० गुरुसहायलालके टिप्पणमें आये हैं और आगे अर्धालियोंमें कविने स्वयं दिये हैं। **रूरी**=(सं० रुढा। रूढ=प्रशस्त)= सुन्दर, पक्की। भूरी=बहुत

अर्थ—यह कीर्तिनदी छहों ऋतुओंमें सुन्दर है। सब समय (वा, समय-समयपर) बहुत ही सुहावनी और पावनी है॥ १॥*

टिप्पणी—१ (क) *'छहूँ रितु रूरी'* इति । भाव यह है कि जिस ऋतुका जो धर्म है वही उसकी शोभा है। यहाँ सब ऋतु अपने-अपने धर्मके सहित हैं। इसीसे यह नदी सब समयमें सुहावनी है। (ख) यहाँ कीर्तिनदीका छहों ऋतुओंमें सुन्दर होना कहा है (और आगे इन ऋतुओंका वर्णन किया है)। अर्थात् (१) श्रीपार्वती-महादेवविवाह सुन्दर, (२) प्रभुजन्मोत्सव सुन्दर, (३) श्रीरामविवाह-समाज सुन्दर, (४) श्रीराम-वन-गमन सुन्दर, यथा—*'कहेउँ राम बन गवन सुहावा।'* (२। १४२। ४) (५) *'निशाचर रारी'* (अर्थात् निशाचरोंसे संग्राम) सुन्दर—इसके सुन्दर होनेका हेतु भी बता दिया है। वह यह कि *'सुरकुल सालि सुमंगलकारी'* है और, (६) श्रीरामराज सुन्दर और विशद है।

नोट—१ *'छहूँ रितु रूरी'* कहकर कीर्तिनदीकी सब दिन बड़ाई दिखायी। और नदियाँ तो काल और देश पाकर पवित्र होती हैं—**'देशे देशे तद्गुणाः सविशेषाः'** पर यह सदा सुन्दर है। इसकी शोभा नित्य नवीन बनी रहती है, कभी घटती नहीं। (सू० मिश्र) पुनः, यह भी जनाया कि परिवर्तन तो होता है, पर वह उसे नित्य नव-नवायमान बनाये रखनेमें सहायक होता है। अतः परिवर्तन भी शोभाके उत्कर्षका कारण है। (वि० त्रि०)

नोट—२ *'समय सुहावनि ⋯'* के भाव— (क) 'जैसे श्रीसरयूजी सब ऋतुओंमें सुन्दर हैं, पर समय-समयपर अति सुहावनी और अति पावनी हो जाती हैं (जैसे कार्तिक, श्रीरामनवमी आदिपर), वैसे ही कीर्तिनदी सब ऋतुओंमें सुन्दर है, पर समय-समयपर यह भी बहुत सुहावनी और पावनी है।' (मा० प्र०) (ख) जिस कथाभागको जिस ऋतुसे उपमित किया गया, उससे उस ऋतुकी शोभा पायी जायगी। किस भागसे किस ऋतुकी शोभा है, यह कवि आगे स्वयं कह रहे हैं। (वि० त्रि०)

सन्त श्रीगुरुसहायलालजी लिखते हैं कि 'श्रुति-वाक्य है कि वसन्तऋतुके चैत्र-वैशाख मासमें ओषधियाँ उत्पन्न होती हैं; वनस्पति पकती हैं; इसी कारण उन (मासों) के नाम मधु और माधव हैं। ग्रीष्मके ज्येष्ठ-आषाढ़ मासमें सूर्य अधिक तपते हैं, इसीसे उन्हें शुक्र और शुचि कहते हैं। वर्षाके श्रावण-भाद्रपद मासमें आकाशसे वर्षा होती है, इसीसे उनका नाम नभ और नभस्य है। शरद्ऋतुके आश्विन-कार्तिक मासमें रसवान् ओषधियाँ पकती हैं, इसीसे उन्हें इष् और ऊर्ज कहते हैं। हेमन्तऋतुके अग्रहण और पौष मासमें प्रजा शीतवश हो जाती है, इसीसे उन्हें सह और सहस्य कहते हैं। शिशिरऋतुमें माघ-फाल्गुन मासमें सूर्यका तेज अधिक होता है; इस कारण उनका नाम तप और तपस्य है। इससे इस चौपाईका भाव यह हुआ कि 'कीर्तिनदी छहों ऋतुओंमें सुन्दर है और पावन तथा सुहावन समय तो यहाँ भूरी अर्थात् बहुत ही है। तात्पर्य यह है कि अन्य तीर्थोंमें कभी-कभी स्नान-क्रियामें विशेष फल होते हैं और यहाँ तो सर्वदा ही। पुनः, मेला इत्यादिमें बहुतेरे सुहावन होते हैं और यह समाजियोंद्वारा सदा ही सुहावन है।'

महात्मा हरिहरप्रसादजी दोनों भाव देते हैं। वे किसी-किसी समयमें बड़ी शोभा और पवित्रताका उदाहरण यह देते हैं कि 'जैसे वन-गमन आदि लीलाएँ तारनेमें समर्थ हैं; पर जन्म, विवाह आदि लीलाएँ अति सुहावनी-पावनी हैं।

नोट—३ *'पावनि भूरी'* अर्थात् बहुत पवित्र। *'पावनि भूरी'* कहा, क्योंकि यह कीर्ति श्रीरामजीकी है। छहों कथाविभागोंकी पावनताके प्रमाण—उमाशम्भुविवाहरूपी हेमन्तऋतुकी पावनता, यथा—*'कल्यान काज बिबाह मंगल सर्बदा सुख पावहीं।'* (१। १०३) प्रभुजन्मोत्सव-शिशिरकी पावनता, यथा—*'यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा।'* (१। १९२) श्रीरामविवाह-समाज ऋतुराजकी, यथा—*'तिन कहुँ सदा उछाहु।'* (१। ३६१) श्रीरामवन-गमन ग्रीष्मकी, यथा—*'अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ। बसहुँ*

* मा० पत्रिकामें अर्थ इस प्रकार किया है—'इस रामकथा-नदीमें समय (समय) पर सोहावनी, पवित्र और बहुत (अनेक लोगोंकी) कीर्ति (कथा) जो है, वे छहों ऋतु हैं।'

लखनु सियरामु बटाऊ॥ रामधामपथ पाइहि सोई।' (२। १२४) निशाचरारि वर्षाकी, यथा—*'बिजय बिबेक बिभूति नित तिन्हहिं देहिं भगवान।'* (६। १२०) और श्रीरामराज्यसुखादि शरद्-ऋतुकी पावनता, यथा—*'सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं। अंतकाल रघुपतिपुर जाहीं॥ ....'* (७। १५)

नोट—४ (क)—यहाँ ऋतुप्रकरण उठानेका कारण मानस-परिचारिकाकार यह लिखते हैं कि 'नदीका रूपक कहने लगे सो नदीमें जितनी सहायत्व रही वह अयोध्याकाण्डभरमें हो गयी, किञ्चित् उत्तरकाण्डमें पाया। आगे अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर और लंकाकाण्डमें ये न मिले, इसलिये ऋतुप्रकरण उठाया। और त्रिपाठीजी लिखते हैं कि श्रीगोस्वामीजी नदीका रूपक यहीं समाप्त करते हैं। उन्होंने अयोध्याकाण्डतक ही मुख्य रामचरित माना। शङ्कर-पार्वतीका ब्याह तथा अरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर, लङ्का और ५१ दोहे-तक उत्तरकाण्डकी कथाओंको उसी कीर्ति-सरितकी विशेष-विशेष अवस्थाओंके शोभारूपमें स्वीकार किया है। यही कारण है कि जिस भाँति बाल और अयोध्या विस्तारके साथ लिखे गये, उस भाँति दूसरे काण्ड नहीं लिखे गये। वस्तुतः श्रीरामजीके मुख्य गुणग्रामोंका परिचय इन्हीं दो काण्डोंमें हो जाता है, शेष ग्रन्थमें उन्हीं गुणग्रामोंकी शोभामात्रका वर्णन है।'

(ख) बाबा हरीदासजी लिखते हैं कि 'कीर्ति-सरितमें छः ऋतु कहनेका हेतु यह है कि छः ही ऋतुओंमें सब दिन बीतते हैं। इसलिये जो इनको गावेंगे, सुनेंगे उनपर ऋतुओंके दोष न व्याप्त होंगे। अर्थात् कालके गुण न व्यापेंगे।'

शङ्का—'शास्त्रोंमें तो वर्षा-ऋतुमें नदियाँ अपवित्र कही गयी हैं; उनका रजस्वला होना कहा जाता है; यथा—**'सिंहकर्कटयोर्मध्ये सर्वा नद्यो रजस्वलाः। तासु स्नानं न कुर्वन्ति वर्जयित्वा समुद्रगाः॥'** तब सरयूको छहों ऋतुओंमें रूरी और पावनी कैसे कहा?'

समाधान—(१) रजोधर्म बाल्य और वृद्धा-अवस्थाओंमें नहीं होता। गङ्गा-यमुना-सरयू आदि वृद्धा-अवस्थाकी कही जाती हैं। ये जगज्जननी कही जाती हैं और सदैव पवित्र हैं। इसीसे सदा रूरी, सुहावनी और पावनी हैं। (२) शङ्कामें दिये हुए प्रमाणसे भी यह दोष श्रीसरयूजीमें नहीं लग सकता; क्योंकि ये 'समुद्रगा' हैं। (३) उपमाका केवल एक देश ही यहाँ लिया गया है, अतः यह शङ्का नहीं रह जाती। (४) श्रीकान्तशरणजी कहते हैं कि 'साथ ही यह भी लिखा है—**'नदीसु मातृतुल्यासु रजोदोषो न विद्यते'** (कृत्यशिरोमणि), **'न दुष्येत्तीरवासिनम्'** (निगम)।'

हिम हिमसैलसुता सिव ब्याहू। सिसिर सुखद प्रभु-जनम उछाहू॥ २॥

शब्दार्थ— **हिम**=हेमन्त-ऋतु। **हिमसैलसुता**=हिमाचलराजकी पुत्री श्रीपार्वतीजी। **सिसिर**=शिशिर।

अर्थ—श्रीशिवपार्वती-विवाह हेमन्त-ऋतु है। श्रीरामजन्म-महोत्सव सुखदायी शिशिर-ऋतु है॥ २॥

नोट—१ यहाँसे कथाका ऋतुके धर्मसे मिलान वर्णन किया जा रहा है। या, यों कहिये कि कीर्त्ति-नदीके ऋतुओंके पृथक्-पृथक् स्वरूपोंका निरूपण यहाँसे चला और सुधाकर द्विवेदीजी कहते हैं कि 'इस मानसमें जो बहुत लोगोंकी कीर्तिरूपी छः ऋतुएँ हैं, उनमें संशय न हो इसलिये अलग-अलग कहते हैं। ऋतुवर्णनके व्याजसे गोसाईंजीने रामायणका पूरा-पूरा स्वरूप दिखलाया है।'

नोट—२ प्राचीन कालमें किसी समयमें संवत्सरका प्रारम्भ मार्गशीर्षमास अर्थात् हेमन्त-ऋतुसे होता था। अमरकोशमें मार्गशीर्षका नाम आग्रहायणिक मिलता है। जिसकी व्याख्या सिद्धान्तकौमुदीमें **'आग्रहायण्यश्वत्थात् ठक्।'** (४। २। २२) इस सूत्रपर इस प्रकार की गयी है—**'अग्रेहायनमस्या इत्याग्रहायणी। आग्रहायणी पौर्णमासी अस्मिन् सः आग्रहायणिकोः मासः॥'** अर्थात् जिसका संवत्सर आगे है, वह आग्रहायणी और आग्रहायणी पूर्णमासी जिस मासमें है उसका नाम आग्रहायणिक है।

सिद्धान्तकौमुदीकारके पुत्रने अमरकोशके इस शब्दकी व्याख्यामें यह लिखा है कि **'ज्योत्स्नादित्वात्'** (वा० ५। २। १०३) **अणि 'आग्रहायणः' अपीति पुरुषोत्तमः॥'** अर्थात् श्रीपुरुषोत्तमजीके मतसे **'आग्रहायण'** ऐसा भी शब्द होता है। (इसीका अपभ्रंश हिन्दीभाषामें 'अगहन' है)

उपर्युक्त व्याख्यासे स्पष्ट है कि अगहनकी पूर्णिमा संवत्सरकी पहली पूर्णिमा है अर्थात् संवत्सरका प्रारम्भ अगहनसे होता है।

अमरकोशके कालवर्गमें मासोंके नामोंकी गणना मार्गशीर्षसे और ऋतुओंके नामोंकी गणना हेमन्तसे की गयी है एवं ऋतुगणनाके अन्तमें कहा गया है कि मार्गादि मासोंके दो-दो मासोंका एक-एक ऋतु होता है। यथा—'**षडमी ऋतवः पुंसि मार्गादीनां युगैः क्रमात्।**' (२०) और प्रारम्भमें '**द्वौ द्वौ मार्गादिमासौ स्यादृतुः।**' (१। ४। १३) यह भी कहा है। इससे यह बात सिद्ध होती है कि अमरकोशकारके समयमें अगहन माससे संवत्सरका आरम्भ होता था।

श्रीसुधाकर द्विवेदीजीका भी यही मत है। हिन्दी-शब्दसागरकार भी लिखते हैं कि 'प्राचीन वैदिक कर्मके अनुसार अगहन (आग्रहायण) वर्षका पहिला महीना है। गुजरात आदिमें यह क्रम अभीतक प्रचलित है।'

अतः गोस्वामीजीनें ऋतुका रूपक बाँधनेमें इसी ऋतुसे प्रारम्भ किया है।

इसपर यह प्रश्न होता है कि 'कम-से-कम गोस्वामीजीके समय तो उत्तरीय भारतमें मार्गशीर्षसे संवत्सरके आरम्भकी परम्परा वा व्यवहारका प्रमाण उपलब्ध नहीं है, किन्तु वसन्त (चैत्र) से ही वर्षका आरम्भ सुना जाता है तब वसन्तको छोड़कर हिम-ऋतुसे प्रारम्भ करनेका क्या हेतु है?'

समाधान यह है कि गोस्वामीजी श्रीरामराज्यको शरद्-ऋतुसे उपमित करना चाहते हैं, क्योंकि शरद्-ऋतु विशद, सुखद और सुहावनी है। यदि वर्तमान प्रथाके अनुसार वसन्तसे प्रारम्भ करते तो अन्तमें शिशिर-ऋतु पड़ती जो सबको उतना सुखद नहीं होता जितना शरद्।

श्रीशुकदेवलालजी लिखते हैं कि प्रथम हिम-ऋतु कहा; क्योंकि हिम-ऋतुका प्रारम्भ मार्गशीर्ष प्रथम माससे है, इस क्रमसे कि नारायण अपने केशवादि द्वादश नामोंसे द्वादश महीनोंके स्वामी और पूज्य द्वादश मासोंके माहात्म्योंमें प्रसिद्ध हैं, यथा—(१) केशव मार्गशीर्ष, (२) नारायण पौष, (३) माधव माघ, (४) गोविन्द फाल्गुन, (५) विष्णु चैत्र, (६) मधुसूदन वैशाख, (७) त्रिविक्रम ज्येष्ठ, (८) वामन आषाढ़, (९) श्रीधर श्रावण, (१०) हृषीकेश भाद्रपद, (११) पद्मनाभ आश्विन और (१२) दामोदर कार्तिक—ये हिमसे शरद्पर्यन्तके महीने हैं।

मुं० रोशनलालजी लिखते हैं कि 'प्रथम हिम-ऋतु-वर्णन करनेका आशय यह है कि हिम-ऋतु और शङ्कर-पार्वती-विवाहका एक क्रम है। वह यह कि इस विवाहमें त्रिलोकी कम्पायमान हो गया—'***भयउ कोप कंपेउ त्रयलोका', 'कहहिं बचन सिसु कंपित गाता'*** ऐसे ही हिममें सब काँपते हैं।

प्रश्न—२ कीर्ति-सरयूके ऋतु-प्रसंगको उमा-शम्भु-विवाहसे ही क्यों प्रारम्भ किया?

उत्तर—(क) मानसप्रकरण इस श्रीरामचरितमानसग्रन्थमें मूलरामायण-सरीखा है। गोस्वामीजीने श्रीराम-चरितमानसकथाके प्रारम्भमें यह दिखाया है कि किस हेतुसे और किस प्रकार मानसका जगत्में प्रचार हुआ, ऐसा करनेमें प्रथम शिव-पार्वती-विवाहका वर्णन किया है, तब राम-जन्मोत्सवका। इसी कारण यहाँ भी वही क्रम रखना उचित ही था।

(ख) शिव-पार्वती-विवाहका कथन-श्रवण कल्याणकारी है; यथा—'***यह उमा संभु बिबाह जे नर नारि कहहिं जे गावहीं। कल्यान काज बिबाह मंगल सर्वदा सुख पावहीं॥***' (१। १०३) अतएव आदिमें इसको कहा।

(ग) महादेव-पार्वती इस कथाके प्रचारके प्रथम आचार्य हैं। अतः उन्हींसे प्रारम्भ किया।

नोट—३ उमा-शम्भु-विवाह-प्रसंगको हेमन्त-ऋतुसे उपमित करनेके भाव कि—(क) हेमन्त-ऋतुमें हिम (बर्फ, पाला) बहुत पड़ता है और उमाजी हिमशैलसुता हैं जो शिवजीको अत्यन्त प्रिय हैं। इसलिये इस कीर्ति-सरयूमें हिमके स्थानपर हिमशैलसुताविवाह बहुत ही उपयुक्त है। (ख) हिम-ऋतुमें दो मास मार्गशीर्ष और पौष, वैसे ही हिमशैलसुता शिव-ब्याहमें भी दो चरित (उमाचरित तथा शिवचरित) हैं।

यथा—'*उमाचरित सुंदर मैं गावा। सुनहु संभु कर चरित सुहावा।*' (१। ७५। ६) (वि० त्रि०) (ग) जाड़ा अमीरोंको सुखदायी और गरीबोंको दुःखदायी होता है, वैसे ही यह विवाह देवताओंको सुखदायी हुआ। यथा—'*तारक असुर भयउ तेहि काला॥*' (१। ८२। ५) से '*एहि बिधि भलेहि देव हित होई।*' (१। ८३) तक। गरीब स्थानमें मेना-अम्बा आदि हैं। इन्हें भय और दुःख हुआ, यथा—'*बिकट बेष रुद्रहिं जब देखा। अबलन्ह उर भय भयउ बिसेषा॥*' (१। ९६) से '*बहु भाँति बिधिहि लगाइ दूषन नयन बारि बिमोचहीं।*' (१। ९७) तक। (घ) सरयूमें हिम-ऋतु आनेपर जाड़ा होता है, लोग काँप उठते हैं, परन्तु उससे भोजन पच जाता है, इससे बड़े लोग प्रसन्न रहते हैं। वैसे ही कीर्ति-सरयू उमाशम्भुविवाहरूप हिमऋतुमें श्रीमेनाजी आदिको प्रथम दुःखरूप जाड़ा लगा। सब देवता अपना-अपना स्थान पाकर खुश हुए—यही भोजनका पचाना है। (मा० प्र०) (ङ) हिम-ऋतुमें बिना अग्निके जाड़ेका नाश नहीं होता, सो शङ्कर और पार्वतीके ब्याहके उपक्रममें ही जाड़ा और आगका सामना पड़ा। कामको जाड़ा (हिम) से और शङ्करजीको अग्निसे उपमित किया ही गया है; यथा—'*तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाइ नहि काऊ॥ गएँ समीप सो अवसि नसाई। असि मन्मथ महेस कै नाई॥*' (१। ९०) हिम-ऋतु कामियोंको अति सुखद है और नित्य-कृत्यमें महाविघ्नप्रद है, इस भाँति भी जाड़ेका कामसे साधर्म्य मिलता है। कामरूपी जाड़ेका प्रकोप शङ्कररूपी अग्निपर हुआ जिसका वर्णन '*तब आपन प्रभाउ बिस्तारा।*' (१। ८४। ५) से '*धरी न काहू धीर,* (८५) तक है। जाड़ारूपी कामका यह पुरुषार्थ त्रैलोक्यको कम्पायमान करनेमें समर्थ तो हुआ, परन्तु कालाग्निके समान रुद्रभगवान्‌को देखते ही सङ्कुचित हो गया। (उसने फिर अपना प्रभाव दिखाया) '*तब सिव तीसर नयन उघारा। चितवत कामु भयउ जरि छारा।*' (१।८७) यह तो हुई मार्गशीर्षकी बात, पौषमें तो अग्निदेव भी मन्दे पड़ गये, कारण कि भगवती हिमगिरिनन्दिनीके साथ ब्याह हो गया। (वि० त्रि०)

प्रश्न—श्रीशिवपार्वतीब्याह रामचरितके अन्तर्गत कैसे है?

उत्तर—श्रीरामचरितका बीज उमाशम्भु-विवाहप्रसङ्गमें विदित है। सतीतनमें जो व्यामोह हुआ था उसकी निवृत्तिके लिये श्रीरामचरितका प्रादुर्भाव यह विवाह होनेसे ही हुआ। अतः उसे रामचरितके अन्तर्गत मानना अनुचित नहीं है। दूसरे, यह विवाह वस्तुतः रामचरित ही है। भगवान् शङ्करने सतीका परित्याग किया। समय पाकर सतीका हिमाचलके यहाँ जन्म हुआ। पर ब्याह कैसे हो? अतः अब रामचरित सुनिये—'*नेमु प्रेमु संकर कर देखा। अबिचल हृदय भगति कै रेखा॥ प्रगटे राम कृतग्य कृपाला॥*' (१। ७६। ४-५) से '*संकर सोइ मूरति उर राखी।*' (७७। ७) तक। श्रीरामजीके अनुरोधसे यह ब्याह हुआ। अतः इसका श्रीरामचरितके अन्तर्गत होना सभी विधिसे प्राप्त है। (वि० त्रि०)

नोट—४ उमाशम्भु-विवाहप्रसङ्ग मा० प्र० के मतानुसार '*कंचन थार सोह बर पानी। परिछन चली हरहि हरषानी।*' (१।९६। ३) से और किसीके (सम्भवतः पं० रामकुमारजीके) मतसे '*सुदिनु सुनखतु सुघरी सोचाई।*' (१। ९१। ४) से '*यह उमा संभु बिबाह जे नर नारि कहहिं जे गावहीं।*' (१०३) तक है।

नोट—५ '*सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू*' इति। श्रीरामविवाहोत्सवको शिशिरकी उपमा दी, क्योंकि—(क) दोनों सुखद हैं। (ख) माघमें मकरसंक्रान्तिके स्नानके लिये तीर्थमें यात्रियोंका समाज जुटता है और फाल्गुनमें होली होती है, जिसमें अबीर, गुलाल, रंगकी बहार देखनेमें आती है। यहाँ कीर्ति-सरयूमें श्रीरामजन्मोत्सव-समय देव, ऋषि, गन्धर्व, मनुष्य इत्यादिका समाज, गान-तान-नृत्य और उसपर '*ध्वज पताक तोरन पुर छावा॥ मृग मद चंदन कुंकुम कीचा। मची सकल बीथिन्ह बिच बीचा॥ अगर धूप बहु जनु अँधियारी। उड़इ अबीर मनहु अरुनारी॥*' (१। १९४-१९५) यह होली हुई। (मा० प्र०) (ग) शिशिर-ऋतुका गुण है कि काँपनेको कम करता है और आनन्द देनेवाले वसन्तके आगमनकी सूचना देता है। (पाँ०) (घ)—शिशिरमें जाड़ेकी सर्वथा निवृत्ति तो नहीं होती पर आशा हो जाती है कि अब जाड़ा गया। रामजन्मसे साम्य यह है कि श्रीरामजन्ममात्रसे रावण तो मरा

नहीं, पर उसके वधकी आशा सबको हो गयी। (मा० प०) (ङ) माघमें जाड़ेकी अधिकता रहती है वही राक्षसोंकी अनीति है। फाल्गुनमें नाच-गाना-होलीका अनेक उत्सव होता है, वही श्रीरामजीके प्रकट होनेका आनन्द है, शीतस्वरूप राक्षसोंका प्रताप कम होने लगा और रामप्रताप-घाम बढ़ने लगा।' (बै०) (च) शिशिरमें जाड़ेसे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। यहाँ भी महाराज दशरथजीके *'परम प्रेम मन पुलक सरीरा।'* (सु० द्विवेदीजी)

त्रिपाठीजी लिखते हैं कि ''प्रभु-जन्म माघ है और उछाह फाल्गुन।...... श्रीरामकथामें होलीका आनन्द लीजिये। श्रीगोस्वामीजी कहते हैं, *'त्रिविध ताप होली जलै खेलिय अस फाग'* (विनय०) सो त्रिविधतापकी होली तो प्रभुके जन्म लेते ही जल गयी; यथा—*'आनँद मगन सकल पुरबासी।'*...... *'परमानंद पूरि मन राजा', 'ब्रह्मानंद मगन सब लोई।'* (१। १९३-१९४) होलीमें लोग ढोल बजाते, रंग, अबीर, गुलाल खेलते-उड़ाते हैं, वैसे ही श्रीरामजन्मपर *'लै लै ढोर प्रजा प्रमुदित चले भाँति-भाँति भरि भार...... । कुंकुम अगर अरगजा छिरकहिं॥ भरिहिं गुलाल अबीर।......'* (गीतावली) होलीकी उमंगमें बहुत-सी अनुचित बातें भी उचित-सी मान ली जाती हैं, इसी भाँति छोटी-मोटी चोरी भी हास-परिहासमें ही परिगणित होती है। लड़के उछाहभरे स्वाँग बनाये फिरते हैं। यहाँ बड़े-बूढ़ोंकी चोरी देखिये। *'औरो एक कहौं निज चोरी।'* (१९६। ३) से *'बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले'* तक। इस महोत्सवमें सभी सम्मिलित हुए। ऐसे आनन्दके समय यदि अभिसारिका भी अपने प्रियतमसे होलीकी कसक मिटाने चले, तो आश्चर्य क्या? यहाँ रात्रिदेवी अभिसारिका होकर अपने प्रियतम प्राणधन प्रभुसे मिलने चली—*'प्रभुहिं मिलन आई जनु राती।'*

नोट—६ *'प्रभु जनम उछाहू'* यह प्रसङ्ग *'सुनि सिसुरुदन परम प्रिय बानी। संभ्रम चलि आईं सब रानी॥ हरषित जहँ तहँ धाईं दासी। आनँदमगन सकल पुरबासी॥'* (१। १९३। १) से-(मा० प्र० के मतानुसार *'नन्दीमुख सराध करि ——'* से)—*'धरे नाम गुर हृदय बिचारी।'* (१९८। १) तक है।

बरनब राम बिबाह समाजू। सो मुद मंगल मय रितु राजू॥ ३॥

अर्थ—श्रीराम-विवाह-समाजका वर्णन ही आनन्द-मङ्गलमय वसन्त है॥ ३॥

पं० रामकुमारजी—सानुज रामके विवाहका उत्सव नदीकी बाढ़ है। 'राम-विवाह' बाकी रहा सो सीता स्वयंवरकी कथामें गया। इन दोनों ठौरोंसे विवाहका ग्रहण नहीं है, क्योंकि यदि ग्रन्थकार विवाह-वर्णन करते तो समाजको उछाहसे पृथक् कहते, जैसे श्रीशिवपार्वतीजीके विवाहको विवाहसमाजसे पृथक् कहा है; यथा—*'हिम हिमसैल-सुता-सिव ब्याहू'* यह विवाह है और *'उमामहेस-बिबाह-बराती। ते जलचर अगनित बहु भाँती॥'* यह समाज है; यथा—*'बिहँसे सिव समाज निज देखी।'*

नोट—१ विवाह-समाजको वसन्त-ऋतुकी उपमा दी है। दोनोंमें समानता यह है कि—(क) दोनों 'मुद-मंगलमय' हैं। (ख) मुं० रोशनलालजी लिखते हैं कि 'वसन्तका गुण है कि पुराने पत्तोंको झाड़कर फूल-फलसहित कर देता है। इसी भाँति विवाहमें लोग पुराने भूषण-वस्त्र उतारकर नये रङ्ग-विरङ्गके भूषण-वस्त्र पहिनते हैं।' (पाँड़ेजी) (ग) जैसे वसन्तमें सब वृक्ष पल्लव-पुष्पोंसे नाना रङ्गके शोभित होते हैं वैसे ही रामविवाहका समाज है। मण्डपकी रचना, बरातका बनाव, हाथी-घोड़े-रथोंकी सजावट, नाना रङ्गके भूषण-वस्त्र पहिने हुए पैदल, इत्यादि विवाह-समाज है, जो वसन्तकी शोभा बन रही है। वसन्त ऋतुराज, वैसे ही रामविवाहसमाज समस्त लीलाका राजा। (मा० प्र०) (घ) वसन्तकी महिमा स्कन्दपुराणमें लिखी है। यह भी लिखा है कि ब्रह्मादिको बनाकर भगवान् लक्ष्मणसहित इस ऋतुमें अपने भक्तोंको वरदान देने आये हैं। ऐसा ही उत्सव रामविवाहमें भी हुआ। (सू० मिश्र) (ङ) विवाहमें तरह-तरहके फूलके ऐसे देश-विदेशसे ठाट-बाटके साथ राजालोग आये, मिथिलाकी नारियाँ कोयल-से भी बढ़कर पञ्चम स्वरसे मङ्गल गाने लगीं—*'सकल सुमंगल अंग बनाए। करहिं गान कलकंठ लजाए॥'* इसलिये इसे ऋतुराज बनाया। (सु० द्विवेदीजी) (च) वसन्तके चैत्र और वैशाख दोनों महीनोंके नाम 'मधु' और 'माधव' हैं। रामविवाहसमाजमें

महाराज दशरथ और जनकजीकी प्रधानता है। गोस्वामीजीने इनको मधु-माधव कहा है। यथा—'*मधु माधव दसरथ जनक मिलब राज रितु-राज।*' (रामाज्ञा-प्रश्न १। ३१) इन दोनों राजाओंका समाज ही ऋतुराज है। अयोध्याजीकी बड़े ठाट-बाटकी बारात और उसके स्वागतकी तैयारीसे बड़ी चहल-पहल मच गयी, मानो वन-उपवनमें साक्षात् ऋतुराजका आगमन हो गया। वसन्तोत्सवमें नगरोंमें बड़ी तैयारी होती है, प्रजावर्ग महोत्सव मनाते हैं। अयोध्या और जनकपुरमें भी बड़ी तैयारी है और प्रजावर्ग आनन्दमें विभोर हैं। यथा—'*जद्यपि अवध सदैव सुहावनि""बीथीं सीचीं॥ चतुर सम चौकें चारु पुराइ।*' (२९६) '*रचे रुचिर बर बंदनिवारे।*' से '*तेहि लघु लगहिं भुवन दस-चारी।*' (८९। ७) तक। (वि० त्रि०)

ग्रीषम दुसह राम-बन-गवनू। पंथ-कथा खर आतप पवनू॥ ४॥

शब्दार्थ—**ग्रीषम** (ग्रीष्म)—गर्मीके महीने, ज्येष्ठ-आषाढ़। **दुसह** (दुःसह)=जो सहा न जा सके, असह्य, कठिन। 'दुसह' का प्रयोग पद्यहीमें होता है। **आतप**=तपन। **खर**=तीक्ष्ण, तेज, कड़ी। यथा—'**तिग्मं तीक्ष्णं खरं तद्वत्**' (अमर० १। ३। ३५)।

अर्थ—श्रीरामचन्द्रजीका दुःसह वन-गमन ग्रीष्मऋतु है और (वनके) मार्गकी कथाएँ कड़ी धूप (घाम) और लू हैं॥ ४॥

टिप्पणी—१ '*ग्रीषम दुसह राम बन गवनू*' इति। (क) 'ग्रीष्म और वनगवन दोनों दुःसह हैं, यह समता है। रामवनगमन दुःख (रूप) है सो ग्रीष्म है।' [ग्रीष्मके दिन बड़े होते हैं और दुःखके दिन भी बड़े होते हैं, यथा—'*निसिहिं ससिहि निंदति बहु भाँती। जुग सम भई सिराति न राती॥*', '*अति परिताप सीय मन माहीं। लव निमेष जुग सय सम जाहीं॥*' (१। २५८। ८) '*देखि परम बिरहाकुल सीता। सो छन कपिहि कलपसम बीता॥*' (५। १२। १२) '*भृगुपति कर सुभाउ सुनि सीता। अर्ध निमेष कलप सम बीता॥*' (१। २७०। ८) इत्यादि। सुखके दिन छोटे होते हैं; यथा—'*मासदिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोइ।*' '*कछुक दिवस बीते एहिं भाँती। जात न जानिय दिन अरु राती॥*' (१। १९७। १) '*सुख समेत संबत दुइ साता। पलसम होहिं न जनियहि जाता॥*' (२। २८०। ८) इत्यादि] (ख) ['उमामहेश-विवाह सुखरूप है, सो हिम-ऋतु है। राम-जन्म-उत्साहमें बड़ा सुख है सो शिशिर है। रामराज शरद् है, रामविवाह-समाज वसन्त है, ये सब सुखके दिन हैं सो छोटे हैं। लड़ाई वर्षा है, सुरकुलशालिकी पोषणहारी है; इसके दिन भी ग्रीष्मके दिनसे छोटे होते हैं।' (ग) 'जैसे वसन्तके दिये हुए ऐश्वर्यको तीक्ष्ण घाम और पवन नष्ट कर देते हैं, वैसे ही वनगमनकथाने विवाहोत्सव और समाजको नष्ट कर दिया।' (पाँ०) (घ) रामवनगमनसे सब लोग सूख गये। श्रीरामजीकी शीतल बातोंसे भी कौशल्याजी सूख गयीं। यथा—'*सहमि सूखि सुनि सीतल बानी।*' '*राखि न सकइ न कहि सक जाहू। दूहू भाँति उर दारुन दाहू॥*' सुखा देना और दाह पैदा करना—यह ग्रीष्मका धर्म है, अतः इसे ग्रीष्म कहा। (सु० द्विवेदीजी) (ङ) ग्रीष्ममें सन्तापके कारण सूर्य हैं और रामवनगमनमें सन्तापका कारण श्रीरघुपति-वियोगविरह है; यथा—'*नारि कुमुदिनीं अवध सर रघुपति-बिरह दिनेस।*' (७। ९) सरकारके विरह-दिनेशके उदयसे संसार सन्तप्त हो उठा। यथा—'*राम-गवनु-बन अनरथ मूला। जो सुनि सकल बिस्व भइ सूला।*' (२। २०७) '*नगर नारि नर निपट दुखारी।*' (२। १५८) (च) ग्रीष्ममें सूर्यके प्रखर किरणोंसे जलके सूखनेसे मछली व्याकुल होती है और यहाँ रघुपतिविरह-दिनेशके प्रखर प्रतापसे प्रिय परिजन परम व्याकुल हो गये। परिजन मीन हैं; यथा—'*अवधि-अंबु प्रिय परिजन मीना।*' (२। ५७) '*मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन तिमि तुम्हहिं अधीना॥*' (१। १५१) ऐसा वरदान माँगनेवाले राजा दशरथने तो अल्प जलमें पड़े हुए मत्स्यराजकी भाँति अपने शरीरका ही विसर्जन कर दिया। (वि० त्रि०)]

नोट—१ (क) 'दुसह', यथा—'*राम चलत अति भयउ बिषादू। सुनि न जाइ पुर आरत नादू।*' (२। ८१) '*सहि न सके रघुबर-बिरहागी। चले लोग सब ब्याकुल भागी॥*' (२। ८४। ४) '*सूत बचन सुनतहि नरनाहू। परेउ धरनि उर दारुन दाहू""। महा-बिपति किमि जाइ बखानी॥ सुनि बिलाप दुखहू दुख*

धीरजहू कर धीरज भागा॥', 'राम राम कहि·····सुरधाम।' (२। ५२—१५५) तक इत्यादि। (ख) *'बन-गवनू'* प्रसङ्ग—*'सजि बन साज समाज सब बनिता बंधु समेत। बंदि बिप्र गुरु-चरन प्रभु चले करि सबहि अचेत॥'* (२। ७९) से *'रमेउ राम मन ·····।'* (२। १३६) *'कहेउँ राम बन गवनु सुहावा।'* (२।१४२। ४) तक (मा० प्र० के मतसे *'बैठि बिटपतर दिवसु गँवावा।'* (२। १४७। ४) तक) है। और फिर अरण्यकाण्डमें *'जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया। करहिं मेघ नभ तहँ तहँ छाया॥'* इतना।

नोट—२ *'पंथकथा खर आतप पवनू'* इति। (क) कवितावलीमें पन्थकथाका द्रावक वर्णन है। यथा—*'पुर तें निकसी रघुबीरबधू धरि धीर दये मगमें डग द्वै। झलकीं भरि भाल कनी जलकी पुट सूखि गए मधुराधर वै॥ फिर बूझति हैं चलनो अब केतिक पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै॥ तियकी लखि आतुरता पियकी अँखियाँ अति चारु चली जल च्वै॥'* (क० अयो० ११) *'जल को गए लक्खनु हैं लरिका परिखौ पियौ छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े। पोंछि पसेउ बयारि करौं अरु पाय पखारिहौं भूभुरि डाढ़े॥ तुलसी रघुबीर प्रिया श्रम जानि कै बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े। जानकीं नाहको नेहु लख्यो पुलको तनु बारि बिलोचन बाढ़े।'* (क० अयो० १२) *'ठाढ़े हैं नौ द्रुमडार गहें धनु काँधें धरे कर सायकु लै।·····श्रम सीकर साँवरि देह लसै मनो रासि महा तम तारकमै।'* (१३)

(ख) यह तीक्ष्ण लू निषादराजको भी लगी; यथा—*'ग्राम-बास नहिं उचित सुनि गुहहि भएउ दुखु भारु।'* (२। ८८) मार्गमें नंगे पैर पैदल जाते जो भी देखता है उसे यह लू लग जाती है, वह व्याकुल हो जाता है। यथा-*'सुनि सबिषाद सकल पछिताहीं।'* (२। ११०) *'होंहि सनेह-बिकल नर नारी।'* (२। १११) कोई पहुँचानेको तैयार हो जाता है तो कोई जल भरनेको, कोई ज्योतिषशास्त्रको झूठा कहने लगता है, कोई विधिको कोसता है और कोई राजा-रानीको दोष लगाता है। जो जितना ही मृदु था उसे लूने उतना ही अधिक कष्ट दिया। अन्तमें श्रीरामभक्ताग्रगण्य मारुतिजी मिलते हैं और प्रश्न करते हैं—*'कठिन भूमि कोमल-पद-गामी। कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी॥ मृदुल मनोहर सुंदर गाता। सहत दुसह बन आतप बाता॥'* (४। १) बस यहींसे लू बंद हो गयी। महारुद्रावतार पवनकुमारने अब यहाँसे भगवान्‌को पैदल नहीं चलने दिया—*'लिए दुऔ जन पीठि चढ़ाई।'* (४। ४) पन्थकथासे तीन काण्ड भरे हुए हैं। (वि० त्रि०) सु० द्विवेदीजीका मत है कि सीताहरण, जटायुमरण इत्यादि तेज घाम और लू हैं।

नोट—३ ग्रीष्ममें जहाँ इतने दोष हैं वहाँ एक गुण भी है। 'ग्रीष्म है तो गर्म पर सरयूमें उस समय शीतलता हो जाती है। पुनः, ग्रीष्म जितना तपता है उतनी ही अच्छी वर्षाका वह आगम जनाता है। इसी तरह रामवनगमन और पन्थ-कथा है तो विरहरूपी ताप देनेवाली सही, परन्तु श्रीराम-कीर्ति-सरयूके साथसे त्रितापको हर लेती है, इसलिये शीतल है और राक्षसोंके युद्धरूपी वर्षाका आगम है, जिससे सबको सुख होगा।' यथा—*'रावनारि-जसु पावन गावहिं सुनहिं जे लोग। रामभगति दृढ़ पावहिं बिनु बिराग जप जोग॥'* (३। ४६) *'भव-भेषज रघुनाथ-जसु सुनहिं जे नर अरु नारि। तिन्ह कर सकल मनोरथ सिद्ध करहिं त्रिसिरारि॥'* (४। ३०) *'अजहुँ जासु उर सपनेहु काऊ। बसहुँ लखन-सियराम बटाऊ॥ रामधामपथ पाइहि सोई।'* (२। १२४। १-२)

बरषा घोर निसाचर रारी। सुरकुल सालि सुमंगलकारी॥ ५॥

शब्दार्थ—**रारी**=संग्राम, युद्ध, झगड़ा।

अर्थ—घोर निशाचरोंके साथ घोर विरोध और लड़ाई घोर वर्षा है। जो देवसमाजरूपी धानोंको अत्यन्त मङ्गलकारी है॥ ५॥

वर्षा और निशाचरोंकी लड़ाईमें समता

१—(क) घोर वर्षा और निशाचर (रारि) दोनों भयानक हैं।

(ख) वर्षासे धानका पोषण होता है, निशाचर-रारि सुरपोषण करनेवाली है। ज्यों-ज्यों राक्षस मरते हैं, देवता सुखी होते हैं। खरदूषणादिका वध होनेपर *'हरषित बरषहिं सुमन सुर बाजहिं गगन निसान। अस्तुति*

करि करि सब चले सोभित बिबिध बिमान॥' (३। २०) पुनः, मारीचके मरनेपर *'बिपुल सुमन सुर बरषहिं गावहिं प्रभु गुनगाथ। निजपद दीन्ह असुर कहँ दीनबंधु रघुनाथ॥'* (अ० २७) पुनः, कुम्भकर्ण-वधपर *'सुर दुंदुभीं बजावहिं हरषहिं। अस्तुति करहिं सुमन बहु बरषहिं॥'* (६। ७०) पुनः, मेघनाद-वधपर *'बरषि सुमन दुंदुभीं बजावहिं। श्रीरघुनाथ बिमल जसु गावहिं॥' 'तासु मरन सुनि सुर गंधर्बा। चढ़ि बिमान आये सुर सर्बा॥'* (६। ७६) पुनः रावण-वधपर *'बरषहिं सुमन देव मुनि बृंदा। जय कृपाल जय जयति मुकुंदा॥'* (६। १०२) (पं० रामकुमारजी)

(ग) वर्षाऋतुमें दो मास श्रावण-भादों वैसे ही यहाँ भी पहले सेनापतियोंका युद्ध फिर कुम्भकर्ण, मेघनाद और रावणका घोर युद्ध इस प्रकार दो विभाग हैं (त्रिपाठीजीके मतानुसार रावणयुद्ध भादों है और उसके पूर्वका श्रावण)।

२—वर्षाऋतु सावन-भादोंमें होती है। जैसे इन महीनोंमें वर्षाकी झड़ी लग जाती है, वैसे ही निशाचर-संग्राममें बाणादिकी वृष्टि हुई। दोनों दल मेघ हैं। मेघ गरजते हैं, बिजली चमकती है, वैसे ही यहाँ तलवार आदि अस्त्र-शस्त्र चमकते हैं और बाणके लगनेसे राक्षस गरजते हैं, पर्वतोंके प्रहार वज्रपात हैं, बाण बूँदें हैं। कपिलंगूल इन्द्रधनुष है इत्यादि। यथा—(खरदूषण-संग्राममें) *'लागे बरषन राम पर अस्त्र सस्त्र बहु भाँति'* से *'करि उपाय रिपु मारे छन महँ कृपानिधान'* तक (अ० १९-२०), (कुम्भकर्णके युद्धमें) *'सत्यसंध छाँड़े सर लच्छा। कालसर्प जनु चले सपच्छा॥''''लागत बान जलद जिमि गाजहिं''''''।* (६। ६७) तथा पुनः (रावण-संग्राममें) *'एही बीच निसाचर-अनी। कसमसात आई अति घनी॥ देखि चले सनमुख कपि भट्टा। प्रलय काल के जनु घन घट्टा॥ बहु कृपान तरवारि चमंकहिं। जनु दहँ दिसि दामिनीं दमंकहिं॥ गज रथ तुरग चिकार कठोरा। गर्जहिं मनहुँ बलाहक घोरा॥ कपि लंगूर बिपुल नभ छाए। मनहुँ इंद्रधनु उए सुहाए॥ उठइ धूरि मानहुँ जलधारा। बान बुंद भइ बृष्टि अपारा॥ दुहुँ दिसि पर्बत करहिं प्रहारा। बज्रपात जनु बारहिं बारा॥ रघुपति कोपि बान झरि लाई।''''''* ' इत्यादि (६। ८६) ☞ श्रीरामरावण-संग्राममें वर्षाका पूरा रूपक है। (पं० रामकुमारजी)

३—प्रथम पुरवाई चलती है तब मेघ एकत्र होते हैं। *'मिला असुर बिराध मग जाता। आवत ही रघुबीर निपाता॥'* (३। ७। ६) इस विराध-वध एवं कबन्ध-वधको प्रथम पुरवैयाका चलना और मेघका आना समझो। *'तेहि पूछा सब कहेसि बुझाई। जातुधान सुनि सेन बनाई॥'* (अ० १८। ३) से *'धुआँ देखि खरदूषन केरा।'* (३। २१। ५) तक बड़ा भारी दवंगरा है। (ग्रीष्मऋतुके आषाढ़मासमें ही पहला पानी पड़ता है। उसीको दवंगरा कहते हैं) वानरोंका कर्तव्य *'प्रान लेहिं एक एक चपेटा।'* (४। २४। १) और श्रीहनुमान्‌जीका कर्तव्य जो सुन्दरकाण्डमें है वह दूसरा दवंगरा है। (मा० प्र०) इन सबोंको धानमें अंकुर जमनेके समान समझिये, क्योंकि इनसे देवताओंको भरोसा हुआ कि श्रीरामचन्द्रजी हमारा दुःख अवश्य हरेंगे। मेघनाद-युद्ध मघा-नक्षत्रकी वर्षा है जो वर्षाके मध्यमें होती है; यथा *'डारइ परसु परिघ पाषाना। लागेउ बृष्टि करइ बहु बाना॥ दस दिसि रहे बान नभ छाई। मानहु मघा मेघ झरि लाई॥'* (६। ७२) मघाकी उपमा मघाके समयमें ही दी गयी। आगे चलकर भी बाणवर्षा बहुत है पर मघासे उपमा नहीं दी गयी। मेघनाद-वधके साथ श्रावण समाप्त हो जाता है, रक्षापूर्णिमा हो जाती है। मेघनाद-वधके साथ ही लङ्का जेय हो गयी, फलतः देवताओंकी रक्षा हुई। *'जय अनंत जय जगदाधारा। तुम्ह प्रभु सब देवन्ह निस्तारा॥'* (६। ७६) कुम्भकर्ण, मेघनाद और रावण-युद्ध घोर वर्षा है, क्योंकि इनमें वर्षाका भारी रूपक है।

४—मा० प्र० का मत है कि *'एही बीच निसाचर अनी।'''''' जनु नावरि खेलहिं सरि माहीं॥'* (६। ८७। ६) तक *'घोर निसाचर रारि'* (घोर वर्षा) है, इसके आगे रावणके युद्धभर कुआरी वर्षा है। सम्भवतः इसका आशय यह है (जैसा त्रिपाठीजी लिखते हैं) कि वर्षाघोर समाप्त हो जाय परन्तु बिना आश्विनमें हस्त-नक्षत्रका जल पाये शालिका पूरा मङ्गल नहीं होता। अतः हस्तकी वृष्टि भी चाहिये।

त्रिपाठीजीका मत है कि *'वर्षाघोर निसाचर रारी'* लङ्काकाण्ड दोहा १०१ *'सुर सभय जानि कृपाल रघुपति चाप सर जोरत भए।'* पर समाप्त हुई और *'कृपादृष्टि करि बृष्टि प्रभु अभय किए सुर बृंद।......'* १०२। हस्तकी वृष्टि है।

वि० त्रि०—सात-दोहोंमें चारों फाटकोंकी लड़ाई है, ७ दोहोंमें कुम्भकर्ण लड़ा है और मेघनादकी तीन लड़ाइयाँ ८ दोहोंमें कही गयी हैं। अत: ७+७+८=२२ दोहे हुए और २२ दोहोंमें केवल राम-रावण युद्ध हुआ। पहली घटा सावनकी उठी। लङ्काके शहर-पनाहके बुर्जोंपर निशाचरी सेना आ डटी। जो ऐसी जान पड़ती थी कि *'मेरु के सृंगन्हि जनु घन बैसे।'* तोपोंका दगना और वीरोंका सिंहनाद ही मेघोंका गर्जन है।—*'जनु गर्जत प्रलय के बादले'।* श्रावण समाप्त होते-न-होते मघा लग गया। मेघनाद-युद्ध मघाकी वर्षा है। भाद्रपदमें राम-रावणसंग्राम है। शास्त्रोंमें भाद्रकृष्ण चतुर्दशीके दिनकी नदीके बाढ़को प्रमाण माना है; अतः यहाँ भादोंमें ही शोणित नदीकी बाढ़ कही है। इस स्थलपर वर्षाका पूरा रूपक है। यथा—*'देखि चले सनमुख कपि भट्टा'* से *'बीर परहिं जनु तीर तरु...... ।'* (८६) तक। इतना ही नहीं, नदीमें बाढ़ आनेपर इन्द्रद्युम्न नहाने लगता है। कहीं नदीके आधे तटपर मुर्दे रखे जाते हैं, कहीं मछलीका शिकार होता है, कहीं स्त्रियाँ नावर खेलती हैं, कहीं कजली होने लगती है। रुधिरसरिताके सम्बन्धमें भी सभी कुछ दिखलाया गया है। यथा—*'मज्जहिं भूत पिसाच बेताला।'* (६। ८७। १) से *'चामुंडा नाना बिधि गावहिं।'* (८७। ८) तक। भाद्रपदकी अन्तिम वर्षा रावण-वध है।

नोट—जैसे वर्षासे नदीमें बाढ़ आती है, करारें कटते हैं, इत्यादि। वैसे ही यहाँ कीर्ति-नदीमें, *'दोउ कूल दल रथ रेत चक्र अवर्त्त बहति भयावनी।'* (लं० ८६) यह बाढ़ आदि है।

राम राज सुख बिनय बड़ाई। बिसद सुखद सोइ सरद सुहाई॥ ६॥

अर्थ—१ रामराजका सुख और विशेष नीतिकी बड़ाई ही उज्ज्वल, सुख देनेवाली और सुन्दर शरद्ऋतु है॥ ६॥ (पं० रा० कु०, पाँ०)

टिप्पणी—१ *'रामराज सुख बिनय बड़ाई'* इति। भाव कि राजा जितनी ही नीतिसे चले उतना ही उसको तथा प्रजाको सुख होता है। *'बिनय बड़ाई'* में भाव यह है कि श्रीरामराज्यमें विशेष नीति है; इसीसे नीतिकी बड़ाई है। नीति विशेष होनेका कारण यह है कि श्रीरामजी नीतिके विशेष जाननेवाले हैं। यथा—*'नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न राम सम जान जथारथ॥'* (२। २५४)

'रामराज सुख.........' और शरद्-ऋतुमें समानता

१ 'रामराज सुखद, शरद् सुखद, नीति उज्ज्वल, शरद् उज्ज्वल, यह समता है। निर्मल नीतिसे और प्रजाको सुख देनेसे कीर्तिकी शोभा है **'इति भावः'**। (पं० रामकुमार)।

२ शरद्में दो मास होते हैं, एक आश्विन, दूसरा कार्तिक। इसी भाँति रामराज्यमें भी दो विभाग हैं—एक राज्याभिषेक और दूसरा राज्यका सुख, विनय और बड़ाई। आश्विनके प्रथम पक्षमें, जिसे पितृपक्ष कहते हैं, लोग पितरोंकी अक्षय तृप्तिके लिये श्राद्ध करते हैं। यहाँ भी पितृतृप्तिहेतु वनवासव्रत, जो श्रीरामजीने चौदह वर्षके लिये धारण किया था, पूरा हुआ और उसके उपलक्ष्यमें भक्तमौलिमणि भरतलालजी तथा प्रजावर्गने जो व्रत धारण किया था उसकी भी पूर्णाहुति हुई। भगवान्‌ने जटायुसे कहा था कि *'सीता हरन तात जनि कहेहु पिता सन जाइ। जौं मैं राम त कुलसहित कहिहि दसानन आइ॥'* उसकी भी सविधि पूर्ति हुई। दशाननने जाकर कहा, महाराजको बड़ी तृप्ति हुई। वे *'सीता-रघुपति-मिलन-बहोरी'* के पश्चात् स्वयं आये और हर्षित होकर सुरधामको लौट गये। पितृपक्ष समाप्त हुआ। अब अवधमें जगदम्बाके आगमनकी अत्यन्त उत्कण्ठा है। अयोध्यामें धवलगिरिके ले जाते समय हनुमान्‌जीद्वारा सीताहरणका समाचार आ चुका है। अत: जगदम्बासहित सरकारके लौटनेकी प्रतीक्षा हो रही है। हनुमानजीने विप्रवेषसे भरतजीके समीप जाकर उन्हें समाचार दिया कि *'सीता अनुज सहित प्रभु आवत।'* फिर भगवतीका सरकारके साथ

आगमन हुआ। प्रेमानन्दका स्वागत हुआ, फिर राज्याभिषेक हुआ। इस भाँति नवरात्रमें जगदम्बाका आगमन और विजयादशमीका उत्सव कहा है। तत्पश्चात् श्रीरामराज्यके सुख, विनय और बड़ाईका वर्णन है। अब दीपावली आयी। नगरकी कायापलट हो गयी। राजधानी जगमगा उठी। यथा—'*जातरूप मनि रचित अटारी।*' (७। २७। ३) से '*पुर सोभा कछु बरनि न जाई।*' (२९। ७) तक। कार्तिकस्नान, तुलसीपूजन और राधा-दामोदरकी उपासना भी हो रही है। यथा—'*अनिमादिक सुख संपदा रहीं अवध सब छाइ॥*' (२९) *जहँ तहँ नर रघुपति गुन गावहिं। बैठि परसपर इहइ सिखावहिं॥ ...... जनकसुता समेत रघुबीरहि। कस न भजहु भंजन-भव भीरहि॥*'—इस भाँति श्रीरामचरितमानसमें रामराज्यकी समता शरद्से दी गयी है। (वि० त्रि०)

३ श्रीरामराज्यतक मुख्य रामायण-कथा है, आगे उत्तर-चरित्र है, यही हेतु समझकर वाल्मीकिजीने राजगद्दीपर रामायण समाप्त की और उसी भावसे गोस्वामीजीने हिम-ऋतुसे प्रारम्भ करके शरद्में षट्-ऋतुओंकी समाप्ति की। (मा० दीपक) जैसे रामचरितकी समाप्ति रामराज्यसे मानी गयी है, वैसे ही वर्षकी समाप्ति भी प्राचीनकालमें शरद्से ही की जाती थी। (जैसा पूर्व ४२। २ में लिखा जा चुका है) वैदिक-साहित्यमें वर्षके स्थानमें 'शरत्' शब्दका ही प्रयोग होता है। सम्भवतः रामराज्यको शरद्से उपमित करनेका यह भी एक कारण हो सकता है। (वि० त्रि०)

अर्थ—२ श्रीरामचन्द्रजीके राज्यका सुख, विशेष नीति और बड़ाई (कीर्ति-नदीमें) उज्ज्वल, सुखदायक और सुहावना शरद्-ऋतु है। (मा० प्र०)

नोट—१ यहाँ यथासंख्य-अलङ्कारसे रामराज्यका सुखत्व गुण शरद्की उज्ज्वलता है, विशेष नीति शरद्का 'सुखद' गुण है और बड़ाई 'सुहाई' गुण है। शरद् 'सुहाई' है, यथा—'*बर्षा बिगत सरद रितु आई। लछिमन देखहु परम सोहाई॥*' (४। १६। १)

नोट—२ '*रामराज सुख बिनय बड़ाई*' का वर्णन इस कवितामें '*राम राज बैठे त्रैलोका। हरषित भये गए सब सोका॥*' से '*एहिं बिधि नगर नारि नर करहिं रामगुन गान ......।*' उ० २० (७) से ३० तक है। मा० प्र० के मतानुसार '*रामराज नभगेस सुनु ......*' उ० २१ तक यह प्रसङ्ग है।

नोट—३ मा० प्र० कार लिखते हैं कि 'रामराज्य ऐसा उज्ज्वल, स्वच्छ और शोभायमान है कि ब्रह्माण्ड-भर सातों द्वीप ऐसे उज्ज्वल हुए कि श्रीमन्नारायण क्षीरसमुद्र ढूँढ़ते हैं, महादेवजी कैलाश, इन्द्र ऐरावत, राहु चन्द्रमा और ब्रह्मा हंसको ढूँढ़ते हैं। प्रमाणमें यह श्लोक हनुमन्नाटकका कहकर देते हैं—'**महाराज श्रीमञ्जगति यशसा ते धवलिते पयः पारावारं परमपुरुषोऽयं मृगयते। कपर्दीकैलासं कुलिशभृद्भौमं करिवरं कलानाथं राहुः कमलभवनो हंसमधुना॥**' [हनुमन्नाटकमें अन्तमें कीर्तिपर श्लोक कई हैं पर वहाँ तो यह श्लोक नहीं मिला। सम्भव है कि किसी दूसरे हनुमन्नाटकमें हो। सु० र० भा० प्रकरण ३ कीर्तिवर्णन २९में भी यह श्लोक है]।

नोट—४ मा० प०कार '*बिनय बड़ाई*' का अर्थ 'नम्रता और प्रशंसा' करते हैं।

सती-सिरोमनि-सिय-गुन-गाथा। सोइ गुन अमल अनूपम पाथा॥ ७॥

अर्थ—सती-शिरोमणि (पतिव्रताओंकी सिरमौर) श्रीसीताजीके गुणोंकी कथा इस उपमारहित जलका अनुपम निर्मलता गुण है॥ ७॥

नोट—१ (क) 'सती-शिरोमणि', यथा—'*पतिदेवता सुतीय मनि सीय ......।*' (२। १९९) श्रीपार्वतीजी भी सतीशिरोमणि हैं परन्तु वे श्रीसीताजीके अंशहीसे हैं, यथा—'*जासु अंस उपजहिं गुन खानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥*' (१। १४८। ३) (ख) 'सती-शिरोमणि' कहकर श्रीसीताजीके पातिव्रत्य गुणोंकी गाथा यहाँ सूचित की। लङ्कामें उन्होंने अपने पातिव्रत्यकी सत्यतासे अग्निके तेजको नष्ट कर दिया। यथा—'*श्रीखण्ड सम पावक प्रबेस कियो।*' (६। १०८) श्रीहनुमान्‌जीकी पूछमें भी जो अग्नि लगायी

गयी थी वह श्रीसीताजीके सतीत्वके प्रभावसे ही उनको शीतल हो गयी थी। यह वाल्मीकीयमें स्पष्ट कहा है। रावणका नाश भी इन्हींके सतीत्वके कारण हुआ। जनकलाड़िली जिसने कभी कठोर पृथ्वीपर पैर न रखा था, न जिसको वनवास ही दिया गया था, वह सुकुमारी पतिके समझानेपर भी पतिका साथ न छोड़ सकी, पतिके साथ वनवासिनी होनेमें ही उसने सुख माना। यथा—'*बन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे॥ प्रभु बियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना॥*' (२। ६६) फिर सुमन्त्रके दशरथमहाराजका सन्देश सुनानेपर भी वे यही कहती हैं कि '*आरजसुत पद कमल बिनु बादि जहाँ लगि नात।*' (२। ९७) '*बिनु रघुपति पद पदुम परागा। मोहि केउ सपनेहुँ सुखद न लागा॥*......' अयोध्याकाण्डमें तो स्थान-स्थानपर इनके गुण दृष्टिगोचर हो रहे हैं। सभी काण्डोंमें इनके गुणोंकी गाथा है। श्रीअनुसूयाजी आपको पातिव्रत्यधर्म सुनाकर कहती हैं—'*सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं। तोहि प्रानप्रिय राम कहिउँ कथा संसार हित।*' (३। ५) उत्तरकाण्डमें '*सियगुन गाथा*' का लक्ष्य, यथा—'*पति अनुकूल सदा रह सीता।* (७। २३। ३) से '*रामपदारबिंद रति करति सुभावहिं खोइ।*' (२४) तक।

नोट—२ '*सोइ गुन अमल अनूपम पाथा*' इति। (क) शरद् कहकर अब यहाँसे जलके गुण कहते हैं, कारण कि जलके निर्मल, शीतल और मधुर इत्यादि गुण शरद्‌में ही होते हैं। यथा—'**कार्तिके मार्गशीर्षे च जलमात्रं प्रशस्यते**' (इति वृद्धसुश्रुत)। '*गुण अमल*......' यथा—'**पानीयं श्रमनाशनं क्लमहरं मूर्छापिपासापहं तन्द्राछर्दिविनाशनं बलकरं निद्राहरं तर्पणम्। हृद्यं गुप्तरसं ह्यजीर्णशमनं नित्यं हितं शीतलं लघ्वच्छं रसकारणं निगदितं पीयूषवज्जीवनम् ॥**' (इति भावप्रकाश वारिवर्ग श्लोक २)। अर्थात् जल श्रम, ग्लानि, मूर्च्छा, प्यास, तन्द्रा, उबान्तका हरण करनेवाला है, बलकी वृद्धि करनेवाला, निद्रा हरनेवाला, तृप्त करनेवाला, हृदयको लाभदायक है। उसका माधुर्य गुप्त है। वह अजीर्णनाशक, नित्य हितकारी, शीतल, हलका, स्वच्छ, रसोंका कारण और अमृततुल्य है। (पं० रामकुमारजी)

(ख) '*अनूपम पाथा*' इति। रामसुयशजल निर्मल है, क्योंकि श्रीरामजी स्वयं निरुपम हैं। यथा—'*केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ।*' (७। १२४) '*जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने।*' (७। १२) '*उपमा न कोउ कह दास तुलसी कतहुँ कबि कोबिद कहैं। बल बिनय बिद्या सील सोभा सिंधु इन्ह से एइ अहैं।।*' (१। ३११) '*जिन्ह के जस प्रताप के आगे। ससि मलीन रबि सीतल लागे।।*' (१। २९२) अर्थात् इनके रूप, बल, विनय, यश आदि गुण अनुपम हैं। जिस भाँति जलकी अनूपता उसके निर्मल दिव्य गुणोंपर ही निर्भर है, इसी भाँति श्रीरामजीके यशकी अनूपताका कारण सीताजीके दिव्य गुण हैं। गुण और गुणीमें अभेद सम्बन्ध होता है। (वि० त्रि०) '*अनूपम*' कहकर जनाया कि श्रीरामसुयशजल अत्यन्त निर्मल है, इसकी कोई उपमा नहीं है। श्रीसीताजीकी गुणगाथा ऐसे अनुपम जलकी निर्मलता है। तात्पर्य यह कि श्रीसीताजीके पातिव्रत्यगुणसे श्रीरामजीकी कीर्ति निर्मल है। '*सिय-गुन-गाथा*' अमल है, यथा—'*पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ। सुजस धवल जगु कह सब कोऊ।। जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवनु कीन्ह बिधि अंड करोरी॥ गंग अवनि थल तीनि बड़ेरे। एहिं किय साधु समाज घनेरे।। पितु कह सत्य सनेह सुबानी। सीय सकुच महुँ मनहुँ समानी।।*' (२। २८७। २—५)

(ग) इसपर अब यह शङ्का उठती है कि—'निर्मलता गुण तो मानसके स्वरूपमें 'सगुण-लीला' को कह चुके हैं; यथा—'*लीला सगुन जो कहहिं बखानी। सोइ स्वच्छता करइ मलहानी॥*' (१। ३६) अब उसी गुणको '*सिय-गुन-गाथा*' कैसे कहा?' समाधान यह है कि—(१) दोहा १८ में दिखाया है कि 'सीता' और 'राम' दो नामरूप कहने-सुननेमात्रके हैं, वस्तुतः दोनों एक ही हैं। इसी कारण '*राम सुजस बर बारी*' और '*सिय-गुन-गाथा*' दोनोंको निर्मल कहा। विचारनेसे सगुणलीला और सियगुणगाथा एक

ही हैं।* (पं० रामकुमारजी) (२)—मा० प्र० कार एक और समाधान इस प्रकार करते हैं कि—'निर्मलता गुण प्रथम तो साधुरूप मेघके मुखसे जब छूटा तब कहा, फिर जब बुद्धिरूप भूमिमें पड़ा तब वही गुण कुछ बुद्धिके गुण लिये कहे, फिर जब वही कवितारूपी नदीमें आया तब कुछ कविताके गुण लिये हुए कहे।'—इसीको कुछ विस्तार करके मा० मा० कारने यों लिखा है कि—'मानसर-जलके वर्णनमें स्वच्छता दो बार कही, जिसमेंसे दूसरी बार वर्षाजलके मिश्रित होनेसे जो जल गँदला हो गया था, वह '*सुखद सीत रुचि चारु चिराना।*' अर्थात् शरद्ऋतु पाकर स्वच्छ और सुखद हो गया। वैसे ही कीर्ति-सरयूमें रामचरित सगुण-यश-जल 'राक्षसोंके घोर संग्रामरूपी वर्षाकाल' में गंदा हो गया था अर्थात् राक्षसोंका चरित भी उसमें शामिल हो गया था, इससे रामचरितकी स्वच्छता जाती रही। शरद्रूपी रामराज्यके आनेपर फिर जल स्वच्छ हो गया।' (३)—श्रीरामजीकी सगुणलीलामें श्रीसीताजीकी ही प्रधानता है—'**काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत्।**' (वाल्मी० १। ४। ७) इन्हींकी प्रार्थना, इच्छा और प्रेरणासे यह लीला हुई।

इसपर फिर यह शङ्का होती है कि—'जब दोनों एक ही हैं तब श्रीसीताजीका श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा करना कैसे कहा?' इसका समाधान यह है कि यहाँ दोनों माधुर्यमें नर-नाट्य कर रहे हैं और अपने चरितसे जगन्मात्रको उपदेश दे रहे हैं। इसलिये पति-पत्नीभाव ग्रहण किये हैं। माधुर्यमें सेवा न करनेसे पातिव्रत्य धर्मको हानि पहुँचती, जगत्को बुरी शिक्षा होती, सेवा करना ही रामयशको निर्मल कर रहा है। सेवा न करनेसे शोभा न होती। दूसरे यह कि प्रभु भी उनको जुगवते रहते हैं; यथा—'*जोगवहिं प्रभु सिय लषनहिं कैसें। पलक बिलोचन गोलक जैसें॥*' (२। १४२)

श्रीसुधाकरद्विवेदीजी लिखते हैं कि शरद्में पृथ्वीका पानी निर्मल और गुणद होता है। यहाँ भी पृथ्वीसे उत्पन्न सती सीताने पति-आज्ञासे वनमें जाकर भी अपने अनुपम निर्मल गुणको त्यागा नहीं, सदा पतिके ध्यानमें अपनी आयु समाप्त की। अत: '*सिय-गुन-गाथा*' को अमल कहा।

भरत सुभाउ सुसीतलताई। सदा एकरस बरनि न जाई॥ ८॥

अर्थ—श्रीभरतजीका स्वभाव इस नदीकी सुन्दर शीतलता है जो सदा एक-सी रहती है और जो वर्णन नहीं की जा सकती॥ ८॥

पं० रामकुमारजी—'सुन्दर शीतलता' कहनेका भाव यह है कि ऐसा शीतल नहीं है कि स्पर्शसे ही काँप उठे वरं च सुखद है; यथा—'*प्रेमभगति जो बरनि न जाई। सोइ मधुरता सुसीतलताई॥*', '*ससि सतकोटि सुसीतल समन सकल भव त्रास।*' श्रीभरतजीके स्वभावको जलकी सुशीतलता कहा। भरतस्वभाव वर्णन नहीं किया जा सकता, यथा—'*भरत सुभाउ न सुगम निगमहू। लघुमति चापलता कबि छमहू॥*' (२। ३०४) इसीसे जलकी शीतलताको भी '*बरनि न जाई*' कहा। अर्थात् '*भरत सुभाउ*' और जलकी '*सुसीतलताई*' दोनों विलक्षण हैं। पुन: भाव कि 'भरत सुभाव' में शीतलता सदैव बनी रहती है, कभी गर्मी नहीं आती।

नोट—१ भरतस्वभाव वर्णन नहीं हो सकता तो अयोध्याकाण्डमें वर्णन कैसे किया? इसका उत्तर यह दिया जाता है कि '*सुभाउ*' का वर्णन नहीं किया गया, उनके स्वभावसे जो दशा उनकी देखनेमें आयी, केवल उस दशाका ठौर-ठौर किञ्चित् वर्णन है; यथा—'*सानी सरल रस मातु बानी सुनि भरत ब्याकुल भये। लोचन सरोरुह स्रवत सींचत बिरह उर अंकुर नये॥ सो दसा देखत समय तेहि बिसरी सबहिं सुधि देह की।*' (२। १७६) इत्यादि श्रीअयोध्यामें भरतागमनसे लेकर अयोध्याकाण्डभरमें जहाँ-तहाँ आपकी दशाका वर्णन मिलता है। भरतस्वभावके और उदाहरण; यथा—(१) '*भरत जाइ घर कीन्ह बिचारू।*............*संपति*

---

* सू० प्र० मिश्र—'अमलका अर्थ मधुर है। ग्रन्थकार जलगुण मधुर लिख आये हैं—'बरषहिं रामसुजस बरबारी। मधुर मनोहर मंगलकारी॥' दूसरे, आगे भरतस्वभावको रामयशजलका शीतल गुण कहा है, इसलिये यहाँ मधुर कहना उचित है, क्योंकि जलके मधुर और शीतल दोनों गुण हैं। यथा मुक्तावलीमें 'जले मधुरशीतलौ।'

सब रघुपति कै आही।'''''''' करइ स्वामि हित सेवक सोई। दूषन कोटि देइ किन कोई॥' (अ० १८५) (२)*'राम सखा सुनि संदनु त्यागा। चले उतरि उमगत अनुरागा॥'* (२। १९३) (३) *'जानहुँ राम कुटिल करि मोही। लोग कहउ गुरु साहिब द्रोही॥ सीताराम चरन रति मोरें। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें॥'* इत्यादि। (२। २०५) (४)*'संपति चकई भरत चक मुनि आयसु खेलवार।'''''* (अ० २१५) (५) *'सुनहु लखन भल भरत सरीसा'* से *'कहत भरत गुन सील सुभाऊ।'* (२। २३१। ८) से (२३२। ८) तक। श्रीरामजी गुण, स्वभाव कहते-कहते प्रेममें डूब गये, फिर न कह सके। (६) *'प्रभु पितु मातु सुहद गुरु स्वामी।'* (२। २९८। १) से *'भरत बिनय सुनि देखि सुभाऊ।'* (३०१। ८) तक। यहाँ स्वभावका उनके चरितमें, वाणीमें देखना कहा है। देखकर ही सारा समाज स्नेहसे शिथिल हो गया इत्यादि।

श्रीभरतजीका चरित उनके स्वभावका उदाहरण है। इनके चरितसे इनका स्वभाव मनमें आते ही जब श्रीवसिष्ठादि महर्षिगण, श्रीजनक आदि ज्ञानी भक्त और श्रीरामजी प्रेममें निमग्न हो जाते हैं, वे ही स्वभावका वर्णन नहीं कर सकते, तब और कौन समर्थ है जो कर सके? (मा० प्र०) (नोट—मा० प्र० कार *'सुभाउ'* का अर्थ 'सुन्दर भाव' करते हैं और कहते हैं कि भावकी दशा देखकर भाव अकथ्य हो गया है)।

श्रीजानकीशरणजी लिखते हैं कि 'रामराज्य, सियगुणगाथा क्रमसे वर्णन किये गये, वैसे ही भरत-स्वभाव-वर्णनमें उत्तरकाण्डका प्रसङ्ग लागू होगा, फिर अवधकाण्डका उदाहरण लौटकर देना असङ्गत प्रतीत होता है। अवधकाण्डमें समस्त भरत-चरितका रूपक तो पूर्व ही हो चुका है—'जप-याग' से। यथा—*'समन अमित उतपात सब भरत-चरित जप जाग।'* वे *'भरत सुभाउ'* का उदाहरण यह देते हैं—*'भरत सत्रुहन दोनउ भाई। सहित पवनसुत उपबन जाई॥ बूझहिं बैठि रामगुन गाहा।'* (७। २६। ४-५) *'सुनि प्रभु बचन भरत गहे चरना। सुनहु नाथ प्रनतारति हरना॥ ''''''* (३६) *'''''संतन्ह कै महिमा रघुराई। सुना चहउँ प्रभु तिन्ह कर लच्छन।'* उत्तरकाण्डके प्रारम्भमें जो भरतचरित है जिसे देख श्रीहनुमान्‌जी *'''''''अति हरषेउ। पुलक गात लोचन जल बरषेउ॥'* इत्यादि भी उदाहरण ले सकते हैं। [सम्भवतः इसपर यह कहा जाय कि पूर्व 'भरत-चरित' कहा गया, अब 'भरत-सुभाउ'।]

नोट—२ भरतस्वभाव भी रामयशका अङ्ग कहा गया। कारण कि श्रीरामजीमें और भरतजीमें अन्तर नहीं है, यथा—*'भरतहि जानि राम परिछाहीं'* (अ०), *'भरतहि मोहि कछु अंतर काऊ।'* (७। ३६) भरतजीके स्वभावका प्रभाव सम्पूर्ण रामचरितमें चमकता है। उनके संकोचसे श्रीरामजी पिताका वचन छोड़नेको तैयार हो गये, परन्तु भरतजीने स्वामीको संकोचमें डालना उचित न समझा। (वि० त्रि०)

नोट—३ *'सदा एकरस'* इति। (क) भाव कि इनके स्वभावमें कभी अन्तर नहीं पड़ता। कैसा ही दुःख हो, सुख हो, जो हो, श्रीभरतलालजीकी वृत्ति एक-सी-ही रहती है। (वि० त्रि०) (ख) सु० द्विवेदीजी लिखते हैं कि शरद्‌के जलमें तो कभी-कभी स्वाद बदल जाता है और शीतलतामें भी भेद हो जाता है पर इस शरद्‌में तो सदा भरतकी सुयशशीतलतासे मनुष्यका जीवन तृप्त हो जाता है और जानकीजीकी गुणकथा-जल भी सदा एकरस रहता है।

दोहा—अवलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परसपर हास।
भायप भलि चहुँ बंधु की जल माधुरी सुबास॥ ४२॥

अर्थ—चारों भाइयों (श्रीराम-भरत-लक्ष्मण-शत्रुघ्नजी) का आपसमें देखना, बोलना, मिलना, परस्पर प्रेम और हास्य तथा सुन्दर भाईपना (भाईपनका सच्चा निर्वाह) इस जलकी मिठास और सुगन्ध है॥ ४२॥

नोट—१ (क) *'अवलोकनि'* इति। सब भाई प्रभुका मुखकमल देखते रहते हैं कि प्रभु हमें कृपा करके कुछ आज्ञा दें और जब प्रभु उनकी ओर देखते हैं तब सब नीचे देखने लगते हैं। यथा—*'प्रभु मुख कमल बिलोकत रहहीं।''''''* *'महूँ सनेह सकोच बस सनमुख कही न बैन। दरसन तृपित न आजु लगि प्रेम पिआसे नैन॥'* (२। २६०) उधर प्रभु भाइयोंके मनको जुगवते रहते हैं। यथा—*'राम अनुज*

मन की गति जानी। भगत बछलता हिय हुलसानी॥ ……' (१। २१८। ४—६) *'अंतरजामी प्रभु सब जाना। बूझत कहहु काह हनुमाना॥'* (७। ३६। ४) से *'प्रश्न करत मन सकुचत अहहीं।'* (६) तक (ख) *'बोलनि'*—बोलनेकी यह गति है कि जबतक भरतजी हैं, तबतक मानो लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजी हैं ही नहीं। प्रभु जब चित्रकूट गये, लक्ष्मणजी साथ थे, अवसर पड़नेपर बिना पूछे ही बोलते थे, वही लक्ष्मणजी भरतजीके आनेपर एकदम मौन हैं। बड़े लोग एकत्रित हैं, जैसा उचित समझेंगे करेंगे, मैं तो दोनोंका सेवक ठहरा, यही भाव न बोलनेमें है। शत्रुघ्नजी सबसे छोटे हैं। जब भरत-लक्ष्मण न रहें तब इन्हें बोलनेका अवसर मिले। (ग) *'मिलनि'*—मिलनका आनन्द दो स्थानोंपर विशेषरूपसे देख पड़ता है, एक चित्रकूटमें और दूसरा वनसे लौटनेपर अवधमें। (२। २४०) से दोहा २४१ तक, (७। ५) से *'भरतानुज लछिमन पुनि भेंटे।'* (७। ६। १) तकके। (घ) *'प्रीति परसपर'* ऐसी कि भरतजीके लिये प्रभु पिताका वचन छोड़नेको तैयार, उधर भरत प्रभुको संकोच देनेको अनुचित मानते हैं। लक्ष्मणजीको शक्ति लगनेपर श्रीरामजी यही कहते हैं कि यह वियोग जानता तो वन आता ही नहीं। श्रीभरत-लक्ष्मण और शत्रुघ्नजीका प्रेम भी इतनी उच्च कोटिका है कि यदि प्रभु लौट जायँ तो तीनों भाई जन्मभर वनवासके लिये प्रस्तुत हैं। यथा—*'नतरु जाहिं बन तीनिउ भाई।'……'* (ङ) *'हास'*—यद्यपि चारों भाई परम संकोची हैं, फिर भी समय-समयपर हँसी भी हो जाया करती है। रावणकी बहन शूर्पणखा ब्याहका प्रस्ताव लेकर रामजीके सम्मुख उपस्थित है, सरकार सीताजीकी ओर इङ्गित करके उसे बतलाते हैं कि *'अहै कुमार मोर लघु भ्राता।'* लखनलालजी उसे समझा-बुझाकर फिर सरकारके पास लौटा देते हैं कि मैं सेवक ठहरा, मुझसे ब्याह करनेमें कौन सुख है। मैं एकके ही पालनमें असमर्थ हूँ—और सरकार अयोध्याके राजा हैं—चाहे जितने ब्याह करें; यथा— *'प्रभु समरथ कोसलपुर राजा। जो कछु करहिं उन्हहिं सब छाजा॥'* इस भाँति भाइयोंमें कभी-कभी हँसी भी हो जाया करती थी। गीतावलीमें वसन्तोत्सवके समयमें लिखते हैं—*'नर-नारि परस्पर गारि देत। सुनि हँसत राम भ्रातन्ह समेत॥'* (वि० त्रि०) विशेष नोट २में देखिये। *'भायप'*—२ (ङ) में देखिये।

नोट—२ *'जल माधुरी सुबास'* इति। पं० रामकुमारजीके मतानुसार 'अन्तर इन्द्रियोंका व्यवहार जो 'भाईपना और प्रीति' है, सो जलमाधुरी है। क्योंकि जलमाधुरी जलके अन्दर रहती है। बाह्य-इन्द्रियोंके व्यवहार जो *'अवलोकनि बोलनि मिलनि हास'* हैं वे जलका सुबास हैं, क्योंकि सुगन्ध जलके बाहर फैलती है। यह समता है।' और श्रीजानकीदासजीके मतानुसार *'अवलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति हास'* ये जलकी माधुरी (=मिष्ट गुण) हैं और भायप सुगन्धतागुण है। (यही मत त्रिपाठीजीका है। *'अवलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परसपर हास'* को अति सन्निकटवर्त्ती ही जान सकते हैं। मिठासको चखनेवाला ही जानता है, इसी भाँति उपर्युक्त बातोंको देखनेवाले ही जानते हैं। अतः उनकी उपमा मिठाससे दी। सुबास दूरतक फैलता है एवं भायप भी संसारमें प्रसिद्ध है। अतः भायपकी उपमा सुगन्धसे दी।) और इसी क्रमसे उन्होंने सबका लक्ष्य भी दिया है। यथा—(क) *'अनुरूप बर दुलहिनि परसपर लखि सकुचि हिय हरषहीं।'* (१। ३२५) यहाँ *'लखि'* से अवलोकनि और *'सकुच'* से हास्य सूचित किया। श्रीउर्मिलाजी और श्रीश्रुतिकीर्तिजी श्याम हैं। श्रीसीताजी और श्रीमाण्डवीजी गौर वर्ण हैं। श्रीरामजी और श्रीभरतजी श्याम हैं, श्रीलक्ष्मणजी और श्रीशत्रुघ्नजी गौर हैं। इस तरह चार जोड़ गौर-श्यामके मिले। बड़ेको छोटेके और छोटेको बड़ेके सामने पत्नीसहित बैठे होनेसे *'सकुच'* है। ध्वनिसे हास्य और अवलोकन पाया जाता है।—(मा० प्र०) (ख) *'बंधु सखा सँग लेहिं बोलाई।', 'आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई'*—(१। २०५) इत्यादि बोलनि है। (ग) *'बरबस लिये उठाइ उर लाये कृपानिधान। भरत रामकी मिलनि लखि बिसरे सबहिं अपान॥'* (२। २४०) *मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी।', 'भेंटेउ लखन ललकि लघु भाई।'* (२। २४२। १) *'मिलि सप्रेम रिपुसूदनहि……।'* (२। २४१) *'भूरि भाय भेंटे भरत लछिमन करत प्रनाम।'* (२। २४१) *'भरत सहानुज कीन्ह प्रनामा। लिये उठाइ लाइ उर रामा॥ हरषे लखन देखि दोउ भ्राता। मिले प्रेम परि*

पूरित गाता॥' (१। ३०८) *'गहे भरत पुनि प्रभु पद पंकज। परे भूमि नहि उठत उठाए। बर करि कृपासिंधु उर लाए॥ श्यामल गात रोम भए ठाढ़े। नव राजीव नयन जल बाढ़े॥'* से *'लछिमन भरत मिले तब परम प्रेम दोउ भाइ।'* (७। ५) तक—यह *'मिलनि'* है। (घ) *'उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा॥ मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी।'* (२। २४०-२४१) इसमें प्रेम और मिलन दोनों हैं। *'बंधु सनेह सरस एहि ओरा। इत साहिब सेवा बरजोरा॥'* (२। २४०। ४) (में श्रीलक्ष्मणजीकी), *'भरत सत्रुहन दूनउ भाई। प्रभु सेवक जसि प्रीति बड़ाई॥'* (१। १९८) *'राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती।'*, *'सेवहिं सानुकूल सब भाई।'* (उ० २५) इत्यादि 'परस्पर प्रीति' है, (ङ) *'अनुज सखा संग भोजन करहीं।'* (१। २०५) *'चलत पयादें खात फल पिता दीन्ह तजि राजु'* से *'भायप भगति भरत आचरनू'* तक (२। २२२-२२३) श्रीरामजीका भायप; यथा—*'गुरु सिख देइ राय पहिं गयऊ। राम हृदय अस बिसमय भयऊ॥ जनमे एक संग सब भाई'* से *'प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई।'* (२। १०) तक। पिता युवराजपद कल देंगे। प्रजा, परिवार, सखा आदि सब समाचार पाकर आनन्द-मङ्गल मना रहे हैं पर श्रीरामजी सोचमें पड़े हैं, भरतजीका स्मरण भी कर रहे हैं। कैकेयीजी वरदान माँगती हैं, राजा प्रतिज्ञाबद्ध हो जाते हैं, जिससे राज्याभिषेकके बदले वनवास होता है। अब भरतका 'भायप' देखिये। वे राज्य नहीं लेते, चित्रकूट पैदल जाते हैं, मनमें यही सोच है कि *'केहि बिधि होइ राम अभिषेकू'।* अयोध्याकाण्ड उत्तरार्धभर और लङ्काकाण्ड तथा उत्तरमें उनका 'भायप' ही तो है। लक्ष्मणजीका भायप रामचरितभरमें जगमगा रहा है। शत्रुघ्नजी सबके आज्ञाकारी हैं। लक्ष्मणजीको शक्ति लगनेका समाचार पा माता सुमित्राजी उनको श्रीरामजीकी सेवाके लिये जानेको कहती हैं और वे तुरत तैयार हो जाते हैं। यथा—*'सुनि रन घायल लखन परे हैं। रघुनन्दन बिनु बंधु कुअवसर जद्यपि धनु दुसरे हैं। तात जाहु कपि सँग रिपुसूदन उठि कर जोरि खरे हैं।'* (गीतावली ६। १३) इत्यादि परस्परका 'भायप' है।

नोट—३ श्रीजानकीशरणजीके मतानुसार इस प्रसङ्गके उदाहरण उत्तरकाण्डसे ही लेना चाहिये। अतः उदाहरण क्रमसे ये होंगे—*'प्रभु मुख कमल बिलोकत रहहीं। कबहुँ कृपाल हमहिं कछु कहहीं॥'* (७। २५। ३) *'सनकादिक बिधि लोक सिधाए। भ्रातन्ह रामचरन सिरु नाए॥ पूछत प्रभुहि सकल सकुचाहीं। चितवहिं सब मारुतसुत पाहीं॥'* (७। ३६) इत्यादिमें *'बोलनि मिलनि'; 'अनुजन्ह संयुत भोजन करहीं।'* (७। २६) *'भ्रातन्ह सहित राम एक बारा। संग परम प्रिय पवनकुमारा॥ सुंदर उपबन देखन गए॥'* (७। ३२) यह परस्पर प्रीति; और *'सेवहिं सानुकूल सब भाई', 'राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। नाना भाँति सिखावहिं नीती॥'* (७। २५) यह भायप है।

सू० प्र० मिश्र—यहाँ जलके दो गुण कहे—माधुर्य और सुगन्ध। माधुर्य तो ठीक ही है **'जले मधुरशीतलौ'**। जलमें सुगन्ध गुण तो किसीने भी नहीं कहा, वृद्धसुश्रुतमें प्रशस्त जल-लक्षणमें सुगन्धका नाम भी नहीं तब ग्रन्थकारने कैसे लिखा? उत्तर यह है कि दूषित जलकी शुद्धिके लिये सुगन्ध द्रव्यकी आवश्यकता पड़ती है, यथा—वृद्धसुश्रुतमें—**'कर्पूरजातिपुन्नागपाटलादिसुवासितम्। शुचिसान्द्रपटस्त्रावैः** (साफ मोटे वस्त्रसे छानना) **क्षुद्रजन्तुविवर्जितम्। गोमयेन च वस्त्रेण कुर्यादम्बुप्रसादनम्॥'** भाइयोंके गुणोंसे कलिकालजन्य कथारूपी जलके दोष निकल गये, अब केवल गुण-ही-गुण रह गये। कलिकालजनित दोष दूर करनेके ये ही उपाय हैं, जो ऊपर कहे गये।—(नोट—यद्यपि सुवास जलका प्राकृतिक गुण नहीं है, अतः उपर्युक्त उद्धरणमें उसका ग्रहण नहीं है तथापि, जैसे वायुके वर्णनमें सुगन्धका उल्लेख प्रायः किया जाता है यद्यपि सुगन्ध वायुका प्राकृतिक गुण नहीं है, वैसे ही यहाँ भी समझना चाहिये)।

नोट—४ साधुमुखच्युत रामयशवारिमें प्रेमभक्तिको मधुरता और शीतलता दोनों कहा था, पर यहाँ कवितासरितके रामयशवारिमें भरत-सुभावको शीतलता और चारों भाईके व्यवहार तथा प्रेमको मधुरता कहा। भाव यह है कि भक्तिका माधुर्य सबमें बराबर है, पर भरतजीमें स्वभावकी शीतलता अधिक है। मन्थराको दण्ड देना भी भरतलालसे न देखा गया। यथा—*'भरत दयानिधि दीन्ह छोड़ाई।'* (वि० त्रि०)

आरति बिनय दीनता मोरी। लघुता ललित सुबारि न थोरी* ॥ १ ॥

शब्दार्थ—आरति=आर्त्ति=दु:ख, क्लेश। **बिनय**=विनती=प्रार्थना, निवेदन, विशेष नम्रतासे कोई बात कहना। **दीनता**=नम्रता, विनीतभाव, गरीबी, कातरता। **लघुता**=हलकापन।

अर्थ—मेरी आर्त्ति, विनती और दीनता इस सुन्दर उत्तम जलका हलकापन है, जो ललित है और थोड़ा नहीं है अर्थात् बहुत है॥ १॥†

नोट—१ ग्रन्थके आदिसे ३५वें दोहेतक *'आरति बिनय दीनता'* का वर्णन बहुत है। बीच-बीचमें और भी प्रसङ्ग हैं। आर्ति, यथा—*'सुमिरि सहम मोहि अपडर अपने'।* विनय यथा—*'बालबिनय सुनि करि कृपा रामचरन रति देहु', 'बालबिनय सुनि सुरुचि लखि मोपर होहु कृपाल', 'छमिहहिं सज्जन मोरि ढिठाई। सुनिहहिं बालबचन मन लाई॥'* दीनता, यथा—*'सुनि अघ नरकहु नाक सिकोरी', 'चहिय अमिय जग जुरइ न छाछी', 'कबित बिबेक एक नहिं मोरे।'* (मा० प्र०)

मा० मा० के मतानुसार केवल उत्तरकाण्डके उदाहरण लेने होंगे। यथा—*'मतिमंद तुलसीदासहू', 'अस बिचारि रघुबंसमनि हरहु बिषम भवभीर', कामिहि नारि पिआरि जिमि';* तथा *'मो सम दीन न दीनहित तुम्ह समान रघुबीर'* क्रमसे आर्त्ति, विनय और दीनताके उदाहरण हैं।

नोट—२ *'आरति…मोरी'* इति। (क) 'मोरी' का भाव कि इस ग्रन्थमें 'विनय, दीनता' औरोंकी भी बहुत है (जैसे कि ब्रह्मादि देवताओंकी आर्ति, विनय और दीनता बालकाण्डमें; देवताओंकी सरस्वती और देवगुरु आदिसे; भरतजीकी आर्ति आदि; इसी तरह सब काण्डोंमें है) पर वह आर्ति, विनय, दीनता रामसुयशसरिताकी 'लघुता' नहीं है, किन्तु मेरी ही जो आर्ति आदि है, वही इस जलकी 'लघुता' है। (पं० रामकुमारजी) पुन: भाव कि जैसे श्रीसीताजीके गुणगाथ, श्रीभरतजीका स्वभाव, चारों भाइयोंका बरताव, प्रेम और भाइपन (इसमें) सम्मिलित हैं, उसी भाँति मेरी आर्ति, विनय और दीनता भी सम्मिलित है। (ख) स्थूलरूपसे वन्दनामें तीन विभाग हैं—समष्टिवन्दना, कविसमाजवन्दना और परिकरोंसहित श्रीरामजीकी वन्दना। इन तीनोंके सामने गोस्वामीजीने आर्ति, विनय और दीनता दिखलायी है। (१) समष्टिके सामने—आर्ति, यथा—*'करन चहौं रघुपति गुन गाहा।'* (इत्यादि। १। ८। ५—८) विनय, यथा—*जानि कृपाकर किंकर मोहू। सब मिलि करहु छाँड़ि छल छोहू॥'* (१। ८। ३-४) दीनता, यथा—*'कबि न होउँ नहिं बचन प्रबीनू।'* (१। ९। ८—११) (२) कविसमाजके सामने—आर्ति, यथा—*'राम सुकीरति भनिति भदेसा…।'* इत्यादि । (१। १४। १०-११) विनय, यथा—*'होहु प्रसन्न देहु बरदानू…।'* (१। १४। ७) दीनता, यथा—*'सो न होइ बिनु बिमल मति मोहि मति बल अति थोर। करहु कृपा हरिजस कहउँ पुनि पुनि करउँ निहोर॥'* (१। १४) (३) श्रीरामजीके सामने—आर्ति, यथा—*'राम सुस्वामि कुसेवक मोसो। निज दिसि देखि दयानिधि पोसो॥'* (१। २८। ४) विनय, यथा *'मोरि सुधारिहि सो सब भाँती…।'* (३) दीनता, यथा—*'रीझत राम सनेह निसोतें…।'* (१।२८। ११) सम्पूर्ण ग्रन्थमें इस आर्ति आदिकी झलक दिखायी देती है (वि० त्रि०)

नोट—३ *'लघुता ललित सुबारि न थोरी'* इति। (क) लघुता तो दोष है, उसपर कहते हैं कि

---

* खोरी—१७०४, १७२१, १७६२, छ०। थोरी—१६६१, पं०, मा० प्र०, वैं०, को० रा०।

'न खोरी' का भाव त्रिपाठीजी यह कहते हैं कि जलके लिये हलकापन गुण है पर रामयशको हलका कैसे कहा जाय और जब जलके साथ रूपक बाँधा है तो हलकापन कहना ही चाहिये, अत: कहते हैं 'सुबारि न खोरी' अर्थात् वह हलकापन मेरा है। मेरी आर्त्ति आदिका योग जो इस रामयश-पूरितकवितासरितासे हुआ वही इस जलका हलकापन है, नहीं तो इस रामयशमें दोष नहीं है।

† सू० प्र० मिश्र—'यहाँ ऐसा भी विवेक हो सकता है कि आरति जलकी लघुता, विनय जलकी ललितता और दीनता जलकी शुद्धता है।'

वीरकवि—हलकापन और निर्दोष भी, इसमें विरोधाभास है।

जलमें लघुत्व होना दोष नहीं, किन्तु गुण है, लालित्य है।—[प्रशस्त जलके लक्षणमें निदानकारोंने 'लघुत्व' को भी लिखा है, यथा—'**स्वच्छं लघुं च हृद्यञ्च तोयं गुणवदुच्यते**' (भावप्रकाश-वारिवर्ग)। अपने मुखसे अपनी लघुता कहना गुण है। औरोंकी विनय, दीनता अपने अर्थके निमित्त है और गोस्वामीजीकी '*आरति बिनय दीनता*' रामयश कहनेके निमित्त है, इसीलिये इन्हींकी 'आरति' जलकी लघुता है औरोंकी नहीं। और इसीसे यह कीर्तिसरितामें सम्मिलित हैं। (ख) महाराज जानकीदासजी लिखते हैं कि 'हलकापन सुवारिमें लालित्य है, अर्थात् कुछ अशोभित नहीं है। क्योंकि यदि जलमें और सब गुण हों और हलकापन न हो तो वह बादी होता है (और अन्य सब गुण इस एक गुणके न होनेसे व्यर्थ हो जाते हैं) यदि गोस्वामीजी इतनी दीनता ग्रन्थके आदिमें न करते तो ऐसा निष्पक्ष एकाङ्गी ग्रन्थ चलना अशक्य था, यही बादी-तुल्य हुआ। जब उनकी आर्ति, विनय, दीनता सुनी तब सबने सराहना करके धारण किया।

अदभुत सलिल सुनत गुनकारी*। आस पियास मनोमल-हारी॥ २॥

अर्थ—यह जल बड़ा अनोखा है, सुनते ही गुण करता है। आशारूपी प्यासको और मनके मैलको दूर करता है॥ २॥

टिप्पणी—१ ऊपर चौपाई (१) तक जलके स्वरूपमें जो गुण हैं वे कहे गये, अब दूसरोंके द्वारा जलके गुण दिखाते हैं। आगे जो वर्णन है वह सब जलकी अद्‌भुतता है।

टिप्पणी—२ '*सुनत गुनकारी*' का भाव यह है कि इसका पान श्रवणसे है, यथा—'***रामचरन रति जो चह अथवा पद निर्बान। भावसहित सो यह कथा करउ श्रवनपुट पान॥***' (उ० १२८) वह जल प्यासको हरता है, यह आशारूपी प्यासको हरता है कि जो (आशा) प्रभुके विश्वासका नाश करती है, यथा—'***मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तो कहहु कहा बिस्वासा॥***' (७। ४६। ३) '***तुलसी अदभुत देवता आसा देवी नाम। सेए सोक समरपई बिमुख भये अभिराम॥***' (दोहावली २५८)—देखिये (१। २४। ४-५) [पुनः भाव कि सभी प्रकारके जल पीनेपर ही अपना गुण दिखलाते हैं तभी पिपासा, ग्लानि आदि दूर होती है; पर यह जल ऐसा है कि केवल कानमें पड़ जानेसे लाभ पहुँचाता है—(वि० त्रि०)]

टिप्पणी—३ (क) मनका मल विषय है; यथा—'***काई बिषय मुकुर मन लागी।***' (१। ११५। १) '***मोह-जनित मल लाग बिबिध बिधि कोटिहु जतन न जाई— मन मलिन बिषय संग लागे—।***' (विनय ८२) (ख) '***मनोमल-हारी***' का भाव यह है कि आशाकी उत्पत्ति मलिन मनसे है, रामयश जल है, प्यास जलहीसे बुझती है। (ग) 'श्रीगुरुपदरजवन्दनामें '***अमिय मूरि मय चूरन चारू। समन सकल भवरुज-परिवारू॥***'—चूर्णका स्वरूप कहा था। 'राम-सुयश जल' उसका अनुपान है। अनुपानका स्वरूप यहाँ दिया (रा० प्र०) थोड़ा-थोड़ा जल पीनेसे जठराग्नि बढ़ती है—'**तस्मान्नरो वह्निविवर्धनाय मुहुर्मुहुर्वारि पिबेद्भूरि**'—(मा० प०) (घ) '***आस पियास मनोमल-हारी***' से तात्पर्य यह निकला कि अन्य देवी, देवता, मनुष्यादिकी आशा छुड़ाकर और विषयोंसे वैराग्य कराकर यह मनुष्यको श्रीरामजीका अनन्य उपासक बना देता है, उन्हींमें दृढ़ विश्वास करा देता है। पुनः, (ङ) जैसे मृग मरुमरीचिकाके पीछे इस आशासे कि अब जल मिलता है, अब जल मिलता है, दौड़ते-दौड़ते श्रान्त हो जाता है, इसी भाँति मन भी सुखके लिये चेष्टा करते-करते ग्लानियुक्त हो गया है। यही मनोमल है (वि० त्रि०)

वि० त्रि०—यहाँ तीन गुण कहे— गुणकारी, आस-पियास-हारी और मनोमल-हारी और सत्रह गुण अगली चौपाइयोंमें कहेंगे। कुल बीस गुण कहे। चरितसरितको भी बीस अंशोंमें वर्णन किया और ये

* पाठान्तर—१६६१, १७२१, १७६२, छ०, को० रा०, रामायणीजी, सरयूदासजी, जानकीदासजीकी प्रतियों, काशिराजकी रा० प० और पंजाबीजीका पाठ 'गुनकारी' है। गौड़जी तथा ना० प्र० की प्रतियोंमें 'सुखकारी' पाठ दिया है। परन्तु टीकामें बाबू श्यामसुन्दरदासने 'गुण' ही अर्थ किया है। १७०४ में 'सुखकारी' है।

बीसों गुण क्रमश: इन्हीं बीसों अंशोंके हैं। इन्हीं बीसों अंशोंको ही लक्ष्यमें रखकर श्रीगोस्वामीजीने बीस बार गिनकर कथा कहनेकी प्रतिज्ञा की है। यथा— *(१) भाषानिबन्धमतिमंजुलमातनोति। (२) बरनउँ रामचरित भवमोचन। (३) तेहि बल मैं रघुपति गुनगाथा। कहिहउँ नाइ रामपद माथा।। (४) एहि प्रकार बल मनहि देखाई। करिहौं रघुपति कथा सुहाई।। (५) करहु कृपा हरि जस कहउँ पुनि पुनि करउँ निहोर। (६) सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ। बरनौं रामचरित चित चाऊ।। (७) सुमिरि सो नाम रामगुनगाथा। करौं नाइ रघुनाथहि माथा।। (८) बरनउँ रघुबर बिसद जस सुनि कलिकलुष नसाइ। (९) कहिहौं सोइ संबाद बखानी। (१०) भाषाबद्ध करब मैं सोई। (११) तस कहिहौं हिय हरि के प्रेरे। (१२) करउँ कथा भवसरिता तरनी। (१३) सो सब हेतु कहब मैं गाई। (१४) बरनौं बिसद रामगुनगाथा। (१५) करौं कथा हरिपद धरि सीसा। (१६) कहउँ कथा सोइ सुखद सुहाई। (१७) अब सोइ कहौं प्रसंग सब'''''' ' (१८) करइ मनोहर मति अनुहारी। (१९) सुमिरि भवानी-संकरहि कह कबि कथा सुहाइ। (२०) कहौं जुगल मुनिबर्ज कर मिलन सुभग संबाद।* अब अंश और गुण सुनिये। *'उमा महेस बिबाह बराती''''''।'* का माहात्म्य हुआ *'अद्भुत सलिल सुनत गुनकारी'* । (बारातकी अद्भुतता) और विवाहका कल्याणकारी होना पूर्व कहा गया है। दूसरा अंश है *'रघुबर जनम अनंद बधाई''''''।'* इसका माहात्म्य है *'आस पियास हारी';* चक्रवर्ती महाराज आदि आशा लगाये हुए थे सो उनकी आशा जन्ममें बधाई बजते ही पूरी हो गयी। यथा—*'घर घर बाज बधाव सुभ प्रगटेउ सुखमाकंद। हरषवंत सब जहँ तहँ नगर नारि नर बृंद।।'* तीसरा अंश है *'बालचरित चहुँ बंधु के बनज बिपुल बहुरंग''''''।'* इसका माहात्म्य है *'मनोमल-हारी।'* बाल-चरित अत्यन्त सरल है, अत: मनोमलहारी है। शेष अंश आगे चौपाइयोंमें क्रमश: दिये गये हैं।

राम सुप्रेमहि* पोषत पानी। हरत सकल कलि-कलुष-गलानी॥ ३॥

अर्थ—यह जल सुन्दर रामप्रेम (श्रीरामचन्द्रसम्बन्धी सुन्दर निष्काम प्रेम) को बढ़ाता और पुष्ट करता है और कलियुगके समस्त पापोंकी ग्लानि (वा, कलि एवं कलिके पापों और पापोंसे उत्पन्न ग्लानि) को दूर करता है॥ ३॥

नोट—१ **पानी**=पानीय अर्थात् पीनेवाली वस्तु। इसीसे जलका नाम पानीय है, उसीका प्राकृत रूप पानी है। यहाँ 'पानी' शब्दके प्रयोगसे रामयशके श्रवणका ही प्रसङ्ग द्योतित किया। (वि० त्रि०)

टिप्पणी—१ (क) अब यहाँसे जलका 'परहितकारी' गुण कहते हैं। जल शरीरको पुष्ट करता है, यह रामप्रेमको पुष्ट करता है, यथा—*'जननि जनक सिय-राम प्रेम के।'* (१। ३२। ४) (ख) *'पोषत'* से पहिले उत्पन्न होना सूचित होता है, क्योंकि जब जन्म होगा तभी पालन-पोषण हो सकेगा। प्रेमका उत्पन्न होना *'जननि जनक सिय-राम-प्रेम के।'* (३२। ४) में कह आये; क्योंकि माता-पिताहीसे बच्चा उत्पन्न होता है। श्रीरामचरितने माता-पितारूप होकर प्रेम उत्पन्न किया और श्रीरामसुयशजलसे प्रेमका पोषण हुआ। रामचरित और राम-सुयश एक ही हैं। 'सुप्रेम' अर्थात् निष्काम प्रेम।

नोट—२ *'कलि-कलुष-गलानी'*। इति। कलिके पापोंकी जो ग्लानि मनमें होती है, यथा—*'सकुचत हौं अति राम कृपानिधि क्यों करि बिनय सुनावउँ''''''। जौं करनी आपनी बिचारौं तौ कि सरन हौं आवौं''''''* (वि० १४२) *बाप आपने करत मेरी घनि घटि गई''''''*। (वि० २५२) *'जनम गयो बादिहि बर बीति'''''' '* (वि० २३४) इत्यादि। यह ग्लानि इससे दूर हो जाती है; क्योंकि इसमें संतों, भक्तों तथा स्वयं श्रीरामजीके वाक्योंसे हमें उनकी दयालुतामें विश्वास हो जाता है, यथा—*'आपन जानि न त्यागिहहि''''''* *'जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीनबंधु अति मृदुल सुभाऊ।।'* (७१) *'कोटि बिप्र बध लागहि जाहू। आए सरन तजउँ नहिं ताहू।।'* (५। ४४) इत्यादि। ज्यों ही यह सुयश स्मरण हो आता है, ग्लानि दूर हो जाती है।

पं० रामकुमारजी लिखते हैं कि वह जल ग्लानिमात्रको हरता है; यथा—*'सुचि जल पियत मुदित*

* सुप्रेमहि—१६६१, १७०४, रा० प्र०, श्रीअयोध्याजीके मानसविज्ञोंकी छपाई प्रतियों, वि० टी०, पंजाबी और बैजनाथजीकी प्रतियोंमें है। ना० प्र० तथा गौड़जीका 'सुपेमहि' पाठ है।

मन भएऊ।' और यह जल कलिको हरता है, यथा—***'रामकथा-कलि पन्नग भरनी',*** कलिसे उत्पन्न कलुषको हरता है, यथा—***'रामकथा कलिकलुष बिभंजनि।'*** और कलुषसे जो ग्लानि उत्पन्न होती है उसको भी हरता है, यथा—***'समन पाप संताप सोक के।'*** तात्पर्य यह है कि कार्य और कारण दोनोंका नाश करता है।

वि० त्रि०—यहाँ तीन गुण कहे—***'राम सुप्रेमहिं पोषत पानी', 'हरत सकल कलि कलुष'*** और ***'हरत गलानी'।*** ये माहात्म्य क्रमसे प्राप्त ***'सीय स्वयंबर कथा सुहाई'''''।' 'नदी नाव पटु प्रस्न अनेका'''''।'*** और ***'सुनि अनुकथन परसपर होई''''''''*'** इन चौथे, पाँचवें और छठे अंशोंके हैं। सीयस्वयंवरमें श्रीरामजीको विश्व-विजय-यश और श्रीजानकीजी दोनोंकी प्राप्ति हुई। इष्टदेवके उत्कर्षश्रवणसे प्रेम बढ़ता ही है। प्रश्नोत्तर-में एक प्रकारसे सभी रामचरितमानस आ जाता है; अतः ***'सकल कलि कलुष हरन'*** इसका गुण होना ठीक ही है॥ अनुकथनमें विश्राम अधिक होता है, अतः उसे ग्लानिका हरण करनेवाला कहा।

भव श्रम सोषक तोषक तोषा। समन दुरित दुख दारिद दोषा॥ ४॥

अर्थ—संसारके (आवागमन) श्रमको सोख लेनेवाला, सन्तोषको भी सन्तुष्ट करनेवाला और पाप एवं पापसे उत्पन्न दुःख, दरिद्रता और दोषोंको दूर करनेवाला है॥ ४॥

पं० रामकुमारजीः—१ (क) ***'भव श्रम सोषक'*** इति। यहाँ भव समुद्र है, श्रम जल है, इसीसे सोखना कहा। अनेक योनियोंमें बारम्बार जन्म लेना और मरना यही परिश्रम है। यथा—***'भव पंथ भ्रमत अमित दिवस निसि काल कर्म गुननि भरे।'*** (७। १३)***'आकर चारि लाख चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी।।' फिरत'''''*** (७। ४४) (ख) ***'तोषक तोषा'*** अर्थात् वह जल संतोष देता है और श्रीरामसुयशजल जगत्को तृप्त करनेवाले मूर्तिमान् सन्तोषको भी तृप्त कर देता है। यथा—***'सुंदरता कहुँ सुंदर करई', 'धीरजहू कर धीरज भागा', सुनि बिषाद दुखहू दुख लागा', तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन।'*** (२। २९) इत्यादि, तथा यहाँ ***'तोषक तोषा'*** कहा। अथवा, दूसरा भाव यह है कि सन्तोंको सन्तोष प्राप्त है तो भी वे रामचरितके भूखे हैं उनको भी सन्तोष देता है। (ग) दुरित=पाप। दुःख, दरिद्रता और दोष ये सब पापके फल हैं, यथा—***'करहिं पाप पावहिं दुःख भय रुज सोक बियोग।'*** (उ० १००) यह जल पाप और उसके फलको नाश करता है। दोष=अवगुण, यथा—***'कहउ सुताके दोष गुन मुनिबर हृदय बिचारि।'*** वह जल अवगुणको नाश करता है, यह मानसरोगको।

नोट—यहाँ ***'दुख दारिद दोषा'*** तीनोंका नाश कहा है। अयोध्याकाण्डमें भी इन तीनोंका मिटना कहा है। यथा—***'मिटे दोष दुख दारिद दावा।'*** (अ० १०२) 'दुःख-दरिद्ररूपी (अथवा दुःखदरिद्रके) दोषों', ऐसा अर्थ बाबू श्यामसुन्दरदास और विनायकी-टीकाकारने किया है।

वि० त्रि०—यहाँ श्रीरामयशजलके छः गुण कहे—***'भवश्रम सोषक'*** (१), ***'तोषक तोषा'*** (२), ***'समन दुरित*** (३), ***दुख*** (४), ***दारिद*** (५), ***दोषा*** (६) ये क्रमसे प्राप्त ***'घोर धार भृगुनाथ रिसानी', 'घाटसुबद्ध राम बर बानी', 'सानुज राम बिबाह उछाहू'''''।' 'कहत सुनत हरषहिं पुलकाहीं'''''।' 'रामतिलक हित मंगल साजा'*** और ***'काई कुमति कैकई केरी'''।'*** इन सातवेंसे लेकर बारहवें अंशोंके माहात्म्य हैं। भृगुनाथकी रिसानी भी श्रौताग्निकी भाँति पवित्र है। ये कर्मयोगी थे। इनका क्रोध युद्ध-यज्ञके लिये ही था, यथा—***'चाप श्रुवा सर आहुति जानू'''''।'*** इत्यादि। अतः इनको भवश्रम नहीं होता, अतः इनकी रिसानीको भवश्रमशोषक कहा। श्रीरामजीकी वाणीसे परशुरामजीका मोह जाता रहा; यथा—***'उघरे पटल परसुधर मति के'।*** अतः ***'तोषक तोषा'*** गुण कहा। ***सानुज राम बिबाह उछाहू'*** पुण्यमय ही है, अतः इसे दुरितशमन कहा। रामविवाहमें माताओंको अतिसय आनन्द हुआ। यथा—***'पावा परमतत्व जनु जोगी'*** से लेकर ***'एहि सुख तें सतकोटि गुन पावहिं मातु अनंदु।'*** तक। अतः ***'कहत सुनत'''''*** इस अंशको दुःखशमन कहा। वास्तविक दरिद्र मोह है, यथा—***'मोह दरिद्र निकट नहि आवा।'*** **'प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः। मुखाम्बुजश्री'''''''''''**' इस कारणसे अथवा अनेक विघ्न उपस्थित

होनेपर भी अन्तमें राज्यलक्ष्मीने उनका वरण किया ही, अतः *'राम-तिलक-हित-मंगल साजा'* को दारिद्र्यनाशक कहा। श्रीकैकेयीजी ऐसी दशरथ महाराजकी प्रेयसी और परम साधु भरतजीकी माताको दुष्टा मन्थराके संगदोषसे कुमति उत्पन्न हुई। अतः *'काई कुमति......'* इस अंशसे शिक्षा ग्रहण करनेवालेका दोष नष्ट हो जाता है।

काम कोह मद मोह नसावन। बिमल बिबेक बिराग बढ़ावन॥ ५॥

अर्थ—काम, क्रोध, मद और मोहका नाश करनेवाला है। निर्मल ज्ञान और वैराग्यको बढ़ानेवाला है॥ ५॥

टिप्पणी—१ (क) कथाका बाधक काम है; यथा—*'क्रोधिहि सम कामिहि हरि कथा। ऊसर बीज बयें फल जथा॥'* (५। ५८। ४) इसलिये प्रथम कामको नाश करता है। काम, क्रोध, मद और मोह—ये सब मानसरोग हैं। इनके नाश होनेपर विवेक और वैराग्य बढ़ते हैं। इसीसे प्रथम कामादिका नाश कहकर तब विवेक और वैराग्यका बढ़ना कहा है। (ख) *'बिमल'* विशेषण देनेका भाव यह है कि विवेक और वैराग्य तो और भी क्रियाओं-साधनोंसे बढ़ते हैं; यथा—*'धर्म ते बिरति जोग ते ग्याना॥'* (३। १६। १) और रामचरित विमल 'विवेक वैराग्य' को बढ़ाता है।

नोट—१ *'बिमल बिबेक बिराग'* इति। जब मानसरोग दूर हो जाते हैं, विषय-वासना जाती रहती है, तब 'विराग-विवेक' निर्मल कहे जाते हैं। यथा—*'जानिय तब मन बिरुज गुसाईं। जब उर बल बिराग अधिकाईं॥ सुमति छुधा बाढ़इ नित नई। बिषय आस दुर्बलता गई॥ बिमल ग्यानजल जब सो नहाई।'* (७। १२२। ९, १०)

नोट—२ 'काम, कोह, मोह' ये क्रमसे कहे, यही क्रम गीतामें है। यथा **'ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते। सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥ क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः। स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति।'** (२। ६२-६३) विषयसङ्गसे कामना, कामना न पूर्ण होनेसे क्रोध और क्रोधसे मोह होता है, जिससे बुद्धि नष्ट होकर प्राणीका नाश होता है। अतः तीनोंका नाश कहा। मोहके नाशसे संसार असार दीखने लगता है उससे वैराग्य होता है।

☞ इन सद्गुणोंकी उत्पत्ति पहले कह आये हैं, यथा—*'सदगुन सुरगन अंब अदिति सी।'* (३२। ३) उन्हीं सद्गुणोंका बढ़ना *'बढ़ावन'* पद देकर यहाँ कहा। विमल विवेक वैराग्य सद्गुण हैं।

वि॰ त्रि॰—यहाँ छः गुण कहे। काम १, क्रोध २, मद ३, मोहनसावन ४, विमल विवेक ५, विराग बढ़ावन ६, जो क्रमसे प्राप्त *'समन अमित उतपात सब भरत चरित जप जाग।'* *'कलि अघ खल अवगुन कथन ते जल मल बक काग'* *'हिम हिमसैलसुता सिव ब्याहू'* *'सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू'* *'बरनब राम बिबाह समाजू'* और *'ग्रीषम दुसह राम बन गवनू'* इन तेरहवेंसे लेकर अठारहवें अंशोंके माहात्म्य हैं। भरत ऐसे निष्काम भक्तशिरोमणि कि जो अवध ऐसे राज्यमें भी *'चंचरीक जिमि चंपक बागा'* रहते थे, उनके चरितसे काम नष्ट होता है। जो कलिके अघ और खलोंके अवगुणका श्रवण-मनन करेगा, वह समझ जायगा कि विरोध होना कलिका स्वभाव है, अतः वह विरोधीपर भी क्रोध न करेगा। उमा-शम्भुविवाह-प्रसङ्गमें कामने मदमें आकर संसारभरको पीड़ित किया। अतः उसका पराभव हुआ। अतः इस कथासे शिक्षा ग्रहण करनेवालेका मद नष्ट हो जाता है। प्रभु जन्मके उछाहमें सब लोग ब्रह्मानन्दमें मग्न हो गये—*'ब्रह्मानंद मगन सब लोई।'* अतः इस चरितको मोहनाशक कहा। *'बरनब राम बिबाह समाजू'* इस अंशमें वेदके चारों तत्त्व जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीयके विभवोंका अपनी-अपनी अवस्थाओंके साथ वर्णन है। यहाँ उत्प्रेक्षाके व्याजसे श्रीगोस्वामीजीने वेदके रहस्यका उद्घाटन कर दिया। अन्यत्र स्पष्ट भी कहा है; यथा 'तुरीयमेव केवलम्'। अतः इस अंशका फल *'बिमल बिबेक बढ़ावन'* कहा। रामवनगमन प्रसङ्गसे शिक्षा ग्रहण करनेवालेका निश्चय वैराग्य बढ़ेगा।

मुं० रोशनलाल—ये छः चौपाइयाँ वैद्यक पर्याय हैं। मलके हरनेसे रोगीका शरीर पुष्ट होता है। यह जल-मनोमलको पहिले हर लेता है, फिर उससे रामप्रेम पुष्ट होता है। रोगीको अपने रोगकी ग्लानि होती है जिससे उसका शरीर मलिन हो जाता है, सो इसने भवरोगके रोगीके मनसे कलिके पापोंकी ग्लानिको हर लिया है। पुनः, रोगीको चलनेमें श्रम होता है, सो यहाँ सांसारिक वासनाओंका रोगी जो जन्ममरणभवश्रमसे थका हुआ है उसके उस श्रमको सोख लेता है और जैसे रोगीको भोजनमें सन्तुष्टता होती है वैसे ही भवरोग रोगीको सांसारिक व्यवहारोंसे सन्तोष देता है और दुरितकी चाह, दोष, दरिद्र, दुःख इन सबके दोषोंको हर लेता है। (पाँड़ेजी)

सादर मज्जन पान किए तें। मिटहिं पाप परिताप हिए तें॥ ६॥

अर्थ—आदर-पूर्वक स्नान-पान करनेसे हृदयसे पाप-परिताप दूर हो जाते हैं॥ ६॥

पं० रामकुमारजी—१ (क) यहाँ यथासंख्य अलङ्कार है। अर्थात् स्नानसे पाप मिटते हैं और पीनेसे हृदयके परिताप दूर होते हैं। वह जल शरीरके तापको हरता है, राम-सुयश-जल हृदयके तापको हरता है। (ख) **परिताप**=मानसी व्यथा। पापका फल भोग ही परिताप है। श्रीरामयशके सम्बन्धमें कहना-सुनना ही '***मज्जन-पान***' है, यथा—'***मज्जन पान पाप हर एका। कहत सुनत एक हर अबिबेका॥***' (१। १५) '***मिटहिं पाप०***', यथा—'**सकृदुच्चरितं येन रामायणमनुत्तमम्। भस्मीभवन्ति पापौघा हृदि रामस्तु तद्रवात्॥**' (शिव वाक्य इति) (मानस-परिचारिकाके मतानुसार सुनना स्नान है और धारण-ग्रहण-मनन पान है। एकाग्रभावसे मनको कथामें डुबा देना स्नान है। गुणानुवादको सदा कानसे सुनते रहना पान है।) (ग) '***सादर***' कहनेका भाव यह है कि कथा आदरपूर्वक कहे-सुने, निरादरसे नहीं। यथा—'***सोइ सादर सर मज्जन करई। महाघोर त्रयताप न जरई॥***' (१। ३९। ६) '***सादर मज्जहिं सकल त्रिबेनी।***' (१। ४४। ४) पूर्व इसके भाव लिखे गये हैं।

२ ☞पापका नाश होना इस प्रसङ्गमें तीन बार लिखा गया है; यथा—(१) '***हरत सकल कलि कलुष-गलानी।***' (२) '***समन दुरित दुख दारिद दोषा***'। (३) '***मिटहिं पाप परिताप हिए तें।***' इसका कारण यह है कि पाप तीन प्रकारके हैं। यथा—'***जे पातक उपपातक अहहीं। करम-बचन-मन-भव कबि कहहीं॥***' (२। १६७। ७) तीन बार कहकर सूचित किया कि इन तीनोंका नाश होता है।

वि० त्रि०—१ यहाँ दो गुण कहे—'***मिटहिं पाप***' और '***मिटहिं परिताप***'। ये क्रमसे प्राप्त '***बरषा घोर निसाचर रारी***' और '***राम राज सुख बिनय बड़ाई***' इन उन्नीसवें और बीसवें अंशोंके माहात्म्य हैं। भगवान्‌से वैर करनेवालोंको भी परम गति मिलती है। इस अंशसे हमें यह शिक्षा मिलती है कि प्रभुसे कोई-न-कोई सम्बन्ध अवश्य बना रखे। पाप मिटनेका यह अचूक उपाय है। अतः यह कथाभाग पाप मिटानेवाला है। श्रीरामवनवाससे सबको परिताप था—'***अवधि आस सब राखहिं प्राना।***' श्रीरामराज्यसे सब परिताप मिट गया। अतः जिन लोगोंने रामराज्यसे शिक्षा ग्रहण की, निश्चय उनके हृदयका परिताप मिटेगा।

नोट—१ यहाँतक सम्मुखका फल कहा, आगे विमुखका फल कहते हैं। (पं० रामकुमार)

नोट—२ 'पहिले ग्रन्थके आदिमें श्रीगुरुपदरजको भवरोगनाशक चूर्ण कहा, फिर उसका अनुपान '***राम सुयश जल***' दोहा ४२ में कहा। रोगके दूर होनेपर रोगीको स्नान कराया जाता है, इसलिये यहाँ स्नान करना कहा (रा० प्र०)।

वीरकवि—४३ (३—६) में सहोक्ति और अनुप्रासकी संसृष्टि है।

जिन्ह एहिं बारि न मानस धोए। ते कायर कलिकाल बिगोए॥ ७॥

अर्थ—जिन्होंने इस (राम-सुयश) जलसे अपने मनको नहीं धोया उन कादरोंको कलिकालने ठग लिया और नष्ट कर डाला है॥ ७॥

नोट—१ (क) '***एहिं बारि***' अर्थात् जिसमें ऐसे गुण हैं। '***मानस धोए***'—जैसे देहपर मिट्टी लगी हो तो धोनेसे वह छूट जाती है, वैसे ही मनके विकार रामयश कहने-सुनने-समझनेसे दूर

हो जाते हैं। यथा—*'जनम अनेक किये नाना बिधि करम कीच चित सानेउ। होइ न बिमल बिबेक नीर बिनु बेद पुरान बखानेउ॥'* (वि० ८८)······· *'मोह-जनित मल लाग बिबिध बिधि कोटिहु जतन न जाई। रामचंद्र अनुराग नीर बिनु मल अति नास न पावै।'* (वि० ८२) *'आस पिआस मनोमल हारी'*। श्रीरामयशसे मनका मैल साफ हो जाता है। (श्रवण करके समझना तथा धारण करना मनका धोना है। मा० मा०) (ख) **'कायर'**=कादर, जैसे, मयन=मदन। *'बिगोए'* (सं० विगोपन)=नष्ट किया, ठग लिया, बिगाड़ डाला, भ्रममें डाल दिया। यथा—*'प्रथम मोह मोहिं बहुत बिगोवा।'* (७। ९६। ६) *'राज करत निज कुमति बिगोई।'* (२। २३। ७) *'स्वारथ परमारथ कहा, कलि कुटिल बिगोयो बीच'*। (वि० १९२) पुन:, **'बिगोए'**=वि+गोए=विशेषकर छिपाये वा गुप्त किये गये।=नाश किये गये। कायर कहनेका भाव यह है कि बहुत लोग स्नान करनेसे डरते हैं, इससे स्नान नहीं करते। अथवा, इसमें मानसका धोना कलिकालसे युद्ध करना है, जो मानसको धो लेते हैं उन्होंने कलिकालको जीत लिया। जिन्होंने न धोया वे मानो कलिकालके संग्राममें रणभूमिसे भागे, इसीसे कादर कहलाये। अथवा, वे आलसी हैं, भाग्य-भाग्य चिल्लाते हैं कि हमें अवकाश ही नहीं मिलता; उनसे पुरुषार्थ भी किया नहीं होता।

नोट—२ *'बिगोये'*—नरतन पाकर भी विषयमें लगना यही ठगा जाना या नष्ट होना है, यथा—*'हानि कि जग एहि सम कछु भाई। भजिय न रामहिं नर तन पाई॥'* (७। ११२। ९) इत्यादि। (पं० रामकुमारजी) पुन: भाव कि रामचरित पढ़ने या सुननेसे क्या होगा? माहात्म्य तो सभी अपने काव्यका लिखते हैं, कथा पढ़-सुनकर किसीको स्वर्ग जाते नहीं देखा, इत्यादि बुद्धि उनकी हो गयी है। यह विपरीत बुद्धि कलिकालके कारण हो गयी है, अत: *'कलि काल बिगोए'* कहा। पाँड़ेजी 'कायर' का अर्थ 'जो जानकर अन्याय करे' कहते हैं। मा० प० में *'कलिकाल बिगोए'* का अर्थ किया है कि 'कलिकाल उन्हींको अपनी आड़में छिपाये है; भाव यह कि अभी तो सेठ-साहूकार, महाराज-पण्डित सभी हैं, पर वह नहीं जानते कि मरनेपर क्या दशा होगी, किस योनिमें जायँगे।'

तृषित निरखि रबिकर-भव-बारी। फिरिहहिं मृग जिमि जीव दुखारी॥ ८॥

अर्थ—वे (कलिसे विगोये हुए) जीव, प्यासे हिरनकी नाईं, जो सूर्यकिरणसे उत्पन्न हुए जलको देखकर मारा-मारा फिरता है, प्यासे भ्रमते रहेंगे और दु:खी होंगे॥ ८॥

नोट—इस अर्धालीमें बताते हैं कि कलिने उन्हें क्योंकर ठगा है।

पं० रामकुमारजी—१ (क) *'फिरिहहिं'* से मृग-जलकी ओर दौड़ना सूचित होता है। आशा ही प्यास है, यथा—*'आस पियास मनोमल हारी।'* आशाके पूर्ण न होनेसे जीव दु:खी रहते हैं, सबके पीछे दौड़ते-फिरते हैं। (ख) आशा मानसिक विकार है। यह रामचरित सुननेसे दूर हो जाती है, अन्य किसी उपायसे नहीं। अन्य सब उपाय मृगजल हैं, यथा—*'जे लोलुप भये दास आस के ते सबही के चेरे। प्रभु बिस्वास आस जीती जिन्ह ते सेवक हरि केरे॥'* (ग) मज्जन करनेसे मनके पाप-परिताप मिटते हैं और मज्जन न करनेवालोंको सजा मिलती है। क्या दण्ड मिलता है सो *'जिन्ह एहिं बारि न मानस धोए। ते कायर कलि काल बिगोए॥'* में कहा। (घ) यहाँ आशा नदी है, मनोरथ जल है और तृष्णा तरङ्गावली है।

नोट—*'रबिकर-भव-बारी'* इति। **कर**=किरण। **भव**=उत्पन्न। **बारी**=वारि=जल। रेतपर या ऊसर मैदानोंमें तीक्ष्ण सूर्यकिरणोंके पड़नेसे दूरसे प्यासे हिरनको उसमें जल वा जलकी लहरोंका धोखा होता है। उसी जल-भ्रमको 'सूर्यकिरणसे उत्पन्न हुआ जल, कहा है। ☞गर्मीके दिनोंमें जब वायुकी तहोंका घनत्व उष्णताके कारण असमान होता है, तब पृथ्वीके निकटकी वायु अधिक उष्ण होकर ऊपरको उठना चाहती है; परन्तु ऊपरकी तहें उसे उठने नहीं देतीं, इससे उस वायुकी लहरें पृथ्वीके समानान्तर बहने लगती हैं। यही लहरें दूरसे देखनेमें जलकी धारा-सी दिखायी देती हैं। मृग इससे प्राय: धोखा खाते हैं, इसीसे इसे 'मृगतृष्णा',

'मृगजल' आदि कहते हैं। प्यासे फिरना क्या है? इसे भी विनयके पद ८८ से मिलान कीजिये—'*कबहूँ मन बिश्राम न मान्यो। निसिदिन भ्रमत बिसारि सहज सुख जहँ तहँ इंद्रिन्ह तान्यो॥ जदपि बिषय सँग सह्यो दुसह दुख बिषम जाल अरुझान्यो। तदपि न तजत मूढ़ ममता बस जानत हूँ नहिं जान्यो॥ जनम अनेक किये नाना बिधि करम-कीच चित सान्यो। होइ न बिमल बिबेक-नीर-बिनु बेद पुरान बखान्यो॥ निज हित नाथ पिता गुर हरि सो हरषि हृदय नहिं आन्यो। तुलसिदास कब तृषा जाइ सर खनतहिं जनम सिरान्यो॥*' ☞जीवके सम्बन्धमें मृगजल क्या है यह विनयमें स्पष्ट दिखाया है; यथा—'*ब्रह्मपियूष मधुर सीतल जौं पै मन सो रस पावै। तौ कत मृगजलरूप बिषय कारन निसिबासर धावै॥*' (११६) '*जिव जब तें हरि ते बिलगानेउ। तब तें देह गेह निज जानेउ॥ मायाबस सरूप बिसरायो। तेहिं भ्रमते दारुन दुख पायो*...... *आनंदसिंधु मध्य तव बासा। बिनु जाने कस मरसि पियासा। मृग-भ्रम-बारि सत्य जल जानी। तहँ तू मगन भयउ सुख मानी॥*......' (पद १३६) '*जो पै रामचरन रति होती*...... *। तौ कत बिषय बिलोकि झूँठ जल मन कुरंग ज्यों धावै॥*' (१६८) '*महामोह मृगजल-सरिता महँ बोरेउँ हौं बारहिं बार॥*' (१८८) ☞इन उद्धरणोंसे स्पष्ट है कि विषय, सांसारिक सुख, महामोह एवं राम और रामयश छोड़ अन्य सब कुछ मृगजल है। यह सुखमय प्रतीत होता है पर इसमें सुख कहाँ।

वीरकवि—पहले एक साधारण बात कही कि मनुष्य विषयसुखकी प्यास बुझानेके लिये संसारमें दौड़ेंगे; किन्तु हरियश छोड़कर अन्यत्र सुख कहाँ है जो उन्हें मिलेगा? इसकी विशेषसे समता दिखाना कि वे ऐसे दुःखी होंगे जैसे मिथ्या-जलको सत्य-जल मानकर हरिण दौड़ते-दौड़ते प्राण खो देता है पर उसे पानी नहीं मिलता। 'उदाहरण अलङ्कार' है।

दोहा—मति अनुहारि सुबारि गुन-गन गनि मन अन्हवाइ।
सुमिरि भवानी-संकरहि कह कबि कथा सुहाइ॥ ४३॥

अर्थ—अपनी बुद्धिके अनुसार इस उत्तम जलके गुणसमूहको विचारकर और उसमें मनको स्नान कराके श्रीभवानीशङ्करका स्मरणकर कवि सुन्दर कथाको कहता है॥ ४३॥

पं० रामकुमारजी—१ '*मति अनुहारि*' और '*गुनगन*' से सूचित किया कि श्रीरामचरितमें तो गुण अमित हैं, अनन्त हैं, परन्तु मैंने मति-अनुसार कुछ गुण कहे।

२—'*गुन गन-गनि मन अन्हवाइ*' कहकर तीर्थमें स्नानकी विधि सूचित की है। प्रथम तीर्थका माहात्म्य कहे या सुने तब स्नान करे, यह बिधि है। यथा—(क) '*सबहिं सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा॥ अकथ अलौकिक तीरथ राऊ। देइ सद्य फल प्रगट प्रभाऊ॥ सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग।*' (१। २) (ख) '*गाधिसूनु सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई॥ तब प्रभु रिषिन्ह समेत नहाए।*' (१। २१२) (ग) '*सचिवहिं अनुजहिं प्रियहिं सुनाई। बिबुध नदी महिमा अधिकाई॥ मज्जन कीन्ह पंथ श्रम गयऊ।*' (२। ८७) (घ) '*कहि सिय लषनहि सखहिं सुनाई। श्रीमुख तीरथराज बड़ाई॥*...... *मुदित नहाइ कीन्हि सिव सेवा।*' (२। १०६) (ङ) '*चित्रकूट महिमा अमित कही महामुनि गाइ। आइ नहाये सरित बर सिय समेत दोउ भाइ॥*' (२। १३२) तथा यहाँ '*मति अनुहारि सुबारि गुन-गन-गनि*......' कहा।

३—पूर्व श्रीमद्गोस्वामीजीने मन और मति दोनोंको रंक कहा था। इसलिये दोनोंको राम-सुयशजलमें नहलाया। मतिको मानसमें स्नान कराया। यथा—'*अस मानस मानस चख चाही। भइ कबिबुद्धि बिमल अवगाही॥*' (१। ३९। १) और मनको कीर्ति-सरयूमें नहलाया, यथा—'*गुनगन गनि मन अन्हवाइ।*' इस प्रकार दोनोंको निर्मल करके तब श्रीरामयश कहते हैं। रामयशमें स्नानकी विधि बतायी कि पहले गुण-गणोंको सुने, बिचारे तब स्नान सम्भव है।

नोट—१ मानस-प्रकरण दोहा ३५ से उठाया गया और यहाँ समाप्त हुआ। इस प्रकरणको भवानी-शङ्करका स्मरण करके प्रारम्भ किया और उन्हींके स्मरणपर प्रसङ्गको सम्पुटित किया। इसलिये भक्तिपूर्वक इनका पाठ करनेसे अनेक मनोकामनाएँ सिद्ध हो सकती हैं। मुं० रोशनलालजी लिखते हैं कि 'गोस्वामीजी-ने मानसके इन नौ दोहोंको गौरी-शङ्करके नामसे सम्पुटित कर दिया है, क्योंकि ये दोहे रामायणके बीज हैं। इसलिये श्रीशङ्करपार्वतीजीकी रक्षामें रहें। यह तात्पर्य ग्रन्थकारका है।'

नोट—२ श्रीभवानीशङ्करकी वन्दना और बारम्बार स्मरणके भाव पूर्व आ चुके हैं कि ये मानसके आचार्य हैं, इन्हींकी कृपासे ग्रन्थकारको मानस प्राप्त हुआ और इन्होंने वस्तुतः उनका पालन-पोषण किया। मं० श्लो० एवं *'गुर पितु मातु महेस भवानी।'* (१। १५। ३) देखिये। उन्हींके प्रसादसे ये रामचरितमानसके कवि हुए और उसका माहात्म्य जगमगा रहा है।' *'साबर मंत्र जाल जिन्ह सिरजा'* (१। १५। ५) देखिये।

नोट—३ *'कह कबि'* इति। *'संभु प्रसादसुमति हिय हुलसी। रामचरितमानस कबि तुलसी॥ करइ मनोहर'''*।'(१। ३६। १-२) उपक्रममें कहा है, इसीसे यहाँ *'कह कबि'* कहा। अर्थात् अपनेको कवि कहा।

नोट—४ पहिले रामचरितमानसका रूपक मानस-सरसे बाँधकर मानसका स्वरूप दोहा ३५ *'जस मानस'''''* से *'अस मानस'* तक कहा, फिर *'चली सुभग कबिता सरिता सो'* से रामचरितमानस काव्यका रूपक सरयूनदीसे बाँधकर कहा। इन दोनोंका मिलान यहाँ दिया जाता है—

रामचरितमानस-सर	कीर्ति-सरयू
तालाबका माहात्म्य कहा, यथा—*'सोइ सादर सर मज्जन करई। महाघोर त्रयताप न जरई॥'*	१-नदीका माहात्म्य कहा, यथा—*'नदी पुनीत सुमानसनंदिनि। कलिमल तृन तरु मूल निकंदिनि॥'*
बरषहिं रामसुजस बर बारी॥''''' मेधामहिगत सो जल पावन।	*२-चली सुभग कबिता सरिता सो। राम बिमल जस जल भरिता सो॥*
घाट मनोहर चारि।	*३-घाट सुबद्ध राम बर बानी।*
लीला सगुन जो कहहिं बखानी। सोइ स्वच्छता	*४-सती सिरोमनि सिय गुनगाथा। सोइ गुन अमल अनूपम पाथा॥*
प्रेम भगति''''' सोइ मधुरता सुसीतलताई	*५-'भरत सुभाउ सुसीतलताई' 'भायप''''' जल माधुरी सुबास'*
सो जल सुकृतसालि हित होई	*६-राम सुप्रेमहि पोषत पानी*
रामभगतजन जीवन सोई	*७-सुनत सुजन मन पावन करिहीं*
उपमा बीचि बिलास मनोरम	*८-सीय स्वयंबर कथा सुहाई। सरित सुहावनि सो छबि छाई॥*
छंद सोरठा सुंदर दोहा। सोइ बहुरंग कमल'''''	*९-बालचरित चहुँ बंधु के बनज बिपुल बहुरंग।*
सुकृतपुंज मंजुल अलिमाला। सुकृती साधु'''''	*१०-नृप रानी परिजन सुकृत मधुकर बारि बिहंग।*
'धुनि अबरेब''''' से *'ते सब जलचर चारु तड़ागा'* तक	*११-उमा-महेस-बिबाह बराती। ते जलचर अगनित.....*
पुलक बाटिका बाग बन	*१२-बिच बिच कथा बिचित्र बिभागा। जनु सर तीर तीर बन बागा॥*
सदा सुनहिं सादर नरनारी। ते सुरबर मानस अधिकारी॥	*१३-कहत सुनत हरषहिं पुलकाहीं। ते सुकृती मनमुदित नहाहीं॥*
सोइ सादर सर मज्जन करई। महाघोर त्रय ताप न जरई॥	*१४-सादर मज्जन पान किये ते। मिटहिं पाप परिताप हिये ते॥*
अतिखल जे बिषई बक कागा। एहि सर निकट न जाहिं०	*१५-कलि अघ खल अवगुन कथन ते जलमल बक काग*
रामचरितमानस एहि नामा	*१६-सरजू नाम सुमंगलमूला।*
सोइ स्वच्छता करै मलहानी	*१७-कलिमल तृन तरु मूल निकंदिनि।*
उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रबाहू	*१८-सो सुभ उमग सुखद सब काहू।*
रामचरितमानस मुनिभावन	*१९-कीरति सरित छहूँ रितु रूरी।*

रामचरितमानस-सर	कीर्ति-सरयू
भइ कबिबुद्धि बिमल अवगाही	*२०-गुनगन गनि मन अन्हवाय।*
संतसभा चहुँ दिसि अँवराई	*२१-संतसभा अनुपम अवध।*
त्रिविध दोष दुख दारिद दावन	*२२-समन दुरित दुख दारिद दोषा।*

नोट—५ ☞मानस-प्रकरण यहाँ सम्पुटित हुआ। दोहा ३५ का *'सुमिरि उमा बृषकेतु'* तथा ३६ (१) का *'संभु प्रसाद सुमति हियँ हुलसी। रामचरितमानस कबि तुलसी॥'* उपक्रम है। *'मति अनुहारि सुबारि गुन……', 'सुमिरि भवानी संकरहि', 'कह कबि कथा'* दोहा ४३ उपसंहार है।

नोट—६ जलके गुण तीन बार कहे। एक तो ३६ (४—७) में पृथ्वीपर पड़नेके पहिलेके। दूसरे, ३६ (९) से ३७ (३) तक सरमें आनेपरके। और तीसरे, ४१ (७) से ४२ (४) तक नदीमें आनेके पीछेके।

नोट—७ *'जस मानस', 'जेहि बिधि भयउ'* और *'जग प्रचार जेहि हेतु'* तीनों प्रसङ्ग, जिनकी दोहा ३५ में कहनेकी प्रतिज्ञा की थी, यहाँ समाप्त किये। आगे संवादोंकी कथा कहते हैं।

मानस-प्रकरण (मानस-सरयू-साङ्गरूपक) समाप्त हुआ।

बालकाण्ड प्रथम भाग (वन्दना तथा मानस-प्रकरण) समाप्त हुआ।

श्रीसीतारामचन्द्रार्पणमस्तु। श्रीसद्गुरुभगवच्चरणौ शरणं मम। जय जय श्रीसीतारामजीकी।

****